अंक 292 वर्ष 59

भाषा

सितंबर–अक्तूबर 2020

सत्यमेव जयते

केंद्रीय हिंदी निदेशालय

भारत सरकार

भाषा (द्वैमासिक)

लेखकों से अनुरोध

1. ***भाषा*** में छपने के लिए भेजी जाने वाली सामग्री यथासंभव सरल और सुबोध होनी चाहिए। रचनाएँ प्रायः टंकित रूप में भेजी जाएँ। हस्तलिखित सामग्री यदि भेजी जाए तो वह सुपाठ्य, बोधगम्य तथा सुंदर लिखावट में होनी अपेक्षित है। रचना की मूलप्रति ही भेजें। फोटोप्रति स्वीकार नहीं की जाएगी।

2. लेख आदि सामान्यतः फुल स्केप आकार के दस टंकित पृष्ठों से अधिक नहीं होने चाहिए और हाशिया छोड़कर एक ओर ही टाइप किए जाने चाहिए।

3. अनुवाद तथा लिप्यंतरण के साथ मूल लेखक की अनुमति भेजना अनिवार्य है। इससे रचना पर निर्णय लेने में हमें सुविधा होगी। मूल कविता का लिप्यंतरण टंकित होने पर उसकी वर्तनी संबंधी त्रुटियाँ प्रायः नहीं होंगी, अतः टंकित लिप्यंतरण ही अपेक्षित है। रचना में अपना नाम और पता हिंदी के साथ–साथ अंग्रेजी में भी देने का कष्ट करें।

4. सामग्री के प्रकाशन विषय में संपादक का निर्णय अंतिम माना जाएगा।

5. रचनाओं की अस्वीकृति के संबंध में अलग से कोई पत्राचार कर पाना हमारे लिए संभव नहीं है, अतः रचनाओं के साथ डाक टिकट लगा लिफाफा, पोस्टकार्ड आदि न भेंजे। इन पर कोई कार्रवाई नहीं की जाएगी।

6. अस्वीकृत रचनाएँ न लौटा पाने की विवशता/असमर्थता है। कृपया रचना प्रेषित करते समय इसकी प्रति अपने पास अवश्य रख लें।

7. भाषा में केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा स्वीकृत मानक हिंदी वर्तनी का प्रयोग किया जाता है। अतः रचनाएँ इसी वर्तनी के अनुसार टाइप करवाकर भेजी जाएँ।

8. समीक्षार्थ पुस्तकों की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए।

संपादकीय कार्यालय

संपादक भाषा, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली–110066

सत्यमेव जयते

भाषा

सितंबर–अक्तूबर 2020
विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुमोदित पत्रिका (क्रमांक–16)

अध्यक्ष, परामर्श एवं संपादन मंडल
प्रोफेसर रमेश कुमार पांडेय

परामर्श मंडल
प्रो. योगेंद्र नाथ शर्मा 'अरुण'
डॉ. पी. ए. राधाकृष्णन
प्रो. ऋषभ देव शर्मा
प्रो. मंजुला राणा
प्रो. दिलीप कुमार मेधी
श्रीमती पद्मा सचदेव
श्री हितेश शंकर

संपादक
डॉ. राकेश कुमार

सह–संपादक
डॉ. किरण झा
श्रीमती सौरभ चौहान

प्रूफ रीडर
श्रीमती इंदु भंडारी

कार्यालयीन व्यवस्था
सेवा सिंह

**केंद्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग,
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार**

ISSN 0523-1418
भाषा (द्वैमासिक)
वर्ष : **59** **अंक : 5 (292)**
सितंबर–अक्तूबर 2020

संपादकीय कार्यालय
केंद्रीय हिंदी निदेशालय,
उच्चतर शिक्षा विभाग,
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार,
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्,
नई दिल्ली-110066
वेबसाइट : www.chdpublication.mhrd.gov.in
www.chd.mhrd.gov.in
ईमेल : bhashaunit@gmail.com
दूरभाषः 011–26105211 / 12

बिक्री केंद्र :
नियंत्रक,
प्रकाशन विभाग, सिविल लाइंस,
दिल्ली - 110054
वेबसाइट : www.deptpub.gov.in
ई–मेल : pub.dep@nic.in
दूरभाष : 011-23817823/ 9689

सदस्यता हेतु ड्राफ्ट नियंत्रक,
प्रकाशन विभाग, दिल्ली के पक्ष में भेजें।

बिक्री केंद्र :
केंद्रीय हिंदी निदेशालय,
उच्चतर शिक्षा विभाग,
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार,
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्,
नई दिल्ली-110066
वेबसाइट : www.chdpublication.mhrd.gov.in
www.chd.mhrd.gov.in
ईमेल : bhashaunit@gmail.com
दूरभाषः 011–26105211 / 12
सदस्यता हेतु ड्राफ्ट निदेशक, कें. हिं. नि.,
नई दिल्ली के पक्ष में भेजें।

मूल्य :

1.	एक प्रति का मूल्य	=	रु. 25.00	**(डाक खर्च सहित)**
2.	वार्षिक सदस्यता शुल्क	=	रु. 125.00	
3.	पंचवर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 625.00	
4.	दस वर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 1250.00	
5.	बीस वर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 2500.00	

पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। इनसे भारत सरकार या संपादन मंडल का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

भाषा
सितंबर–अक्तूबर 2020

अनुक्रमणिका

निदेशक की कलम से

संपादकीय

आलेख

1.	राजभाषा हिंदी : अघोषित राष्ट्रभाषा से घोषित विश्वभाषा बनने की ओर	डॉ. मानसी रस्तोगी	9
2.	हम और हमारी हिंदी भाषा	डॉ. बद्रीप्रसाद पंचोली	15
3.	राष्ट्रलिपि के रूप में देवनागरी	रमेश चंद्र	17
4.	हिंदी की राष्ट्रीय काव्य-धारा : उत्पत्ति और विकास	डॉ. दादूराम शर्मा	26
5.	हिंदी : विश्व और भारतीय संस्कृति	डॉ. दयानंद भूयाँ	34
6.	चुटकुला विधा पर एक काव्यशास्त्रीय दृष्टिपात	डॉ. मथुरेश नंदन कुलश्रेष्ठ	37
7.	राष्ट्रवाद और भाषाई अस्तित्व	प्रो. प्रदीप के. शर्मा	45
8.	कविवर महेंद्र सिंह बेदी के साहित्य में पंजाबी संवेदना के आयाम	हरिराम	50
9.	हिंदी भाषा का आरंभिक संघर्ष	डॉ. बीरेंद्र सिंह	55
10.	पूर्वोत्तर भारत की भाषाई संस्कृति और हिंदी	डॉ. श्यामबाबू शर्मा	59
11.	विविधरूपिणी हिंदी भाषा : समीक्षात्मक विमर्श	डॉ. ज्ञानेंद्र कुमार	63
12.	भारतीय भाषा चिंतन की परंपरा	डॉ. कृष्णा शर्मा	69
13.	सामाजिक सौहार्द की सुदृढ़ आधार है- हिंदी	डॉ. रामभवन सिंह ठाकुर	73

साक्षात्कार

14.	सुश्री सुभाशनी लता कुमार से डॉ. विमलेश कांति वर्मा की बातचीत	डॉ. विमलेश कांति वर्मा	77

हिंदी कहानी

15.	वह सिंदूरी शाम	राम कुमार कृषक	84
16.	सब कुछ पाकर - सब कुछ खोकर	पवन कुमार खरे	90
17.	सारागढ़ी	सुशील सरित	96

हिंदी कविता

18.	उठो, जागो और महान बनो के उद्घोषक : 'स्वामी विवेकानंद'	नरेश कुमार	100

19. कमरे में टंगा लालटेन — सत्यनारायण भटनागर — 101
20. सच की दुकान — देवेंद्र कुमार मिश्रा — 102
21. बचपन — सुशांत सुप्रिय — 103

अनूदित खंड

कहानी

22. फैसला (डोगरी कहानी) — अनुवाद : कृष्ण शर्मा — 104
23. अंधेरा (मलयालम कहानी) — एम. जी. बाबू, अनुवाद : एम. एस. विश्वंभरन — 111

कविता

24. क्या है भारत (पंजाबी/हिंदी) — त्रिलोक सिंह आनंद, अनुवाद : योगेश्वर कौर — 114

परख

25. दर्द मांजता है (दर्द मांजता है/ कहानी संग्रह/ रणविजय) — डॉ. विदुषी शर्मा — 116
26. जीवन की विसंगतियों का प्रमाणित दस्तावेज है 'अर्थागमन' (अर्थागमन/व्यंग्य उपन्यास/बलदेव त्रिपाठी) — डॉ. रमेश तिवारी — 121
27. भावों की सशक्त अभिव्यक्ति; भाषा का सरल प्रवाह (खिड़कियों से झाँकती आँखे/ कहानी संग्रह/ सुधा ओम ढींगरा) — डॉ. सीमा शर्मा — 124

संपर्क सूत्र — **129**

सदस्यता फार्म

निदेशक की कलम से

किसी भी भाषा की विकास-प्रक्रिया में इतिहास की एक अदृश्य शक्ति निहित रहती है। यह शक्ति कभी सामाजिक, कभी राजनैतिक और कभी ज्ञानात्मक रूप धारण कर भाषा की विकास-प्रक्रिया को एक नया मोड़ दे देती है। इस प्रक्रिया में कुछ भाषाएँ विकास की दृष्टि से बहुत आगे बढ़ जाती हैं, कुछ पीछे रह जाती हैं और कुछ लुप्त हो जाती हैं। इतिहास की इसी अदृश्य शक्ति का परिणाम है कि काल के किसी खंड विशेष में आकर शताब्दियों से चली आ रही सर्व गुण संपन्न संस्कृत भाषा का मार्ग सामान्य बोलचाल की भाषा के रूप में अवरुद्ध हो गया और उसी प्रकार पाली, प्राकृत और अपभ्रंश जैसी बोलियाँ लोक-व्यवहार से लुप्त हो गईं। कालांतर में बगैर किसी मानवीय प्रयास के स्वाभाविक रूप से आधुनिक भारतीय भाषाओं को जन्म देकर, एक नए भाषाई परिवार का सूत्रपात कर ये भाषाएँ जनभाषा के पटल से ओझल हो गईं।

इसी भाषाई शक्ति ने 19वीं सदी के अंत तक साहित्यिक दृष्टि से अत्यंत समृद्ध एवं संपन्न ब्रजभाषा को बीसवीं सदी के प्रारंभ होते-होते बोली के धरातल पर ला खड़ा किया और उस समय गँवारू और पूर्णरूप से बोल-चाल की भाषा समझी जाने वाली, जिसकी अपनी कोई लिखित साहित्यिक परंपरा भी नहीं थी, खड़ी बोली को, बोली से भाषा और फिर मानक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया और 14 सितंबर, 1949 को उसे संघ की राजभाषा के पद पर विभूषित कर दिया।

इससे स्पष्ट है कि भाषा मात्र संरचना अथवा व्याकरण की प्रयोग भूमि न होकर एक सामाजिक अवधारणा है, साहित्य के रूप में एक जातीय परंपरा है और संस्कृति के रूप में भाषाई प्रतीक भी है। भाषा संपूर्ण सामाजिक दायित्व एवं राष्ट्रीय अस्मिता को वहन करते हुए चलती है और उसी के प्रवाह से वह संपन्न भी होती है। भाषा मूलतः समाज की वस्तु है समाज भाषा की वस्तु नहीं है।

किसी भी भाषा का विकास उसके प्रयोग और विस्तार पर निर्भर करता है। कोई भाषा सामाजिक व्यवहार के कितने संदर्भों में व्यवहृत होती है इससे उस भाषा की सापेक्षिक विकासशीलता का पता चलता है। जैसे-जैसे भाषा का प्रयोजनगत विस्तार होता जाता है, वैसे-वैसे उस भाषा की अंतर्निहित क्षमता का भी विस्तार और विकास होता जाता है। इस प्रकार प्रयोग-विस्तार और भाषा-विकास दोनों प्रक्रियाएँ साथ-साथ चलती हैं। इसके लिए भाषा को आधुनिकीकरण और मानकीकरण दोनों क्रियाओं से गुजरना पड़ता है। जिस भाषा के जितने अधिक उपादान - शब्दकोश, तकनीकी शब्दावली, व्याकरण, प्रशिक्षण सामग्री, ज्ञान-साहित्य, संदर्भ-ग्रंथ तथा विश्व-कोश होंगे उतनी ही अधिक उसके प्रयोग की संभावनाएँ बढ़ेंगी।

विश्वभर में विकसित नए ज्ञान-विज्ञान और नवीनतम प्रौद्योगिकी की उपलब्धियों को अपनी सभी भाषाओं के माध्यम से प्रस्तुत करने के लिए यह जरूरी है कि हम अपनी सभी भाषाओं को इतना आधुनिक और समर्थ बनाएँ कि वे प्रभावी रूप से इस नए ज्ञान और नई सूचनाओं का माध्यम बन सकें। आधुनिक ज्ञान के विस्फोट ने भाषाओं की क्षमता में भी विस्फोट की स्थिति पैदा कर दी है। ज्ञान-विज्ञान की नित्य नई चुनौतियों का सामना करने के लिए भाषाओं को भी न केवल मानवीय आवश्यकताओं बल्कि तकनीक एवं कंप्यूटर की अपेक्षाओं के अनुरूप अपने को तैयार करना पड़ रहा है। इन सभी चुनौतियों का सामना करने के लिए विभिन्न स्तरों पर भाषा का आधुनिकीकरण किया जा रहा है।

आज हिंदी तथा भारतीय भाषाओं के समक्ष यह अवसर है कि वे समस्त ज्ञान को मौलिक रूप से अपनी भाषाओं में व्यक्त करें और नई तकनीक को भी आत्मसात् करें। जयहिंद।

रमेश कुमार पाण्डेय

प्रोफेसर रमेश कुमार पांडेय

मैं दुनिया की सभी भाषाओं की इज्जत करता हूँ पर मेरे देश में हिंदी की इज्जत न हो, यह मैं सह नहीं सकता।

आचार्य विनोबा भावे

किताब पढ़ना हमें एकांत में विचार करने की आदत और सच्ची खुशी देता है।

सर्वपल्ली राधाकृष्णन

शिक्षा के प्रचार के लिए नागरी लिपि का सर्वत्र प्रचार आवश्यक है।

शिवप्रसाद सितारेहिंद

भाषा ISSN 0523-1418

संपादकीय

भाषा की प्रगति और उसका प्रयोग केवल उसके शब्द भंडार अथवा उसके समृद्ध व्याकरण पर ही निर्भर नहीं करता। भाषा का संबंध वस्तुतः भावना से होता है। भाषा वही गौरवमयी बनती है जिसके बोलने वाले उसके प्रयोग में गर्व का अनुभव करते हों। किसी भी भाषा के विकास का पैमाना उसका सर्जनात्मक साहित्य अर्थात् - कविता, कहानी, उपन्यास तथा नाटक आदि ही न होकर ज्ञान-विज्ञान के समस्त क्षेत्रों की संवाहिका होना भी होता है। जब तक हम हिंदी को ज्ञान-विज्ञान और प्रौद्योगिकी के समस्त क्षेत्रों की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम नहीं बना लेते तब तक हिंदी को राष्ट्रभाषा और विश्वभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने का हमारा प्रयास अधूरा है।

भारत के स्वतंत्रता संग्राम में हिंदी एवं भारतीय भाषाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इन भाषाओं ने भारतीय स्वाधीनता के अभियान और आंदोलन को व्यापक जनाधार प्रदान करते हुए लोकतंत्र की इस अवधारणा को संपुष्ट किया कि स्वतंत्र भारत में लोक-व्यवहार और काम-काज में हिंदी एवं भारतीय भाषाओं का प्रयोग होगा। स्वतंत्रता प्राप्त होने पर हमारे संविधान के निर्माण का उपक्रम प्रारंभ हुआ। संविधान का प्रारूप अंग्रेजी में बना, संविधान की बहस भी अधिकांशतः अंग्रेजी में ही हुई। भाषा संबंधी यह बहस 12 सितंबर, 1949 को अपराह्न 4.00 बजे प्रारंभ हुई और 14 सितंबर, 1949 को समाप्त हुई। प्रारंभ में संविधान सभा के अध्यक्ष डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने संक्षेप में कहा- "भाषा के विषय में आवेश उत्पन्न करने अथवा भावनाओं को उत्तेजित करने के लिए कोई अपील नहीं होनी चाहिए और भाषा के प्रश्न पर संविधान सभा का विनिश्चय समूचे देश को मान्य होना चाहिए।" संविधान सभा की इस बैठक में 300 से अधिक संशोधन प्रस्तुत हुए। 14 सितंबर, 1949 की शाम बहस के समापन के पश्चात् जब भाषा संबंधी संविधान का तत्कालीन भाग 14क और वर्तमान में भाग 17 संविधान का भाग बन गया तब डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने अपने भाषण में बधाई के कुछ शब्द कहे थे -"आज पहली ही बार ऐसा संविधान बना है जिसमें हमने अपने संविधान में एक भाषा रखी है जो संघ के प्रशासन की भाषा होगी।" संविधान सभा की भाषा विषयक बहस लगभग 278 पृष्ठों में मुद्रित हुई। संघ की भाषा हिंदी और लिपि देवनागरी के निर्णय में डॉ. के. एम. मुंशी और श्री जी. एस. आयंगर की महत्वपूर्ण भूमिका रही। डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने राजभाषा के रूप में हिंदी भाषा एवं देवनागरी का समर्थन किया और भारतीय अंकों के अंतरराष्ट्रीय रूप को मान्यता देने की अपील की। उन्होनें इस निर्णय को ऐतिहासिक बताते हुए कहा कि "अनेकता में एकता ही भारतीय जीवन की विशेषता रही है और इसे समझौते और सहमति से प्राप्त करना चाहिए" उन्होंने कहा था कि "हम हिंदी को मुख्यतः इसलिए स्वीकार कर रहे हैं क्योंकि इस भाषा के बोलने वालों की संख्या अन्य किसी भाषा के बोलने वालों की संख्या से अधिक है।" साथ ही उन्होंने इस बात पर बल दिया कि "अंग्रेजी को हमें उत्तरोत्तर हटाते जाना होगा।"

जब संविधान पारित हुआ तब आशा थी कि इस संवैधानिक निर्णय के बाद भारतीय भाषाओं का विस्तार होगा और हिंदी का प्रयोग एवं विकास तीव्र गति से होगा। संपर्क भाषा के रूप में हिंदी शीघ्र ही राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित होगी किंतु हिंदी के विषय में लगता है कि संविधान के संकल्पों की अवधारणा कहीं खो सी गई है। भाषा के रूप में हिंदी की शक्ति, क्षमता और सामर्थ्य अकाट्य, अदम्य और अद्वितीय है। मन में प्रश्न उठता है कि हिंदी को राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित कराने के हमारे प्रयास प्रभावी क्यों नहीं हुए। क्यों और कैसे अंग्रेजी की मानसिकता हमारी युवा पीढ़ी पर इतनी हावी हो चुकी है कि आज हमारी अपनी भाषाओं की अस्मिता और भविष्य संकट में है। शिक्षा में, व्यापार और व्यवहार में, संसदीय, शासकीय और न्यायिक प्रक्रियाओं में हिंदी और भारतीय भाषाओं को पैर रखने की जगह तो मिली किंतु प्रभावी वर्चस्व नहीं मिल पाया।

इस अवसर पर हम सभी मिलकर पुनः यह संकल्प लें कि हिंदी को न्याय और प्रशासन की, ज्ञान और विज्ञान की, कला और संस्कृति की, मानवीय जीवन के प्रत्येक संस्कार की, दर्शन और विचार की, वाणिज्य और व्यापार की और परस्पर संपर्क की भाषा बनाएँ। हिंदी में पर्याप्त शब्द-भंडार है। आवश्यकता है विविध प्रकार के साहित्य के सृजन की जो तभी संभव है जब जीवन के सभी क्षेत्रों में हिंदी का प्रयोग हो।

भाषा के इस अंक में हिंदी एवं राजभाषा से संबंधित विविध आलेख समाहित किए गए हैं। सभी विद्वान लेखकों का हृदय से आभार। सुधी पाठकों के सुझावों की प्रतीक्षा रहेगी।

(डॉ. राकेश कुमार)

राजभाषा हिंदी : अघोषित राष्ट्रभाषा से घोषित विश्वभाषा बनने की ओर

डॉ. मानसी रस्तोगी

भारोपीय भाषा-परिवार की भारत-ईरानी शाखा से जन्म लेने वाली भारतीय आर्यभाषाओं से हिंदी का उद्‌भव हुआ। ऐतिहासिक भाषावैज्ञानिकों के अनुसार वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत, पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश से आधुनिक आर्य-भाषा हिंदी तक का क्रमिक विकास देखा जा सकता है। 'हिंदी' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत शब्द 'सिंधु' से हुई है। यह 'सिंधु' शब्द ईरानी में जाकर 'हिंदू' और बाद में 'हिंद' हो गया, जिसका अर्थ है 'सिंध प्रदेश' यानी सिंधु नदी के आसपास का क्षेत्र। हिंदी भाषा के लिए इस शब्द का प्राचीनतम प्रयोग शरफुद्‌दीन यज्दी के 'ज़फरनामा' (1424) में मिलता है। धीरे-धीरे 'हिंद' शब्द अपना संकुचित अर्थ छोड़ पूरे भारतवर्ष के लिए व्यापक अर्थ में प्रयुक्त होने लगा। इसी में ईरानी का 'ईक' प्रत्यय लगने से 'हिंदीक' अर्थात् 'हिंद का' बना। यही नहीं, यूनानी 'इंदिका' और अंग्रेजी 'इंडिया' भी इसी से विकसित हुए हैं।

'हिंदी भाषा' का प्रयोग प्रायः दो अर्थों में किया जाता है- पहला, हिंदी-प्रदेश में बोली जाने वाली सत्रह बोलियों की प्रतिनिधि भाषा 'खड़ीबोली हिंदी' जिसका उद्‌भव शौरसेनी, अर्धमागधी और मागधी अपभ्रंशों से हुआ है। दूसरा, साहित्यिक एवं परिनिष्ठित मानक 'खड़ीबोली हिंदी' जो हमारे देश की राजभाषा है; जिसका प्रयोग संसद, सभी सरकारी कार्यालयों, अदालतों, प्रिंट मीडिया, फिल्मों और टीवी धारावाहिकों तथा स्कूलों, विश्वविद्‌यालयों और अन्य शिक्षण-संस्थानों में होता है।

हिंदी यद्‌यपि पूरे भारत में समझी जाती है: किंतु बोलने और लिखने की दृष्टि से यह ग्यारह राज्यों यथा राजस्थान, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, बिहार, झारखंड, उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड, दिल्ली (के. शा. प्र.), अंडमान एवं निकोबार द्‌वीप समूह, हरियाणा और हिमाचल प्रदेश की प्रमुख भाषा है। इन राज्यों में अपभ्रंश से विकसित हुई हिंदी की पाँच उपभाषाओं एवं सत्रह बोलियों का व्यवहार होता है : शौरसेनी अपभ्रंश से उत्पन्न (1) पश्चिमी हिंदी की पाँच बोलियाँ (खड़ीबोली या कौरवी, ब्रजभाषा, हरियाणवी या बांगरू और कन्नौजी), (2) राजस्थानी हिंदी की चार बोलियाँ (मारवाड़ी, जयपुरी, मेवाती और मालवी), (3) पहाड़ी हिंदी की दो बोलियाँ (पश्चिमी पहाड़ी और मध्यवर्ती पहाड़ी (गढ़वाली और कुमाउँनी दोनों))। इनके अलावा अर्धमागधी अपभ्रंश से उत्पन्न (4) पूर्वी हिंदी की तीन बोलियाँ (अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी) तथा मागधी अपभ्रंश से उत्पन्न (5) बिहारी हिंदी की तीन बोलियाँ (भोजपुरी, मैथिली और मगही)।

हिंदी (या हिंदी-उर्दू) पट्‌टी के राज्यों के अलावा भी आंध्र प्रदेश, गुजरात, जम्मू-कश्मीर, पंजाब, बंगाल, उत्तर-पूर्वी राज्य मणिपुर, अरुणाचल प्रदेश और मिज़ोरम जैसे हिंदीतर प्रदेशों में हिंदी भाषियों की संख्या दूसरे स्थान पर है। महाराष्ट्र, ओडिशा, दादर व नगर हवेली में हिंदी भाषा के बोलने वालों की संख्या तीसरे स्थान पर है। कई हिंदीतर राज्यों में वहाँ की मातृभाषा और हिंदी के मिले-जुले रूप से हिंदी की नवीन शैलियाँ भी

विकसित हो गई हैं, जैसे : मुंबईया हिंदी (मराठी और हिंदी का मेल), कलकतिया हिंदी (बांग्ला+हिंदी) आदि। इस रूप में यदि देखा जाए तो 'हिंदी' न केवल भारत के सबसे बड़े हिस्से की मुख्य भाषा है अपितु वह हिंदी भाषियों को हिंदीतर भाषियों से जोड़ने का महत्वपूर्ण सूत्र है। भारत की अनिवार्य 'लिंग्वा फ्रेंका' यानी संपर्क भाषा है। इतिहास गवाह है कि हिंदी आज से नहीं, बल्कि स्वाधीनता-संग्राम के समय से पूरे भारत को एक सूत्र में बाँधने का काम कर रही है।

हिंदी के प्रसिद्ध आलोचक डॉ. रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तकों 'भारतेंदु हरिश्चंद्र और हिंदी नवजागरण की समस्याएँ', 'महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण' आदि में हिंदी को हिंदी-भाषी जाति की जातीय अस्मिता का सूचक बताया है। इस क्रम में उन्होंने अपनी एक अन्य पुस्तक 'भाषा और समाज' में दो बड़ी समस्याओं का उल्लेख भी किया है। पहली, हिंदी-उर्दू दो भाषाएँ हैं या एक? जातीय भाषा के विकास के बाद उन लघुजातियों की भाषा की स्थिति क्या होती है जो महाजाति का अंग बन जाती हैं? ब्रज, अवधी, भोजपुरी स्वतंत्र भाषाएँ हैं या हिंदी की बोलियाँ हैं? इनमें से हिंदी-उर्दू का विवाद तो अंग्रेजों की 'फूट डालो और शासन करो' की नीति के तहत जबरन खड़ा किया गया था। 'भाषा और समाज' में डॉ. शर्मा ने इस पर विस्तारपूर्वक चर्चा करते हुए लिखा है कि "संभव है, अब भी किसी के मन में भ्रम रह जाए कि मुगल बादशाहों की भाषा हिंदी नहीं फारसी थी, किंतु इस बात में संदेह ज़रा भी नहीं है कि दिल्ली के आम मुसलमानों की भाषा हिंदी थी।.... इस विवेचन से यह निष्कर्ष निकला कि हिंदुओं और मुसलमानों के मिलने से जो एक नई भाषा के जन्म लेने का सिद्धांत गढ़ा गया, वह एकदम लचर है। 'हिंदुस्तान' के मुसलमान उसी भाषा का प्रयोग करते थे जिसका हिंदू। हिंदी भाषा राजभाषा हुई दक्खिन आदि के उसके समर्थ लेखक उत्पन्न हुए। इससे अंदाज लगाया जा सकता है कि दिल्ली में फारसी के राजभाषा होने से हिंदी के विकास को कितना धक्का लगा।" हम समझ सकते हैं कि हिंदी और उर्दू में बस शैली-भेद है और वह भी बहुत हद तक उनके लिपि भेद (देवनागरी-फारसी) के कारणवश।

हिंदी-उर्दू विवाद की ही भांति हिंदी और अन्य प्रादेशिक बोलियों के बीच विवाद भी अंग्रेजों द्वारा जानबूझकर खड़ा किया गया। वे जानते थे कि सभी भाषाओं में मात्र 'हिंदी' ऐसी भाषा है जो संपूर्ण भारत को एक राष्ट्र के रूप में जोड़े रख सकती है और स्वाधीनता संग्राम में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। अतः आवश्यक है कि हिंदी और गैर-हिंदी भाषियों के मध्य किसी भी तरह फूट डालने की राजनीति करो। कुछ हद तक वे सफ़ल भी हुए। हिंदी-तमिल या हिंदी और पूर्वांचल की भाषाओं संबंधी विवाद अंग्रेजी की सत्ता कायम रखने की दुराशा के साथ ही पैदा किए गए। इस सबके बावजूद महान राष्ट्रभक्तों महात्मा गांधी और सुभाष चंद्र बोस जैसे हिंदीतर भाषियों ने भी अपने भाषण और वक्तव्य हिंदी में दिए। गांधी जी ने कहा था कि "अगर हम भारत को एक राष्ट्र बनाना चाहते हैं तो हिंदी ही हमारी राष्ट्रभाषा हो सकती है" और यह भी कि "जिस भाषा में तुलसीदास जैसे कवि ने कविता की हो, वह अत्यंत पवित्र है; उसके सामने कोई भाषा ठहर नहीं सकती।"

भारतीय संविधान के भाग 5, 6 और 17 में राजभाषा संबंधी उपबंध हैं। भाग 17 में चार अध्याय हैं, जो क्रमशः संघ की भाषा, प्रादेशिक भाषाएँ, उच्चतम न्यायालय एवं उनकी भाषा तथा विशेष निर्देशों से संबंधित हैं। ये चारों अध्याय अनुच्छेद 343 से 351 के अंतर्गत समाहित हैं। कितने आश्चर्य की बात है कि संविधान सभा में हिंदी को राजभाषा घोषित करने तथा देवनागरी और अंतरराष्ट्रीय अंकों को लेकर कई दिन तक जो लंबी बहस चली, उसका समाधान दक्षिण भारतीय नेता श्री गोपालस्वामी आयंगर और गुजरात के श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी के दिए गए फार्मूले 'मुंशी-आयंगर फार्मूला' ने प्रस्तुत किया। 14 सितंबर 1949 को जब 'राजभाषा' संबंधी भाग स्वीकृत हुआ तो संविधान सभा के अध्यक्ष डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने कहा- "राजभाषा हिंदी देश की एकता को कश्मीर से कन्याकुमारी तक अधिक सुदृढ़ बना सकेगी। अंग्रेजी की जगह भारतीय भाषा को स्थापित करने से हम निश्चय ही और भी एक दूसरे के निकट आएँगे'।

वस्तुतः आज अंग्रेजी-भाषी व समर्थक और दक्षिण हिंदी विरोधी संगठन हिंदी के राष्ट्रभाषा बनने के रास्ते में सबसे बड़े बाधक हैं। यह एक कड़वी सच्चाई है। हिंदी के 'राजभाषा' घोषित हो जाने के उपरांत भी 'राष्ट्रभाषा' के रूप में उसके अघोषित रह जाने के पीछे

संविधान का अनुच्छेद 343 का खंड (2) जिम्मेदार है। इसके अनुसार, खंड (1) में किसी बात के होते हुए भी, इस संविधान के आरंभ से पंद्रह वर्ष की अवधि तक संघ के उन प्रशासकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया जाता रहेगा, जिनके लिए उनका प्रयोग किया जा रहा था। अंग्रेजों के भारत छोड़कर चले जाने के बाद भी हम उनकी भाषा को नहीं छोड़ पाए, यह बहुत भारी भूल साबित हुई। अंग्रेजी 1965 तक तो संसद, विधान-मंडलों, न्यायालयों आदि में संघ की राजभाषा हिंदी के समानांतर प्रयुक्त होती रही और नियत अवधि के बाद भी प्रयुक्त होती रही। स्वतंत्रता के उपरांत आज अंग्रेज़ी के प्रयोग को लगभग 70 वर्ष पूरे हो गए हैं। अब उसकी जड़ें हमारे देश, उसकी संस्कृति में इस प्रकार फैल गई हैं कि चाहकर भी हम उससे किनारा नहीं कर सकते।

आज की युवा-पीढ़ी जो ग़ैर सरकारी नौकरियों में, सर्विस या आईटी सेक्टर में, मल्टीनेशनल कंपनियों में कार्यरत है, उसकी बोलचाल और कामकाज - दोनों की भाषा अंग्रेज़ी है। और तो और, स्कूली शिक्षा में भी यदि केंद्रीय और सर्वोदय जैसे सरकारी स्कूलों को छोड़ दें तो देश के ज़्यादातर पब्लिक (प्राइवेट) एवं कॉन्वेंट स्कूलों में पढ़ाई का माध्यम अंग्रेज़ी है। कॉन्वेंट स्कूलों में तो हाल ये है कि अगर छात्र-छात्राओं ने हिंदी की कक्षा के अतिरिक्त किसी भी अन्य विषय की कक्षा में अंग्रेजी के स्थान पर हिंदी या अपनी मातृभाषा में बात कर ली तो अच्छी-खासी सज़ा मिलती है। हैरानी की बात है कि कई नामी गिरामी स्कूल जिनमें अंग्रेजी के अलावा फ्रेंच, जर्मन, स्पेनिश आदि विदेशी भाषाओं के शिक्षण तक की सुविधा होती है; वे सस्कृत, तमिल, तेलुगु, बांग्ला, ओड़िया, मणिपुरी, पंजाबी आदि किसी भी देशी भाषा के शिक्षण को कभी महत्व नहीं देते। यदि त्रिभाषा फ़ॉर्मूले के अंतर्गत उत्तर भारत के स्कूलों में हिंदी व अंग्रेजी के साथ एक दक्षिण भारतीय या पूर्वोत्तर भारतीय भाषा लगाई गई होती, तो आज हिंदी भाषियों और ग़ैर हिंदी भाषियों के बीच का फासला बहुत मामूली रह जाता। कुछ लोग यह तर्क देते हैं कि दक्षिण भारतीय भाषाएँ बहुत कठिन हैं, अत: उन्हें हिंदी की भाँति नहीं सीखा जा सकता। कहते हुए हँसी आती है कि हिंदीभाषी अंग्रेज़ी सीख सकता है, स्पैनिश-जर्मन सीख सकता है; यहाँ तक कि विश्व की कठिनतम भाषा 'चीनी या मंदारिन' सीख सकता है, पर भाई, कन्नड या मलयालम नहीं!! ठीक यही स्थिति उच्च शिक्षा के क्षेत्र में भी मौजूद है। प्राय: हिंदी व अन्य भारतीय भाषाओं के विभागों को छोड़कर किसी भी विभाग में अध्यापन का माध्यम हिंदी नहीं है, चाहे वह विज्ञान (भौतिकी, रसायन शास्त्र, प्राणिविज्ञान आदि), गणित, सांख्यिकी, वाणिज्य आदि का हो या फिर मनोविज्ञान, दर्शनशास्त्र का हो। इतिहास, भूगोल और राजनीति विज्ञान जैसे विभागों में यद्यपि अंग्रेजी माध्यम के साथ-साथ हिंदी माध्यम के छात्र-छात्राएँ बैठ सकते हैं किंतु या तो उनके लिए हिंदी माध्यम में पढ़ाने वाले शिक्षक मिलते ही नहीं हैं, या मिलते भी हैं तो स्तरीय नहीं बस कामचलाऊ। अपने ही देश में अपनी ही भाषा की ऐसी दुर्गति देखकर अत्यंत क्षोभ होता है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी ने इस संबंध में जो कहा वह स्मरणीय है- "अगर मेरे हाथ में तानाशाही सत्ता हो, तो मैं आज से ही विदेशी माध्यम के जरिए दी जाने वाली....शिक्षा बंद कर दूँ और सारे.... प्रोफेसरों से यह माध्यम तुरंत बदलवा दूँ या उन्हें बर्खास्त करा दूँ। मैं पाठ्यपुस्तकों की तैयारी का इंतजार नहीं करूँगा, वे तो माध्यम के परिवर्तन के पीछे-पीछे अपने आप चली आएँगी। यह एक ऐसी बुराई है जिसका तुरंत इलाज होना चाहिए।" ('गांधी और हिंदी', पुस्तक संस्कृति, पृ. सं. 29)

हम प्रत्येक वर्ष सितंबर माह में एक हफ़्ता 'हिंदी पखवाड़ा' और 14 सितंबर 'हिंदी दिवस' के रूप में मनाते हैं। यह जरूरी भी है; खासकर नई पीढ़ी के बच्चों और अंग्रेज़ी वातावरण में पले-बढ़े उन युवाओं को अपनी मिट्टी की भाषा के इतिहास, संस्कार और साहित्य से परिचित कराने हेतु। उन्हें खुसरों की पहेलियों-मुकरियों, मैथिली कवि विद्यापति के राधा-कृष्ण के पदों, तुलसी के 'मानस' की पंक्तियों, सूर की कृष्ण-लीलाओं की सुंदर झांकियों, संत कबीर और रैदास के दोहों, मीरा के गीतों, सूफी कवि जायसी और मंझन के प्रेमाख्यानकों और आधुनिक कवियों भारतेंदु, मैथिलीशरण गुप्त, प्रसाद, निराला, महादेवी, बच्चन, सुभद्राकुमारी चौहान, केदार, अज्ञेय, मुक्तिबोध, रघुवीर सहाय, दुष्यंत, धूमिल, सर्वेश्वर, राजेश जोशी, मंगलेश डबराल, अरुण कमल आदि के साहित्य से रूबरू होने

का अवसर देना। साहित्य की प्रत्येक विधा में हिंदी के रचनाकारों द्वारा लिखा गया उच्च कोटि का विपुल साहित्य विद्यमान है। आज के डिजिटल युग में काफी साहित्य ऑनलाइन (इंटरनेट पर) भी उपलब्ध हैं। मुश्किल ये है कि आज का अधिकांश पाठक-वर्ग आसान अंग्रेज़ी में लिखा सस्ता, संवेदनहीन और मूल्यहीन साहित्य पढ़ लेता है पर हिंदी में लिखा स्तरीय, संवेदनशील और रचनात्मक साहित्य नहीं। इसका बहुत बड़ा कारण समय की अल्पता और भाषा की दुरूहता है यदि हिंदी साहित्य को भारी-भरकम शब्दों से मुक्त कर सरल और संक्षिप्त बनाया जाए तो वह अधिक-से-अधिक पाठकों के लिए रोचक व पठनीय होगा; बोझिल नहीं। आपको क्या लगता है? देवकीनंदन खत्री द्वारा लिखा गया 'चंद्रकांता' इतना प्रसिद्ध कैसे हुआ? क्यों केवल उसे एक बार पढ़ने के लिए लोगों ने रातोंरात हिंदी पढ़नी तक सीख ली? इसका एकमात्र कारण था उसके रोचक कथानक और सरल-सुबोध भाषा की जुगलबंदी। हमारे बच्चे ब्रिटिश लेखिका जे.के. रोलिंग के 1997 में छपे तिलस्मी-जादुई उपन्यास 'हैरी पॉटर' के दीवाने हैं पर उन्हें देवकीनंदन खत्री के 1888 में छपे 'चंद्रकांता' का कोई अता-पता नहीं। वे इस तथ्य से अनभिज्ञ हैं कि अंग्रेज़ी साहित्य से लगभग एक शताब्दी पहले ही हिंदी साहित्य में 'तिलस्मी-ऐय्यारी' लेखन और वो भी उच्च कोटि का लेखन आरंभ हो चुका था।

आज की पीढ़ी जो अंग्रेज़ी को भाषा नहीं अपितु अपना 'स्टेटस सिंबल' यानि पद-प्रतिष्ठा का सूचक समझती है। इस वजह से केवल अंग्रेज़ी में बोलना, लिखना और पढ़ना चाहती है; उन्हें इस बात का बोध नहीं कि कोई भी व्यक्ति अपनी निज भाषा में जो रचनात्मकता अर्जित कर सकता है, वह किसी भी विदेशी भाषा में नहीं। शायद यही वह कारण है जिसके चलते साहित्य के क्षेत्र में तो भारतीयों ने उपलब्धियाँ हासिल की हैं, पर विज्ञान, तकनीकी और वणिज्य आदि में हम कोई विश्वस्तरीय कार्य या खोज करने में सफल नहीं हो पाए। आज़ादी के उपरांत जब हमारे देश में शिक्षा का विकास हुआ तो उसका माध्यम हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं को बनना चाहिए था; अंगेज़ी को नहीं। उत्तरसंरचनावादी विचारक रोलां बार्थ ने कहा भी है कि "रचनाकार जिस संस्कृति, जिस भाषा, जिस साहित्यिक परंपरा में पोषित है, लाख विद्रोह विमुखता की ओर प्रवृत्त हो, वह लिखेगा उसी परंपरा एवं काव्यशास्त्र की परिधि में।" अतः गैर-साहित्यिक तथा तकनीकी विषयों में अच्छी और पठनीय सामग्री का अभाव शिक्षा के माध्यम के रूप में अंग्रेज़ी के होने और हिंदी के न होने की सबसे बड़ी वजह है। देश के बाहर जहाँ-जहाँ भी हिंदुस्तानी किसी-न-किसी तरह पहुँचे, उनके साथ-साथ 'हिंदी' भी पहुँची। प्रबुद्ध समालोचक एवं व्यंग्यकार डॉ. हरीश नवल ने अपने लेख 'हिंदी का आकाश' में ऐसे हिंदुस्तानियों के चार वर्ग बताए हैं- "प्रथम वर्ग में वे भारतवासी हैं जो ढ़ाई हज़ार वर्ष पूर्व धर्म-प्रचारकों के रूप में गए। द्वितीय वर्ग उन भारतीयों का है, जो गिरमिटियों के रूप में (एग्रीमेंट या शर्त बंदीप्रथा के अंतर्गत) फीजी, मॉरीशस, त्रिनिडाड, गुयाना, सूरीनाम, ग्वाटालूप, दक्षिण अफ्रीका, मार्टिनी, जमैका आदि देशों में गए। तृतीय वर्ग में वे भारतीय हैं, जो रोज़ी-रोटी कमाने अमरीका, इंग्लैंड, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया आदि देशों में जा बसे। चतुर्थ वर्ग ऐसे भारतीयों का रहा जो शिक्षा, प्रशिक्षण, भारतीय राजकीय सेवा या विदेशी उपक्रमों में सेवा हेतु जाते हैं।" आँकड़ों के अनुसार विश्व में चीनी बोलने वालों का प्रथम, हिंदी बोलने वालों का द्वितीय तथा अंग्रेज़ी बोलने वालों का तृतीय स्थान है। यह हिंदी की उदार प्रवृत्ति का ही नतीज़ा है कि जो-जो विदेशी भाषा-भाषी किसी भी रूप में भारत के संपर्क में आए, उनसे हिंदी ने दिल खोलकर ग्रहण किया और जहाँ-जहाँ हिंदी पहुँची, वहाँ वह उनके रंग में रंग गई। गिरमिटिया देशों में जाकर इसने 'क्रियोली हिंदी' और उसकी विभिन्न शैलियों का निर्माण किया। 'क्रियोली' गिरमिटिया मज़दूरों की मातृभाषा और संबद्ध देशों के मूल निवासियों की भाषा के आपसी मिश्रण से उत्पन्न नवीन शैलीरूप है जैसे, फीजी में हिंदी की यह शैली 'फीजीबात' के नाम से प्रसिद्ध है। यह शैली अवधी, भोजपुरी, अंग्रेज़ी और काईबीती आदि का मेल है। ठीक ऐसे ही सूरीनाम में अवधी, भोजपुरी, अंग्रेज़ी और काईबीती आदि का मेल है। ठीक ऐसे ही सूरीनाम में अवधी, भोजपुरी, हिंदी, उर्दू, ब्रजभाषा और अंग्रेज़ी के मेल से बनी शैली का नाम 'सरनामी' है। इसी तरह दक्षिण अफ्रीका में 'नेताली' और उजबेकिस्तान व कजाकिस्तान में 'पारया' भी हिंदी की ही शैलियाँ हैं।

ऐसी है हमारी हिंदी – कहीं भी रच-बस जाने वाली! मॉरीशस में अंग्रेज़ी और फ्रेंच के बाद तीसरी सबसे लोकप्रिय भाषा हिंदी है। यहाँ अभी तक दो विश्व हिंदी संमेलन हो चुके हैं। हिंदी साहित्य के सुधी आलोचक कमल किशोर गोयनका जी ने मॉरीशस के उपन्यासकार अभिमन्यु अनत की तुलना हिंदी कथा-सम्राट प्रेमचंद से करते हुए उन्हें 'मॉरीशस के प्रेमचंद' की उपाधि दी है।

यदि बात साहित्यिक कृतियों के हिंदी अनुवाद के संबंध में हो तो रूस में हिंदी पुस्तकों का अनुवाद सबसे अधिक हुआ है। रूसी विद्वान डॉ. पेत्रोविच वारान्निकोव ने 'रामचरितमानस' का रूसी में पद्यानुवाद किया। पोलैंड में युल्यूश पार्नोवस्की ने रेणु के 'मैला आँचल' का पोलिश में अनुवाद किया है तो चेचिलिया कोस्सियो ने इतालवी में। बेल्जियम के फ़ादर कामिल बुल्के को कौन नहीं जानता? उन्होंने राम कथा की उत्पत्ति और विकास जैसे विषय पर 'डी.फिल' की उपाधि प्राप्त की। जापान के प्रोफेसर तोशियो तनाका जी ने गांधी जी की आत्मकथा को मूल गुजराती से जापानी में अनूदित किया है। युइचिरो मिकि ने 'मैला आँचल' और उपेंद्रनाथ अश्क की रचनाओं का जापानी में अनुवाद किया है। चीन के प्रो. यिन हांग यु एन ने वृंदावनलाल वर्मा के 'झाँसी की रानी' और इलाचंद्र जोशी के 'संन्यासी' का चीनी अनुवाद किया है तो प्रो. जिन दिंड्. हान ने 'मानस' का।

बॉलीवुड की फिल्मों के कारण भी विदेशों में हिंदी ने अत्यधिक लोकप्रियता अर्जित की। राज कपूर की फिल्में देखने और समझने के लिए रूसी लोगों ने हिंदी सीखी। अमिताभ बच्चन और शाहरुख़ खान की फिल्मों को भी बाहर पसंद किया जाता है। लता मंगेशकर के गाए हुए हिंदी गीतों का जादू विदेशों में भी खूब चलता है।

सोशल मीडिया और सूचना क्रांति के इस डिजिटल दौर में भी बखूबी अपना स्थान बनाए हुए है। फेसबुक, ट्विटर आदि पर भाषा बदलने की सुविधा है और कई लोग हिंदी का चुनाव करके आसानी से गूगल कीबोर्ड की सहायता से 'यूनिकोड' में अपनी बातें इंटरनेट पर साझा करते हैं। यह सुविधा गूगल पर कोई भी सूचना या जानकारी प्राप्त करने हेतु भी बहुत काम आती है। 'गूगल ट्रांसलेटर' के माध्यम से पढ़ी जा सकती है। हिंदी में www.abhivyakti-hind.org, www.anubhuti-hind.org, www.hindivishwa nic.inehindi आदि कई वेबसाइट हैं। फरवरी 2018 में एक सर्वेक्षण के हवाले से यह खबर मिली कि भारतीय उपभोक्ताओं ने इंटरनेट पर हिंदी का प्रयोग अंग्रेज़ी से अधिक किया।

राजभाषा हिंदी को एक अंतरराष्ट्रीय भाषा के रूप में स्थापित करने के उद्देश्य से 11 फरवरी, 2008 को विश्व हिंदी सचिवालय की स्थापना की गई थी। संयुक्त राष्ट्र रेडियो ने अपना प्रसारण हिंदी में भी प्रारंभ किया है और अगस्त 2018 में साप्ताहिक हिंदी समाचार बुलेटिन भी। भारत सरकार हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा बनाए जाने के लिए निरंतर प्रयासरत है। हमारे कई बड़े राष्ट्रीय नेताओं ने अंतरराष्ट्रीय मंचों से हिंदी में भाषण देने की पहल की। वर्तमान प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी जी भी गुजराती भाषी होने के बावजूद हिंदी में ही बोलना पसंद करते हैं। उनके हिंदी भाषण न केवल भारतीयों अपितु प्रवासी भारतीयों और विदेशी जनता के लिए भी अत्यधिक मनोरंजक और आकर्षक होते हैं। हिंदी को संघ की भाषा और एक समर्थ विश्व भाषा बनाने हेतु कुछ आवश्यक प्रयास जरूरी हैं; जिनमें से सबसे जरूरी है उसे अघोषित राष्ट्रभाषा से 'घोषित राष्ट्रभाषा' बनाने का कार्य। इस कार्य की पूर्ति हेतु कुछ लोगों को अपने क्षुद्र स्वार्थों का त्याग करना होगा और नेताओं को अपनी राजनैतिक इच्छाशक्ति को प्रबल करना होगा। ताकि भविष्य में हिंदी का सूरज कहीं भी अस्त न हो। अंत में, बापू का यह कथन यहाँ प्रासंगिक होगा कि "आज की पहली और सबसे बड़ी देश सेवा, समाज सेवा यह है कि हम अपनी देशी भाषाओं की ओर मुड़ें तथा हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करें क्योंकि हर भाषा के अपने संस्कार और संस्कृति होती है।" (वहीं पृ. सं. 28) अतः हिंदी की रक्षा हमारी भारतीयता की रक्षा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कुमुद शर्मा, हिंदी के निर्माता, भारतीय ज्ञानपीठ, 2006, पृ. सं. 326-27

2. डॉ. मुकेश अग्रवाल, सामान्य भाषाविज्ञान और हिंदी भाषा, के. एल. चौधरी प्रकाशन, 2002

3. रामविलास शर्मा, भाषा और समाज, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., 2002

4. संपा. डॉ. रमा, वैश्विक पटल पर हिंदी, भाग-1, साहित्य संचय, दिल्ली-90, 2017

5. गवेषणा, अंक 105/2015, जापान में हिंदी : एक आकलन

6. पुस्तक संस्कृति, वर्ष-3, अंक-1, जनवरी-मार्च 2018, 'विदेश में हिंदी' विशेषांक, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत

7. पुस्तक संस्कृति, वर्ष-4, अंक-5, सितंबर-अक्तूबर 2019, 'बा-बापू-150' विशेषांक, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत

8. राजभाषा हिंदी, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, 2000, पृ. सं. 267

9. स्मारिका; दसवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन विशेषांक, सितंबर 2015, विदेश मंत्रालय, भारत सरकार, पृ. सं. 309

10. स्मारिका, ग्यारहवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन, मॉरीशस, 2018, विदेश मंत्रालय, भारत सरकार, पृ. सं. 226-27

– बी-3/188, पश्चिम विहार, दिल्ली-110063

❑❑❑

हम और हमारी हिंदी भाषा

डॉ. बद्रीप्रसाद पंचोली

हिंदी संसार की प्रथम भाषा है जिसको विश्व के 134 करोड़ लोग समझते हैं और बोलते है। चीन की मंदारिन भाषा को बोलने वाले 110 करोड़ लोग हैं। 10 जनवरी को विश्व हिंदी-दिवस पर गंभीरता से इस बात पर चिंतन किया जाना चाहिए कि अंग्रेजों को इस देश से निकाल देने के बाद अब हम अंग्रेज़ी की गुलामी से मुक्त क्यों नहीं हो पा रहे हैं?

हम भाषा को मनुष्य का भूषण-अलंकार मानते हैं-

केयूराणि न भूषयन्ति भुषणं हारा नचन्द्रोज्जवला
न स्नानं न विलेयन न कुसुमं नालङ्ता धार्यते
वाण्येका सभलंकरोति पुरुषं या संस्कृत धार्यते
क्षीमन्ते खलु भूषणानि सतत वाग्भूषणं भूषणम्।।

हिंदी को संसार की सबसे सरल और शक्तिशालिनी भाषा माना जाता है। वह संस्कारवती भाषा है। मनुष्य की पहचान मनुष्य के रूप में कराती है। वह संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा नहीं है तो भी भारतीय नेता पं. अटल बिहारी वाजपेयी, सुषमा स्वराज और प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने संयुक्त राष्ट्र संघ की साधारण सभा को हिंदी में ही संबोधित किया है।

महात्मा गांधी ने कहा था कि यदि आजादी और हिंदी में से एक को चुनना पड़ा तो मैं हिंदी को चुनूँगा क्योंकि आजादी उसी से आएगी। देश में हिंदी के विकास में रोड़े डालने वालों ने देश की एकता के मार्ग में भी रोड़े डाले हैं। हिंदी का विकास रुकने से देश की अन्य जनपदीय भाषाओं का विकास भी रुका है।

हिंदी हिंद की भाषा है और इसके पास संस्कृत का अकूत शब्द भंडार है। तत्सम और तद्भव शब्दावली में सूक्ष्म से सूक्ष्म भाव-भंगिमा को प्रकट किया जा सकता है हिंदी के विकास में जनपदीय भाषाओं का महत्वपूर्ण योगदान है।

महात्मा गांधी की जन्मशती चल रही है। उनको सबसे बड़ी श्रद्धांजलि यही होगी कि हिंदी को जीवन में और शासन में प्रतिष्ठित करके अपनी जागरूकता का परिचय दें।

तमिलनाडु में राजनैतिक कारणों से हिंदी का विरोध है। पर, हिंदी की प्रकृति की पहचान करने वालों ने स्पष्ट कर दिया है कि तमिल स्रोत से विकसित भाषा है।

हिंदी हृदय को हृदय से जोड़ने वाली एकता की भाषा है। दक्षिण के गोपाल स्वामी आयंगर ने हिंदी की शक्ति को समझकर ही इसे संविधान में राजभाषा के रूप में स्वीकृत करने का प्रस्ताव रखा था। उसकी छाती पर अंग्रेज़ी को बिठाने वालों को कैसे धिक्कारा जाए। राम स्वामी ने कहा था कि देश का भविष्य हिंदी के साथ जुड़ा है। तमिल भाषी कई लोगों को हिंदी का ज्ञान-हिंदी क्षेत्र के लोगों से अच्छा है। इस बात को वे स्वीकार करते हैं।

हम स्वीकार करें या न करें, हिंदी ही भारत की राष्ट्रभाषा है। इसको अनुवाद की भाषा बनाकर हिंदी की अवमानना की गई है।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने हिंदी की ताकत को समझकर ही कहा था-

मानस-भवन में आर्यगण जिसकी उतारें आरती
भगवान सारे विश्व में गूंजे हमारी भारती।

हिंदी परिवार के संस्कारों को जगाने वाली भाषा है। इसको सभी भारतीय भाषाओं को बोलने वाले अपनी उच्चारण पद्धति के अनुसार बोल सकते हैं।

भारत विश्व कुटुंब की भावना को परिपुष्ट करता है। भारत ने संसार को परिवार नामक संस्था प्रदान की है। परिवार संसार का सबसे बड़ा विश्वविद्यालय, सबसे बड़ा चिकित्सालय, सबसे बड़ा प्रशिक्षणालय और साधना केंद्र है। इसमें सब सदस्यों को अपने दोषों को दूर करने की सुविधा होती है- परितः वारयति स्वदोषान् यत्र। परिवार को यह रूप हिंदी ने प्रदान किया है। हिंदी परिवार की शक्ति है- आधार है।

चरित्र की निर्मलता भारतीयता की पहचान है भारत विश्व को सच्चरित्रता की शिक्षा देकर विश्वगुरु कहलाया था। हमारी भाषा ने इसमें महत्वपूर्ण योगदान दिया था।

हमारी भाषा का सर्वोच्च ग्रंथ रामचरितमानस है। इसमें गोस्वामी तुलसीदास ने जीवन के किसी भी पक्ष को नहीं छोड़ा है। स्वयं रचनाकार ने कहा है-

नानापुराण निगमागमसम्मतं यद् रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि
स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा भाषा निबंध विमञ्जुल मालनोति।।

इसमें राम की गाथा का गान करते हुए तुलसी ने भारत की शाश्वत - सनातन परंपरा को प्रकाशित किया है कबीर आदि संत कवियों ने भी कविता में जीवन रस को भरा है। हमारी भाषा ने इसमें प्रभूत योगदान दिया है। राम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं।

'राष्ट्र' शब्द का अर्थ है- राजमान, प्रकाशमान, द्युतिमान, द्योतमान। जब मनुष्य में श्रेष्ठ आचार और विकार के कारण सत्व गुण का उद्रेक होता है तो मनुष्य प्रकाशमान राष्ट्र बन जाता है। वह जहाँ रहे- वह भूखंड भी राष्ट्र बन जाता है। भारत-भायां रतः - राष्ट्र इसी भाव वाला है। यह राज् दीप्तौं से विकसित शब्द है।

हिंदी में एक राष्ट्र रा दाने त्योगे अर्थ में भी ष्ट्रम् प्रत्यय पूर्वक बना है। इस राष्ट्र कर अर्थ है- दानशील, त्यागभूमि। राजा शिवि ने बाज को पक्षी के वजन के बराबर अपना मांस खिला दिया। महर्षि दधीचि ने अपनी अस्थियाँ दान में दे दीं- देवों की विजय हेतु।

इन शब्दों के विश्लेषण से हिंदी की शक्ति का पता चलता है। भारतीय संविधान के अनुसार भारत में भारतीय नागरिक रहता है। कोई छोटा-बड़ा नहीं है। भारत का एक अखंड समाज है।

भारतीय परंपरा मानती है कि मानवी माता से जन्म लेने से ऋण ब्राह्मण, ऋण क्षत्रिय, ऋण वैश्य, ऋण शूद्र और ऋण मनुष्य पैदा होता है- ऋण हवै जायमानः। इन सबको ऋण से धन बनना पड़ता है। जो धन बनने में सफल होता है। वह धन्य कहलाता है। हम धन्यवाद तो कहते हैं; पर धन्य कौन होता है- यह नहीं जानते।

धर्मशास्त्र के अनुसार मनुष्य तीन ऋण से ऋणी है। देव ऋण चुकाने के लिए वह नित्य अग्निहोत्र करता है। पितृऋण से मुक्त होने के लिए वह दांपत्य जीवन का आनंद लेते हुए उत्तम संस्कारवान पुत्र/पुत्री को जन्म देता है। इसी तरह तीसरे ऋषि ऋण से मुक्त होने के लिए वह स्वाध्याय का मार्ग अपनाता है- स्वाध्यायेन अर्चभेद् ऋषीन्। स्वाध्याय को मनु ने परम ज्योति कहा है। ऋण मुक्त होकर मनुष्य इस धरती माता को स्वर्ग बना देता है।

मनुष्य बनने और मनुष्योचित कार्य संपन्न करने के लिए उसको अपनी भाषा ही सहायता करती है।

– बी-6 दातानगर, रेंबल रोड अजमेर, राजस्थान-305001

❑❑❑

राष्ट्रलिपि के रूप में देवनागरी

रमेश चंद्र

हम जानते हैं कि देश में एक राष्ट्रलिपि होना बहुत जरूरी है। ऐसी एक राष्ट्रलिपि की आवश्यकता पर जहाँ विद्वानों ने बहुत बल दिया है, वहीं उन्होंने एक लिपि होने के अनेक लाभ भी बताए हैं। परंतु वह एक लिपि कौन-सी हो, जो पूरे देश में अपनाई जा सके। यूँ इस बारे में विद्वानों ने रोमन, देवनागरी, उर्दू आदि के पक्ष में भी विचार व्यक्त किए हैं, परंतु देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता, व्याप्ति, प्राचीनता आदि गुणों को देखते हुए सबसे अधिक समर्थन इसी लिपि को मिला है। इस लिपि को राष्ट्रलिपि के रूप में अपनाने से पहले निम्नलिखित पहलुओं पर विचार करना आवश्यक होगा-

(क) महापुरुषों के विचार

(ख) आदर्श राष्ट्रलिपि में अपेक्षित गुणों के संदर्भ में देवनागरी की परिपूर्णता

(ग) भाषाओं की परस्पर सन्निकटता प्रकट करने में सक्षम

(घ) अन्य लिपियों से लैखिक सन्निकटता

(ङ) अन्य लिपियों के लेखिमों से स्वनिक सन्निकटता

(क) महापुरुषों के विचार -

देश में एक लिपि के रूप में देवनागरी को अपनाने की आवश्यकता पर महापुरुषों ने समय-समय पर बल दिया है राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने इस प्रश्न पर गंभीरता से विचार किया था। उन्होंने 'हरिजन सेवक' में एक स्थान पर लिखा है- "बंगाली में लिखी हुई गीतांजलि को सिवाय बंगालियों के और पढ़ेगा ही कौन? पर यदि यह देवनागरी लिपि में लिखी जाए, तो उसे सभी लोग पढ़ सकते हैं। संस्कृत, तत्सम और तद्भव शब्द उसमें बहुत हैं, जिन्हें दूसरे प्रांतों के लोग आसानी से समझ सकते हैं। मेरे इस कथन की सत्यता को हर कोई जान सकता है हमें अपने बालकों को विभिन्न प्रांतीय लिपियों को सीखने का व्यर्थ कष्ट नहीं देना चाहिए। यह निर्दयता नहीं तो और क्या है कि देवनागरी के अतिरिक्त तमिल, तेलुगु, कन्नड, मलयालम, ओड़िया तथा बंगाली इन छह लिपियों को सीखने में दिमाग खपाने को कहा जाए।" गांधी ने काका साहेब कालेलकर की अध्यक्षता में देवनागरी लिपि में कुछ सुधार करने के लिए एक समिति भी बनाई थी। वे यह मानते थे कि हिंदी या प्रांतीय भाषाओं को सीखने में देवनागरी के माध्यम से उनका समय बच सकता है।

भारतीय साहित्य परिषद्, मद्रास की दूसरी बैठक के सभापति पद से दिए गए भाषण में उन्होंने कहा- मैं तजुर्बे के साथ आपसे कहता हूँ कि दूसरी देशी भाषा सीख लेना कोई मुश्किल बात नहीं, लेकिन इसके लिए एक सर्वमान्य लिपि का होना आवश्यक है। तमिलनाडु में ऐसा करना कोई मुश्किल नहीं। यूरोप में वहाँ वालों ने सामान्य लिपि का प्रयोग किया और वह बिल्कुल सफल रहा। कुछ लोग तो यहाँ तक कहते हैं कि हम भी यूरोप की रोमन लिपि को ग्रहण करें, लेकिन फिर वाद-विवाद के बाद यह स्वीकार हो चुका है कि हमारी सामान्य लिपि देवनागरी ही हो सकती है और कोई नहीं। कभी-कभी उर्दू को उसकी प्रतिस्पर्धी बताया जाता

है, लेकिन मैं समझता हूँ कि उर्दू या रोमन किसी में भी वैसी संपूर्णता और ध्वन्यात्मक शक्ति नहीं है, जैसी देवनागरी में है। याद रखिए कि आपकी मातृभाषाओं के खिलाफ मैं कुछ नहीं कह रहा हूँ। अशिक्षितों को हम देवनागरी लिपि के द्वारा इन भाषाओं के साहित्य की शिक्षा क्यों न दें? हम जो राष्ट्रीय एकता हासिल करना चाहते हैं, उसकी खातिर देवनागरी को सामान्य लिपि स्वीकार करना आवश्यक है, इसमें कोई कठिनाई नहीं, बात सिर्फ यह है कि हम अपनी प्रांतीयता और संकीर्णता छोड़ दें। तमिल और उर्दू लिपियाँ मुझे पसंद न हों, वो बात नहीं है। मैं इन दोनों को जानता हूँ लेकिन मातृभूमि की सेवा ने, जिसके लिए मैंने अपना सारा जीवन अर्पण कर दिया है और जिसके बिना मेरा जीवन निरर्थक होगा, मुझे सिखाया है कि हमारे देश के लोगों पर अनावश्यक बोझ है, उनसे उन्हें मुक्त करने की कोशिश हमें करनी चाहिए। तमाम लिपियों को जानने का बोझ अनावश्यक है और उससे आसानी से बचा जा सकता है। इसलिए सभी प्रांतों के साहित्यकारों से मैं प्रार्थना करूँगा कि वे इस संबंध के भेदभावों को भुलाकर इस अत्यंत आवश्यक विषय पर एकमत हो जाएँ।" इस कथन का विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि गांधी जी देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता, व्यापकता तथा राष्ट्रीयता एवं उपयोगिता की दृष्टि से देवनागरी को समस्त भारत में व्यापक बनाना चाहते थे। उनके कथन के पीछे उनके देश प्रेम की भावना भी दिखाई देती थी।

देवनागरी लिपि को राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकार कराने का आग्रह विनोबा जी ने भी किया था। विनोबा जी ने कहा- "यदि हम सारे देश के लिए देवनागरी को अपना लें, तो हमारा देश बहुत मजबूत हो जाएगा, फिर तो देवनागरी ऐसी रक्षा कवच सिद्ध हो सकती है, जैसी कोई भी नहीं हो सकती।" उनका कहना था कि "हिंदुस्तान की तमाम भाषाएँ नागरी में लिखी जाएँ, तो उससे बहुत लाभ होंगे। इससे एक दूसरे की भाषा सोचने में बहुत मदद होगी। आज कई भाषाएँ नागरी में लिखी जाती हैं। संस्कृत, पालि, अर्ध-मागधी का बहुत-सा साहित्य नागरी में है। इसके अलावा हिंदी और मराठी जैसी दो भाषाएँ नागरी लिपि का ही एक रूप है। नागरी के ऊपर की शिरोरेखा हटते ही वह गुजराती बन जाती है। इसमें दो-चार अक्षरों का फर्क है। उसे वे लोग बदल देंगे, तो यह लिपि भी नागरी ही बन जाएगी। हिंदुस्तान की एकता के लिए इस बात की बहुत आवश्यकता है।" उनका कहान था कि "सारे भारत को एक रखने के लिए उन्हें जितने स्नेह-बंधनों से बांध सकते हैं, उतने स्नेह-बंधनों की आज जरूरत है। जैसे हिंदी एक स्नेह तंतु है, उतने ही महत्व का तंतु देवनागरी लिपि है।" वे कहते थे कि "हिंदुस्तान की एकता के लिए हिंदी जितनी सक्षम होगी, उससे अधिक काम नागरी लिपि करेगी। इसलिए मैं यह चाहता हूँ कि नागरी लिपि में ही भारत की सब भाषाएँ लिखी जाएँ। सब लिपियाँ चलें, किंतु देवनागरी का उपयोग साथ-साथ सभी भाषाओं के लिए वैकल्पिक रूप में होता रहे।" उनके शब्दों में- "जिन कारणों से 'सबकी बोली' के तौर पर हिंदी को मान्यता दी गई है, उन्हीं कारणों से नागरी को सबकी लिपि के तौर पर मान्यता मिलनी चाहिए। हिंदुस्तान की अन्य भाषाएँ भी देवनागरी लिपि में लिखी जाएँ, ऐसा निर्णय होने पर दूसरी भाषाओं के लिए आज जो लिपियाँ चल रही हैं, उनका निषेध नहीं होगा, वे लिपियाँ भी चलेंगी और नागरी भी चलेगी।" उन्होंने एक अन्य अवसर पर कहा था कि "भिन्न-भिन्न लिपियाँ भारत में चलती हैं। उन सबकी अपनी-अपनी खूबियाँ हैं। मैं सबसे कहता हूँ कि आपकी भाषा नागरी में लिखी जाए, तो सारे भारत के शिक्षित लोगों को जोड़ने में मदद मिलेगी। नागरी लिपि पूर्ण है, ऐसा किसी का दावा नहीं है। दुनिया की कोई लिपि पूर्ण हो सकती है, वह नागरी लिपि है।" उनका मानना था कि "नागरी लिपि अगर हिंदुस्तान की सभी भाषाओं के लिए चले, तो हम सब लोग बिल्कुल नजदीक आ जाएँगे।" इसी बात को दोहराते हुए एक अन्य अवसर पर उन्होंने कहा था- "यदि सभी भाषाओं के लिए एक देवनागरी को स्वीकार कर लिया जाए, तो निश्चित ही यह भारत में व्याप्त विविधता की खाई को पाटने का काम कर सकती है।"

महर्षि दयानंद सरस्वती ने कहा था कि "मेरे नेत्र तो वे दिन देखना चाहते हैं जब कश्मीर से कन्याकुमारी और अटक से कटक तक नागरी अक्षरों का ही उपयोग और प्रचार होगा। मैंने आर्यावर्त भर में अपने सभी ग्रंथ नागरी हिंदी भाषा में लिखे और प्रकाशित किए हैं।" डॉ. मलिक मोहम्मद का मानना है कि "जिस प्रकार से भारतीय एकता के लिए संपर्क भाषा के रूप में हिंदी

भाषा एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती आ रही है, उसी प्रकार संपर्क लिपि के रूप में देवनागरी की उपयोगिता निर्विवाद है। एक तो विशाल जनसमूह की संपर्क भाषा की लिपि होने के कारण देवनागरी काफी प्रचलन में है, दूसरे वैज्ञानिकता और व्यावहारिकता की दृष्टि से भी वह भारत के जनसमाज के लिए अधिक अनुकूल है।" कोलकाता हाई कोर्ट के जस्टिस शारदाचरण मिश्र के मतानुसार "केवल देवनागरी ही ऐसी लिपि है, जो समस्त भारत में प्रचलित की जा सकती है" उन्होंने नागरी को सबसे सुगम, सुंदर एवं व्यापक माना था। वे इसे संसार की समस्त लिपियों में श्रेष्ठ मानते थे। उनकी प्रेरणा से कोलकाता में 'एकलिपि विस्तार परिषद्' नामक एक परिषद् की स्थापना भी की गई थी। इस परिषद् ने एक मासिक पत्रिका 'देवनागर' भी निकाली थी, जिसमें भिन्न-भिन्न भारतीय भाषाओं के लेख देवनागरी में छपते थे।

पंडित जवाहरलाल नेहरू के शब्दों में "देवनागरी को समूची भारतीय भाषाओं के लिए अतिरिक्त लिपि के रूप में स्वीकार कर लेना चाहिए। इससे एक राज्य के निवासी दूसरों की भाषाएँ आसानी से सीख सकेंगे, क्योंकि असली कठिनाई भाषा की उतनी नहीं, जितनी लिपि की है।" डॉ. राजेंद्र प्रसाद का कहना था कि "कुछ लोग यह भी सुझाव रखते हैं कि नागरी की बजाय रोमन लिपि को ही स्वीकार कर लेना चाहिए। यह सुझाव सिद्धांततः उचित नहीं है, यदि रोमन लिपि को ही स्वीकार करना उचित समझ लिया जाए, तो स्वतंत्रता की भी आवश्यकता नहीं रह जाती। विदेशी राज्य से भी काम चल सकता था, क्योंकि डेढ़ सौ वर्षों से तो चल ही रहा था। इसलिए नागरी लिपि ही संपूर्ण देश को एक भाषा मंच पर लाकर खड़ा कर सकती है।" उनका कहना था कि "भारत के अन्य प्रदेश के लोगों को कैसे देवनागरी से अवगत करवाया जाए। इस बारे में यह उचित होगा कि प्रत्येक प्रदेश की भाषा की साहित्यिक संस्थाएँ उस भाषा की कृतियों को देवनागरी में छपवाने का आयोजन करें। समान लिपि के रूप में देवनागरी का प्रयोग अधिक उपयोगी होगा। देवनागरी के पक्ष में सबसे बड़ी बात यह है कि संस्कृत का समस्त साहित्य देवनागरी लिपि में है।" उनका यह भी कहना था कि "आज हिदुस्तान में नागरी और उससे मिलती-जुलती लिपियाँ भिन्न-भिन्न भाषा-क्षेत्रों में प्रचलित हैं, परंतु स्वरूप में भिन्न होने पर भी भारत की सभी भाषाओं की वर्णमाला तथा ध्वनि-पद्धति एक ही है। अतः देश के पढ़े-लिखें लोग नागरी लिपि सीख जाएँ, तो भारत में एक सामान्य लिपि का रास्ता खुल जाएगा।"

देवनागरी की वैज्ञनिकता के बारे में सेठ गोविंददास ने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किए थे- "हमारी देवनागरी इस देश की ही नहीं, समस्त संसार की लिपियों में सबसे अधिक वैज्ञानिक लिपि है। हमारी लिपि में स्वरों और व्यंजनों का जैसा वैज्ञानिक पृथक्करण है, वैसा अन्य लिपियों में नहीं। हर विषय की शिक्षा हमारी लिपि के द्वारा जितनी सुगमता से दी जा सकती है, उतनी अन्य किसी लिपि के द्वारा नहीं। फिर हमारी लिपि संस्कृत लिपि होने के कारण अन्य प्रांतीय भाषाओं की लिपियों के जितनी सन्निकट है, उतनी अन्य कोई लिपि नहीं। मराठी में तो इस लिपि का उपयोग होता है, गुजराती लिपि और हिंदी की लिपि में भी अधिक अंतर नहीं और बांग्ला लिपि के भी अधिकांश अक्षर नागरी लिपि से मिलते-जुलते हैं। इतना ही नहीं, बर्मा, सिंहल, मलाया, श्याम, हिंदेशिया और हिंद-चीन आदि की वर्णमालाएँ भी प्रायः देवनागरी वर्णमाला के ही समान हैं। फिर भी आधुनिक यंत्रकाल में उसमें थोड़े-बहुत सुधारों की आवश्यकता है। विशेषज्ञों की राय से इन सुधारों को अवश्य ही स्वीकार कर लेना चाहिए। इन दिशा में हम संकुचित वृत्ति न रखें। हमारी भाषा और साहित्य में निर्माण का कार्य हमें तेजी से अवश्य चलाना है और जीवित भाषा में भाषा के लिए स्वच्छंदता की भी आवश्यकता है। स्वच्छंदता में बंधन अखरते हैं, तथापि कुछ न कुछ नियंत्रण भी आवश्यक होते हैं। इस क्षेत्र में हमें बहुत सूक्ष्म अनुसंधान की ओर तो नहीं जाना चाहिए, किंतु भाषा के रूप के संबंध में विद्वानों को एकत्रित होकर कुछ न कुछ निश्चय कर लेना आवश्यक है।"

नागरी लिपि के संबंध में आचार्य नरेंद्र का विचार था कि "नागरी लिपि ही हमारे देश की सर्वमान्य लिपि हो सकती है, किंतु प्रयत्नों की कमी के कारण इस दिशा में हमारे देश के विद्वान, शासक या व्यवसायी लोग कुछ विचार नहीं कर रहे हैं। प्रायः लोगों को यह मालूम नहीं कि प्रांतीय लिपियों की अपेक्षा नागरी लिपि

की छपाई अधिक आसानी से हो सकती है और सस्ती भी है। नागरी ज्यादा वैज्ञानिक और स्वयंपूर्ण है और स्वयंपूर्ण अक्षर का होना ही उसकी सफलता का मुख्य कारण हैं।" नागरी के राष्ट्रीय पक्ष को प्रस्तुत करते हुए उन्होंने कहा, "भारतीय राष्ट्र संघ के विभिन्न प्रांतों में व्यवहृत होने वाली भाषाओं की लिपियाँ भिन्न अवश्य हैं, किंतु बोलने वालों की दृष्टि से हिंदी भाषा और नागरी लिपि का विश्व में चौथा स्थान है। भारत की कतिपय अन्य लिपियों से सादृश्य होने के कारण इसके प्रसार की संभावना और अधिक प्रतीत होती है। जहाँ तक तेज लिखने की बात है, कई लिपियों में यह गुण नागरी से अधिक अवश्य है, तो नागरी में इनकी अधिकता स्पष्ट प्रतीत होती है।"

बाल गंगाधर तिलक जी का विचार था कि "देवनागरी लिपि के द्वारा मराठी की तरह गुजराती, बांग्ला आदि भाषाएँ लिखना संभव होगा, तो देश के विषय का बहुत कुछ कार्य संभव हो जाएगा। यदि एक भाषा न हो, एक लिपि भी यदि हो जाए तो कम लाभ न होंगे।" अरुणाचल प्रदेश के पूर्व राज्यपाल माता प्रसाद का भी मत है कि- "नागरी लिपि इतनी वैज्ञानिक है कि इस लिपि में देश की ही नहीं, विश्व की अन्य भाषाओं को भी लिखा जा सकता है चूँकि नागरी लिपि में जो लिखा जाता है, वही पढ़ा जाता है और जो पढ़ा जाता है, वही लिखा जाता है, इसलिए नागरी लिपि के द्वारा किसी भाषा को न जानते हुए भी उसे सही रूप में लिखा और पढ़ा जा सकता है।"

राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन का मानना था कि "संसार की कोई लिपि यदि सर्वाधिक पूर्ण है, तो एकमात्र देवनागरी ही।" महावीर प्रसाद द्विवेदी ने "देवनागरी लिपि को वैज्ञानिक लिपि" कहा और जॉन क्राइस्ट ने इसे "मानव मस्तिष्क से निकली हुई वर्णमालाओं में सबसे अधिक पूर्ण वर्णमाला" बताया।

डॉ. एम. एस. दक्षिणामूर्ति का कथन है कि "एक भाषा के लोग दूसरी भाषा को सीखना चाहते हैं, तो कभी-कभी लिपि बाधक होती है। एक सामान्य लिपि के स्वीकारण द्वारा इस समस्या का समाधान किया जा सकता है इस परिप्रेक्ष्य में देवनागरी लिपि की उपयोगिता स्वयंसिद्ध है।" डॉ. रामप्रकाश सक्सेना का मानना है कि "यदि भारत की सभी भाषाएँ देवनागरी लिपि में लिखी जाएँ, तो इससे देश में भावनात्मक एकता बढ़ेगी और ज्ञान के क्षेत्र में भी संपूर्ण लाभ होगा। इसके लाभ निकट भविष्य में चाहे कम दिखाई दें, पर दीर्घकाल में बहुत होंगे।" डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी का विचार है कि "भारत की सभी लिपियाँ देवनागरी लिपि की स्वगोत्र या कौटुंबिक लिपियाँ ही सिद्ध होती हैं। वास्तव में स्वभावत: देवनागरी ही भारत की एकमात्र राष्ट्रीय लिपि है। साथ ही उसमें निहित उसके गुण भी बिल्कुल प्रत्यक्ष हैं।"

डॉ. कुंज बिहारी वार्ष्णेय का कहना है कि "प्राचीन काल से नागरी लिपि का संबंध बहुत सी भाषाओं के साथ होने के कारण नागरी लिपि देश की प्रमुख और व्यापक लिपि रही है। नागरी लिपि अपनी अनेक मर्यादाओं के बावजूद दूसरी लिपियों से अपेक्षाकृत अधिक गुणयुक्त और वैज्ञानिक है" पंडित कलानाथ शास्त्री का निष्कर्ष है कि "भाषा शास्त्रीय प्रतिमानों के आधार पर यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि देवनागरी लिपि नितांत वैज्ञानिक, अधिकाधिक पूर्ण और समृद्ध है।" डॉ. रघुत्तम राव का मानना है कि "देवनागरी लिपि ही एकमात्र ऐसी लिपि है जिससे समूचे देश में अधिक लोग परिचित हैं।" सुश्री निर्मला देशपांडे के शब्दों में "देवनागरी दोहरा काम कर सकती है, प्रेम का और ज्ञान का। दिलों को जोड़ने का और ज्ञानवर्धन का। (देवनागरी के राष्ट्रलिपि के रूप में अपना लिए जाने से हम) अनेकों भ्रांतियों को छोड़कर एक-दूसरे की भाषा को सीख सकेंगे, एक-दूसरे के साहित्य से लाभ उठा सकेंगे।"

इस प्रकार देश के भिन्न-भिन्न विद्वानों, समाज-सुधारकों, राजनैतिज्ञों आदि ने देवनागरी को ही राष्ट्रलिपि बनाने पर बल दिया है और इस हेतु इसके कुछ गुणों का भी वर्णन किया है। आइए, देखते हैं कि आदर्शलिपि अथवा राष्ट्रलिपि में क्या-क्या गुण होने चाहिए और देवनागरी उन गुणों पर कितनी खरी उतरती है।

(ख) आदर्श राष्ट्रलिपि में अपेक्षित गुणों के संदर्भ में देवनागरी की परिपूर्णता-

देवनागरी भारत के बहुत बड़े भू-भाग में व्यवहार में लाई जाने वाली लिपि है। इसी बात को देखते हुए दिनांक 10 अगस्त, 1961 तक दिल्ली में हुए मुख्यमंत्रियों

के एक सम्मेलन में यह प्रस्ताव पास किया गया था– "भारत की सब भाषाओं के लिए एक लिपि होनी वांछनीय है। यह सब भाषाओं में मेल-जोल बढ़ाने के लिए कड़ी बन सकेगी। यह देश की एकात्मकता को मजबूत करने में भी सहायक सिद्ध होगी। भारत के आज के भाषा-विषयक वातावरण में एकमात्र देवनागरी लिपि ही यह स्थान ग्रहण कर सकती है। इस लिपि को तत्काल मान्यता प्रदान करने में बाधाएँ आ सकती हैं, पर भविष्य में इस बात की ओर ध्यान देना चाहिए और इसके लिए एक योजना बनानी चाहिए।"

इस प्रस्ताव से देवनागरी लिपि के राष्ट्रलिपि बनने की शक्यता को बहुत बल मिला। परंतु देवनागरी ही राष्ट्रलिपि क्यों? इसके लिए किसी लिपि को राष्ट्रलिपि बनने के लिए आवश्यक गुणों के संदर्भ में देवनागरी के गुणों का विवेचन निम्नप्रकार किया जा सकता है–

(1) राष्ट्रलिपि में प्रत्येक ध्वनि के लिए अलग प्रतीक होना चाहिए और वह जैसा लिखा जाए वैसा ही बोला जाए तथा जैसा बोला जाए वैसा ही लिखा भी जाए, ताकि देश के किसी भी भाग में लिखित ध्वनि प्रतीक के बोलने में और उच्चारित ध्वनि-प्रतिक के लिखने में कोई भ्रम न हो। देवनागरी लिपि इस गुण से पहले ही संपन्न है और यही गुण है, जो इसकी वैज्ञानिकता का प्रमुख पहलू है।

(2) राष्ट्रलिपि दूसरी लिपियों की अधिकतम ध्वनियों के ध्वन्यात्मक और स्वनिमात्मक प्रतिलेखन में सक्षम हो। देवनागरी लिपि अपने परिवर्धन के बाद न केवल दूसरी लिपियों में बद्ध भाषाओं की अधिकतम ध्वनियों और स्वनिमों का प्रतिलेखन करने में पूर्ण रूप में संपन्न है, बल्कि इसमें ध्वन्यात्मक और स्वनिमात्मक प्रतिलेखन के गुणों से युक्त आइपीए के अनुरूप लेखिम भी है। देश की अन्य भाषा-ध्वनियों को लिखने के लिए परिवर्धित देवनागरी वर्णमाला में 12 स्वरों तथा 36 व्यंजनों के अलावा 12 मात्राएँ, अनुस्वार, विसर्ग, अनुनासिक चिह्न, हल्-चिह्न, अन्य भाषाओं की 18 व्यंजन ध्वनियों के विशेषक चिह्न हैं। इनके अतिरिक्त लिपि में द्वित्व, संयुक्ताक्षरों, आक्षरिकता के साथ-साथ वर्णात्मकता, सर्वाधिक वैज्ञानिकता, आईपीए के मान स्वरों के प्रति अनुरूपता, स्वरीय छटाएँ और स्वर-वर्ण मिश्रण; ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत स्वरों; हलंत, विसर्ग, श, ष, स; ध्वनिग्राफ आदि की व्यवस्था, लैखिक-वाचिक संगति, लालित्य, सहजता, सरलता, लेखिमों का नामकरण उनके उच्चारण मान के रूप में होना आदि गुण भी विद्यमान हैं। बल्कि कंठ्य, तालव्य, मूर्धन्य, दंत्य, ओष्ठ्य, दंत्योष्ठ्य अंतस्थ, ऊष्म आदि औच्चारणिक स्थानों के प्रतीक वर्ण; घोष, अघोष, अल्पप्राण, महाप्राण, अल्पप्राण अघोष, अल्पप्राण सघोष, महाप्राण अघोष, महाप्राण सघोष, स्पर्श, संघर्षी, स्पर्श-संघर्षी, अर्ध-स्वर, पार्श्विक, अनुनासिक, अनुस्वारतायुक्त आदि समस्त ध्वनि-प्रभेदों तथा विश्व भाषाओं के ध्वनि-प्रभेदों को अविकल रूप में व्यक्त करने वाले ध्वनि प्रतीक भी हैं। इसमें सघोष महाप्राण, मूर्धन्य, लुंठित, उत्क्षिप्त आदि के ध्वनि-प्रतीक भी हैं, जो विश्व की अधिकांश भाषाओं में नहीं मिलते। इतने गुणों से संपन्न देवनागरी देश-विदेश की हर ध्वनि को प्रकट करने में सक्षम है। डॉ. कामेश्वर वर्मा का तो कहना है कि "देवनागरी लिपि अतिशय ध्वन्यात्मक लिपि है इसलिए इस लिपि में वर्तनी की विविधता जिस हद तक कयामत ढा सकती है, उस हद तक किसी और लिपि में नहीं।"

(3) राष्ट्रलिपि की ध्वनि-व्यवस्था अन्य लिपियों से मिलती-जुलती हो। देवनागरी लिपि जहाँ, संस्कृत, मराठी, आधुनिक सिंधी, पालि, नेपाली, गुजराती आदि भाषाओं के लिए पहले ही काम में ली जा चुकी है, वहीं पंजाबी, बांग्ला, असमिया, ओड़िया, कन्नड, तेलुगु, मलयालम आदि भाषाओं की लिपियों की वर्णमाला और ध्वनि-व्यवस्था देवनागरी लिपि जैसी ही है और लगभग उसी क्रम में व्यवस्थित है।

(4) राष्ट्रलिपि का रूप चिर-प्रचलित हो, ताकि वह देश के अधिकतर भू-भाग में पहले ही जानी-पहचानी हो। देवनागरी इस कसौटी पर भी खरी उतरती है इसका उद्भव दसवीं शताब्दी में हुआ था और इसका वर्तमान रूप पंद्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी में स्थिर हो चुका था। इस प्रकार देवनागरी देश के अधिकतर भू-भाग में जानी जाने वाली लिपि है।

(5) राष्ट्रलिपि का संबंध देश की किसी एक ही भाषा से न हो, बल्कि वह देश की भिन्न-भिन्न भाषाओं में पहले ही व्यवहृत हो। देवनागरी लिपि इस अपेक्षा को भी पूरा करती है। इस लिपि में देश की मराठी, हिंदी, संस्कृत, नेपाली, बोड़ो, डोगरी, सिंधी, कोंकणी आदि भाषाएँ तथा अवधी, ब्रजभाषा, बघेली, छत्तीसगढ़ी,

बुंदेलखंडी, मगही, मैथिली, बांगरू, राजस्थानी, खड़ी बोली, डोगरी आदि बोलियाँ पहले ही लिखी जा रही हैं इसके अतिरिक्त पंजाबी, गुजराती, बांग्ला और असमिया भाषाओं की क्रमशः गुरमुखी, गुजराती, बांग्ला और असमिया लिपियाँ देवनागरी से साम्य रखती हैं तथा उन प्रदेशों के लोग देवनागरी से भली-भाँति परिचित हैं। साथ ही देश के हिंदीतर भाषी क्षेत्रों में भी यह एक जानी-पहचानी लिपि है। इस लिपि के व्यवहार का एक मानचित्र आगे दिया है। इतना ही नहीं, देश के बाहर नेपाल, पाकिस्तान, बर्मा, मॉरीशस, फिजी, जावा, सुमात्रा, बांग्लादेश, फिजी आदि देशों में इस लिपि को जानने वालों की संख्या बहुत अधिक है। इस प्रकार इस लिपि का व्यवहार क्षेत्र न केवल देश में, बल्कि विदेशों में भी दूर-दूर तक है।

(6) राष्ट्रलिपि की आधारभूमि वैज्ञानिक होनी चाहिए। देवनागरी पूर्णतः एक वैज्ञानिक लिपि है, जिसकी चर्चा पहले ही विस्तार से की जा चुकी है।

(7) राष्ट्रलिपि के वर्ण शब्द में प्रयोग के बाद विश्लेष्य हों। देवनागरी आक्षरिक लिपि के कारण इसमें आक्षरिकता के सभी गुण तो हैं ही, साथ ही संयुक्ताक्षरों, संधियों, द्वित्वों आदि में भी इसके वर्ण अविश्लेष्य नहीं हैं और उनको वर्णात्मक लिपि की भाँति पृथक-पृथक करके देखा जा सकता है। इससे भाषा में प्रयुक्त शब्द का विश्लेषण करने, उसका अर्थ निश्चित करने अथवा जानने और नए शब्द बनाने में सहायता मिलती है। आक्षरिक होने के कारण इस लिपि में कर्ण-ग्राह्य और नेत्र-ग्राह्य माध्यमों में संगति रहती है। इस प्रकार देवनागरी लिपि के सभी गुणों से संपन्न होने के साथ-साथ ध्वनि-विश्लेषण में भी सुकर है।

(8) राष्ट्रलिपि के साथ देश के अधिकांश लोगों का भावनात्मक संबंध हो। देवनागरी लिपि देश के लोगों से भावनात्मक स्तर पर एकाकार है। देश के प्रसिद्ध धर्मग्रंथ वेद, महाभारत, रामायण, पुराण, स्मृतियाँ आदि, भाषिक शिल्प के अभिज्ञान शाकुंतलम्, मृच्छकटिक, कादंबरी, अष्टाध्यायी, नाट्यशास्त्र आदि आयुर्वेदीय अध्ययन चरक सहिता आदि सभी संस्कृत में हैं, जो देवनागरी लिपि में है। वैसे भी देश की सभी भाषाओं का साहित्य किसी न किसी रूप में संस्कृत का ऋणी है। इसके अतिरिक्त यह लिपि ब्राह्मी (ब्रह्मा द्वारा बनाई गई) लिपि की वंशजा होने की अभिभूति भी कराती है तथा देवभाषा संस्कृत को रूपायित करने वाली होने के कारण इसके व्यवहारकर्ताओं को धार्मिक गौरव भी प्रदान करती है इन कारणों से देश के लोग न केवल देवनागरी लिपि को जानते हैं, बल्कि इससे उनका धर्म, संस्कृति, भाषा आदि के स्तर पर भावनात्मक संबंध भी है। इस प्रकार यह लिपि सामासिक भाषिक संस्कृति तथा राष्ट्रीय अस्मिता की पहचान बन गई है।

(9) राष्ट्रलिपि लेखन और वाचन दोनों दृष्टियों से सहज हो। देवनागरी लिपि दोनों ही तरह सहज है, क्योंकि इसमें वर्तनी संबंधी झंझट नहीं रहता और शब्दों की स्पेलिंग या उनका उच्चारण याद नहीं रखना पड़ता, क्योंकि इसमें जैसा बोला जाता है, वैसा ही लिखा जाता है और जैसा लिखा जाता है, वैसा ही बोला जाता है।

(10) राष्ट्रलिपि त्वरा-लेखन के अनुकूल हो। देवनागरी लिपि में सहजता, सरलता, पूर्ण लैखिक-वाचिक संगति, पूर्ण वैज्ञानिकता, वर्णात्मक लिपि के गुणों के साथ-साथ आक्षरिकता के गुणों से युक्त तथा अनुस्वार एवं अनुनासिकता चिह्नों, शुद्ध व्यंजनों, सभी भाषा-ध्वनियों के प्रतीकों, मात्राओं एवं द्वित्वता की व्यवस्था होने के कारण इसमें कुछ याद रखना और रटना नहीं पड़ता तथा लिखते समय वर्तनी आदि के बारे में कुछ सोचना नहीं पड़ता, जिससे इसमें तेजी से लिखा जा सकता है।

(11) राष्ट्रलिपि संकीर्णतावादी न होकर विकासवादी होनी चाहिए। देवनागरी लिपि पूर्णतः विकासवादी है। सर्वप्रथम तो ब्राह्मी, गुप्त, कुटिल आदि से विकसित होने के कारण इसका स्वरूप ही विकासवादी है। दूसरे, आधुनिक युग की ध्वन्यात्मक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए इसने हाल ही में अपने कुछ वर्णों के रूप में परिवर्तन किया है और कुछ नए स्वरों तथा व्यंजनों के विशेषक चिह्न शामिल किए हैं। इस प्रकार यह लिपि समय के साथ अपने रूप में परिवर्तन और परिवर्धन करती रहती है और विश्व की सभी ध्वनियों को सटीक अभिव्यक्ति देने के लिए प्रयासरत रहती है।

(12) राष्ट्रलिपि टंकण, मुद्रण, कंप्यूटर और इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों में प्रयोग के अनुकूल तथा सहज हो। देवनागरी लिपि इन गुणों से भी संपन्न है। इसके

टाइपराइटर तथा टेलीप्रिंटर की-बोर्ड को पहले ही अंतिम रूप दिया जा चुका है, कंप्यूटर का की-बोर्ड भी अंतिम रूप दिए जाने की अवस्था में है तथा पेजर, इंटरनेट वेबसाइट आदि अन्य माध्यमों में भी इसका उपयोग सुगमता से किया जा सकता हैं स्वनिमिक लिपि होने के कारण यह कंप्यूटर आदि के फोनेटिक की-बोर्ड के बहुत अनुकूल है।

(ग) भाषाओं की परस्पर सन्निकटता प्रकट करने में सक्षम-

भारत की भाषाएँ परस्पर इतनी सन्निकट हैं कि यदि उन्हें देश में सर्वाधिक जानी-पहचानी लिपि देवनागरी में लिखा जाए, तो एक भाषा के अनेक शब्दों से दूसरा भाषा-भाषी अपने आपको परिचित महसूस करता है और तब वह भाषा जैसी लगती है, क्योंकि लिपि रूप बदलने से उस भाषा के शब्द दूसरी भाषा के शब्दों से उसी प्रकार एकाकार हो गए लगते हैं, जैसे कोई वेश-भूषा बदलकर दो रूप बना ले और फिर उसके उस रूप को पहचानने के लिए वेश-भूषा रूपी बाधा को दूर कर दिया गया हो। भारत की लिपियाँ भारत के शब्दों की वेश-भूषाएँ ही है और इन्हें दूर करने से उनमें से अनेक का रूप एक ही या लगभग समान हो जाता है, वे सब संस्कृत के तत्सम या तद्भव शब्द ही होते हैं। इस प्रकार देवनागरी देश की भाषाओं की परस्पर सन्निकटता प्रकट करने में सक्षम है। कारण यह है कि देवनागरी में देश में उच्चारित सभी स्वनिमों के लेखिम हैं, जिनके माध्यम से वह उन्हें सही-सही रूप में प्रकट करके उनके सही रूप को सामने ला देती है। इस बात को देश की कुछ भाषाओं के शब्दों को देवनागरी में लिप्यंतरण से बेहतर ढंग से समझा जा सकता है-

ज्योति प्रसाद आगरवाला की असमिया कविता-

हे मोर सकलो शत्रु
तोक नमस्कार...
तोक बंधु रूपहे चाओं
तोरे सते मोर

हे मेरे समस्त शत्रुओ!
तुम्हें नमस्कार।
तुम्हें मैं बंधु रूप में
चाहता हूँ।
तुम्हारे साथ संघात
(संघर्ष)
संघात लागि
मोर जीवन ते
धुनीया प्रकाश पाओ

से मैं जीवन में
नया प्रकाश पाता हूँ!

रविंद्रनाथ टैगोर की 'मानसी' पुस्तक की 'सूरदासरे प्रार्थना' से-

अपार भुवन, उदार गगन, श्यामल काननतल
वसंत अति मुग्ध मूरति, स्वच्छ नदीर जल

गुजराती कवि नरसिंहराव भोलानाथ की 'हृदय वीणा' कविता से-

सुंदर शिव मंगल गुण गाऊं ईश्वरा
विभुवर भव भय हारक नमुं महेश्वरा

ओड़िया कविता मधुसूदन राव की कृति 'भारत भावना' से-

एहि कि से पुण्य भूमि भुवन-विदित,
सविस्तीर्ण रंगभूमि आर्य-गौरवार?
एहि कि भारत, यार महिमा, संगीत-
गंभीर-झंकारे पूर्ण दिग-दिगंतर?

डॉ. बदरीनाथ कल्ला की एक कश्मीरी कविता से-

म्योन भारत छुय महान, म्योन भारत हुय महान?
यिछु सोनुय पासबान, यिछु सोनयु गुलिस्तान

हिंदी रूपांतरण-

मेरा भारत है महान, मेरा भारत है महान
यह हमारा पासवान, यह हमारा गुलिस्तान

कन्नड कवि कुमार वाल्मीकि की कविता से-

सुकविग सुम्मान सूरि प्रकर दमलज्ञान मुनिकर
मुकुर गुणिगलिगे मूढ़ निधि सुरसरि सुधाशरधि

मलयालम रचनाकार नपियार विरचित 'तल' कथक से-

शरद मद मंदननाकिय, वरण वदनन् जनाशुभ-
वारण निपुणन समदासुर रिपु, वारण सेवित चरण सरोजन

तेलुगु रचना 'पोतत्र महाभागवतमु' से–

बाल रसाल साल नव पल्लव कोमल काव्य कान्याकन्

कू किच्चि यप्पडुमु गूडु मुंजिचुट कंटे सत्कबुल

(घ) अन्य भाषा–साहित्य के लिप्यंतरण में सक्षम–

नागरी लिपि के माध्यम से अंग्रेजी भाषा लिखने के सहस्त्रों उदाहरण हैं। उद्धरणों को प्रायः नागरी लिपि में देने का प्रचलन प्रारंभ हो गया है। नागरी लिपि के माध्यम से अंग्रेज़ी भाषा पढ़ाने के प्रयोग भी हुए हैं। यह प्रयोग ज्ञान प्रबोधिनी युवती प्रशाला, महाराष्ट्र ने किया है।

भारतीय भाषाओं के साहित्य को नागरी लिपि में लिप्यंतरित करने तथा वे भाषाएँ नागरी हिंदी माध्यम से सिखाने के लिए स्वयं शिक्षक व बालपोथियाँ बनाने का काम पर्याप्त अंशों में किया जा चुका है भुवनवाणी ट्रस्ट, लखनऊ; भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली; साहित्य अकादमी, दिल्ली, भाषा विभाग, चंडीगढ़; राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा; नागरी परिषद्, राजघाट, नई दिल्ली; दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास; सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी; निखिल भारतीय भाषापीठ, जयपुर; के. एम. हिंदी इंस्टीट्यूट आगरा; केंद्रीय संस्थान, आगरा; संथाल पहाड़िया सेवा मंडल, देवघर आदि का नाम उल्लेखनीय है। भुवनवाणी ट्रस्ट ने माधव कंदली रामायण (असमिया), कृतिवास रामायण (बांग्ला), रामचरितमानस (ओड़िया), वैदेही विलास (ओड़िया), जगमोहन रामायण (ओड़िया), भानुभक्त रामायण (नेपाली), रामवतार चरित (कश्मीरी), गिरधर रामायण (गुजराती), श्रीराम विजय (मराठी), रंगनाथ रामायण (तेलुगु), मौल्ल रामायण (तेलुगु), रामचंद्र चरित पुराणम् (कन्नड), भावार्थकृत रामायण (मराठी) आदि रचनाएँ नागरी लिपि में प्रकाशित की हैं। फारसी ग्रंथ सिरें अकबर (दाराशिकोह कृत ईश, केन केठ, प्रश्न, मुंडक, ऐतरेय और श्वेताश्वर उपनिषदों का भाष्य) का नागरी लिपि में प्रकाशन हुआ है। गुरमुखी में लिखित गुरुग्रंथ साहिब के अतिरिक्त बाइबल, कुरान आदि का भी नागरी लिप्यंतरण किया जा चुका है।

भारत में ऐसी बहुत-सी बोलियाँ हैं, जिनकी अपनी कोई लिपि नहीं है। नागालैंड भाषा परिषद्, कोहिमा को इन बोलियों के लिए देवनागरी पुस्तक प्रकाशन में पर्याप्त सफलता मिली है। पूर्वोत्तर की कूकी, खासी, मिजो, मिकिर, हमार, मणिपुरी, त्रिपुरी, बोड़ो, लेपचा, नगामी, भोटी, मीरी, नेपाली, हो, संथाली आदि 40 बोलियों की प्रारंभिक पुस्तकें, शब्दावलियाँ तथा स्वयं शिक्षक पुस्तकें ब्रजबिहारी कुमार के संपादन में नागरी में प्रकाशित हो चुकी हैं। मध्य प्रदेश के गोंड, भील आदि लोगों की भतरी, भीलाली, भीली, गोंडी, हलबी, खरिया, कोकू, कोरबा मुरिया, धूर्वा आदि चौबीस लिपिहीन बोलियों में से कुछ के लिए नागरी लिपि का व्यवहार होता है। अंडमान निकोबार में अंडमानी, अंग, शैंपेन तथा निकोबारी भाषाओं में नागरी माध्यम से पुस्तकें लिखने का काम हुआ है। डॉ. रामकृपाल तिवारी ने शैंपेन हिंदी शब्दावली तथा डॉ. व्यासमणि त्रिपाठी ने अंडमान तथा निकोबार के आदिवासियों की बोली पर पुस्तक प्रकाशित की है।

देवनागरी की राष्ट्रलिपि के रूप में सक्षमता को जाँचने के लिए उनको भी ध्यान में रखना समीचीन होगा।

उपर्युक्त विश्लेषण से यह देखने में आता है कि देश के अनेक राजनीतिज्ञों, शिक्षाविदों, समाज-सुधारकों, न्यायविदों आदि ने अपने विचार एक राष्ट्रलिपि के पक्ष में व्यक्त किए हैं। इस बारे में सभी ने देवनागरी लिपि का समर्थन किया है। देवनागरी लिपि ही ऐसी लिपि है, जो पूरी तरह से वैज्ञानिक, आदर्श, राष्ट्रलिपि में अपेक्षित गुणों से युक्त तथा देश की भाषाओं और लिपियों के लेखिमों और उनकी स्वनिक सन्निकटता प्रकट करने में सक्षम है। इसमें लैखिक-वाचिक संगति, दूसरी लिपियों की अधिकतम ध्वनियों के ध्वन्यात्मक और स्वनिमात्मक प्रतिलेखन में सक्षमता, अन्य लिपियों से मिलती-जुलती ध्वनि-व्यवस्था, देश की अनेक भाषाओं में चिरकाल से व्यवहृत रहने, वाचन, त्वरा लेखन, इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों में सुकर प्रयोग संबंधी गुण तथा वर्णात्मक लिपि के गुणों के साथ-साथ आक्षरिक लिपि के भी सभी गुण हैं। परिवर्धित देवनागरी वर्णमाला में वे सभी आवश्यक ध्वनि-प्रतीक हैं, जो देश-विदेश से वर्ण या तो अन्य लिपियों के उन्हीं वर्णों से अथवा किन्हीं अन्य वर्णों से मिलते-जुलते हैं। ध्वनिक स्तर पर यह लिपि देश की अन्य लिपियों के और भी अधिक निकट है। देवनागरी लिपि के ये गुण अन्यत्र दिए गए लिपि चार्ट, भारतीय

लिपियों के व्यवहार क्षेत्र के मानचित्र, रेखाचित्र आदि से संक्षिप्त रूप में स्पष्ट हो जाते हैं। देवनागरी को छोड़कर देश की अन्य लिपियाँ अपनी रचना-प्रक्रिया आदि में संकीर्णतावादी तथा रूढ़िबद्ध हैं। इन लिपियों की संरचना प्रायः एक ही भाषा के लिए की गई होती है और इस प्रकार ये एक-आयामी तथा यथास्थितिवादी हैं। प्रयोग स्तर पर रूढ़ होने के कारण ये लिपियाँ प्रकार्य स्तर पर भ्रांतिजनक हैं। इनके विपरीत देवनागरी लिपि की संरचना सहज, सरल, लचीली, लालित्यपूर्ण, आकर्षक, पद्धतिबद्ध और विकासवादी होने के कारण देश तथा काल-भेद से उच्चारण और लेखन की परिवर्तित आवश्यकताओं को पूरी तरह प्रकट करने में सक्षम रही है। अन्य लिपियों में अनुरक्षण की भावना तो रही है, परंतु वे विकासवादी नहीं रहीं। दूसरी ओर देवनागरी लिपि अनुरक्षित लिपि रहने के साथ-साथ सर्वस्पर्शी भी बनी रही। यही कारण है कि यह सभी राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय भाषिक अभिव्यक्तियों को सही-सही रूप देने में सक्षम है।

इस लिपि में प्राचीन काल से लेकर वर्तमान काल तक के सभी लैखिमीय तत्व मौजूद हैं। इसमें नाग भाषाओं का ङ, प्राकृत अपभ्रंश का ण, मराठी का मूर्धन्य पार्श्विक ळ, नासिक्य लिपि चिह्न, द्रविड़ भाषाओं के ह्रस्व ए, ओ, ट, ठ, ड, द; कश्मीरी भाषा के विशिष्ट स्वर और व्यंजन तथा सिंधी अंतःस्फोटी व्यंजन के अलावा तमिल, मलयालम, बांग्ला, असमिया उर्दू, फारसी, अरबी, रोमन आदि अनेक भाषाओं के ध्वनि तत्वों का प्रतिनिधित्व करने वाले प्रतीक हैं। इतना ही नहीं, घ, ध, भ सघोष महाप्राण ध्वनियाँ केवल देवनागरी का ही लक्षण हैं। अपने विकास-क्रम के माध्यम से इसने समय-समय पर सजातीय तथा विजातीय हर प्रकार के ध्वनि-प्रतीकों को अपने में समाविष्ट किया है। इस प्रकार देवनागरी लिपि ही ऐसी लिपि है, जो सामाजिक समरसता की द्योतक है और आदर्श राष्ट्रलिपि के सभी गुणों से संपन्न है।

– 46/22, गांधी नगर, पिक इंडिया के पीछे, पटौदी रोड, गुडगाँव, हरियाणा-122001

❑❑❑

हिंदी की राष्ट्रीय काव्य-धारा : उत्पत्ति और विकास

डॉ. दादूराम शर्मा

विश्वंभरा धरा के स्तवन में दैनिक कवि के कंठ से विनि:सृत भारती "माता भूमि: पुत्रोऽहं पृथिव्या:" भारतीय राष्ट्रीयता और विश्व मानवता का आदि स्रोत है। यह धरती हमारी तरह इतर मानवों की ही नहीं, मानवेतर पशु-पक्षी प्रभूति जंगम एवं लता वृक्षादि स्थावर प्राणियों की भी आश्रय-स्थली और पालिका है। हमने जननी की छोटी सी गोद से उतरकर धरा के विस्तृत और विशाल अंक में आश्रय लिया। जननी ने अपने शिशु के योग-क्षेम का समस्त भार विश्वभरणी वसुंधरा के कंधों पर डाल दिया और अपने बछड़े को पय: पान कराने को प्रस्नुता(पन्हाई हुई) धेनु के थनों से निकली दुग्धधारा की भाँति भूमि के वक्ष से उसकी इच्छित अभिलाषित वस्तुओं की सहस्त्रों धाराएँ फूट पड़ीं। सचमुच यह सुजला-सुफला शस्य श्यामला धरती ही तो हमारी-हम सभी चराचर प्राणियों की माँ है- यावज्जीवन हमें अपनी ममतामयी गोद में खिलाने वाली, अपने स्तन्य से हमें पुष्ट और बलिष्ठ बनाने वाली, हममें कर्म-स्फूर्ति भरने वाली एवं हमारे लिए नित्य नवीन कर्मक्षेत्र प्रस्तुत करने वाली।

धरती के साथ मानव का माता-पुत्र का संबंध मानवीय भावना और विचारधारा का सर्वोत्तम प्रतिफलन है। 'मैं धरा पुत्र हूँ' ये सुधा-सिक्त शब्द हमारे आभ्यंतर में प्रेवश करके हमारी क्षुद्रता को विराटता में बदल देते हैं, हमारे व्यक्तित्व को ससीम से असीम बना देते हैं, हमारी अहंता को विश्वबंधुत्व-बोध में परिणत कर देते हैं। 'हम सभी धरा-पुत्र हैं' यह प्रतीति मनुष्यों के साथ-साथ लता-वृक्षों और पशु-पक्षियों सभी के प्रति हमारे हृदय में प्रीति का संचार करने लगती है। तब हमारी वाणी मधुमयी हो जाती है और जिस पर हमारी दृष्टि पड़ती है, वही हम पर अनुरक्त हो जाता है- "यद्वदामि मधुमत् तद् वदामि, यदीक्षे तद्वन्ति मा" - अथर्व 12/1/58 । तब एक ही अनुरागमयी लालसा हमारे मन में रह जाती है कि हम अपनों को अपना सब कुछ दे डालें। किसी से कुछ लेने की स्वार्थबद्ध क्षुद्र वासना का तब स्वयमेव शमन हो जाता है। महर्षि कण्व के आश्रम में धरा-पुत्रों के सहज-उच्छल अनुराग की यही स्वर्गिक झाँकी हमारे विश्वकवि कालिदास ने देखी थी। ऋषियों ने अपने समवेत स्वर में प्रतिक्षण सजग और कर्मण्य रहकर इस धरा के विग्रह को अलंकृत करने के लिए दीर्घ आयु की कामना की थी-

"दीर्घ न आयु: प्रतिबुध्यमाना, वयं तुभ्यं बलिहृत: स्याम।" अथर्व 12/1/63

उनका धरा प्रेम किसी भौगेलिक सीमा में आबद्ध न था, वह विश्वप्रेम का पर्याय था। 'पृथिवीसूक्त' के मंत्रद्रष्टा ने पृथ्वी पर प्रत्येक मनुष्य के प्रकृति-वैचित्र्य और विभिन्न मानव-समुदायों के धर्म-वैभिन्न्य और भाषाविभेदों को देखकर पृथ्वी की ही भांति सहिष्णु, क्षमाशील और उदार बनने की सभी को प्रेरणा दी थी- "जन विभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्"- अथर्व 12/1/6

उन्होंने हमें परस्पर पारिवारिक स्नेह एवं सामाजिक सौहार्द (सौमनस्य) के बंधन में बांधने का प्रयत्न किया था। सह-अस्तित्व और सहकारिता उनके चिंतन के मूल बिंदु थे।

वैदिक ऋषि ने हिरण्यवक्षा (धन-धान्य से पूर्ण) पृथ्वी के चरणों में अपने अशेष श्रद्धा सुमन समर्पित किए। आदि कवि वाल्मीकि ने उसे स्वर्ग से ही श्रेष्ठ घोषित किया- 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' तो महाकवि कालिदास स्वर्ग को ही इस धरा पर उतार लाए। उनके व्यापक अनुराग ने समस्त अचेतन और चेतन प्राणियों के मानसों को मधुसिक्त करते हुए पर्यावरण में माधुर्य घोल दिया है और समूची सृष्टि मानवीय संवेदना से संपृक्त हो गई है।

वैदिक समाज संघर्षशील था। प्रतिकूलताओं पर विजय पाकर जब उसने स्वामित्व ग्रहण किया तो उसकी राष्ट्रीयता ने भी भौगोलिक आकार ग्रहण कर लिया। महाकवियों का प्रकृति चित्रण महिमामयी मातृभूमि का ही सौंदर्योन्मीलन है।

वैदिक, पौराणिक, रामायण और महाभारतकालीन समाज मूलतः प्रवृत्तिपरक था। उस काल में विरचित साहित्य पार्थिव जीवन की मधुर-कटु अनुभूतियों से संवलित है तथापि "कुर्वन्नवेह कर्माणि जिजीविशेच्छत समाः" की उद्घोषणा करने वाले उन साहित्य मनीषियों की सूक्ष्म चिंतनपरक व्यापक दृष्टि ने संसार की क्षणभंगुरता और असारता की अनदेखी नहीं की है। उन्होंने चिंतन के चरम सोपान पर पहुँचकर आरण्यक, उपनिषद, गीता एवं ब्रह्मसूत्रादि दार्शनिक ग्रंथों का प्रणयन करके निवृत्ति को ही जीवन का चरम लक्ष्य निर्धारित किया है। उनके जीवन दर्शन में प्रवृत्ति और निवृत्ति का पूर्ण समन्वय है।

समाज में प्रवृत्ति और निवृत्ति का द्वंद्व सनातन है। कभी प्रवृत्ति निवृत्ति पर हावी हो जाती है तो कभी निवृत्ति प्रवृत्ति पर। प्रवृत्ति की प्रधानता होने पर समाज भोगवादी हो जाता है और तब सिर उठाता है शोषण-उत्पीड़न और छीना-झपटी की कुक्षि से जन्म लेने वाला पारस्परिक संघर्ष। 'महाभारत' का भीषण नरसंहार इसी अतिशय प्रवृत्तिपरता का अभिशाप था। उसके उपशमन के लिए मैत्री, करुणा, अहिंसा और शांति का संदेश लेकर महात्मा बुद्ध आए। किंतु उनके निर्वाण पश्चात् निवृत्ति अकर्मण्यता और प्राकृत जीवन से पलायन का पर्याय बनकर रह गई। जिससे सृष्टि चक्र असंतुलित होकर लड़खड़ाने लगा। मैत्री और शांति का संदेशदाता भारत स्वयं ही यवन, शाक, हूण आदि शत्रुओं से आक्रांत होकर अपनी सुरक्षा और शांति गँवा बैठा और तब उसके उद्धार के लिए पुनरूज्जीवित हुआ प्रवृत्ति का समन्वयकर्ता ब्राह्मण धर्म। नवीन ऋषि चाणक्य के निर्देशन में चंद्रगुप्त मौर्य ने शकों और हूणों के आक्रमणों को विफल करके एकछत्र साम्राज्य की स्थापना की। गुप्तकालीन महाकवि कालिदास के साहित्य में प्रवृत्ति और निवृत्ति के अभिनंदनीय समन्वय के साथ-साथ उदार सांस्कृतिक राष्ट्रीयता का समुज्ज्वल स्वरूप भी अंकित हुआ है। महर्षि वाल्मीकि और व्यास के बाद वे हमारी सांस्कृतिक राष्ट्रीयता के अन्यतम कवि हैं। उनके पश्चात् राष्ट्रीय भावनाओं का स्फुरण अन्य किसी संस्कृत कवि (नाटककार, विशाखदत्त को छोड़कर) की कृति में नहीं हो पाया है।

जनता, जन्मभूमि, शासन और संस्कृति के समाहार से राष्ट्र के स्वस्थ स्वरूप और उसकी अखंडता के लिए जनता में परस्पर सौहार्द, सहिष्णुता और उदारता अनिवार्य है। जनता जब पारस्परिक राग-द्वेष से आक्रांत होकर संकीर्ण, मतवादों के घेरे में घिर जाती है और राष्ट्रीय हित-अहित के प्रति पूर्णतः उदासीन हो जाती है अथवा जन-नायक या शासक थोथे अहंकार या महत्वाकांक्षाओं के शिकार हो जाते हैं तो पारस्परिक संघर्ष से गृहयुद्ध की स्थिति उत्पन्न हो जाती है, राष्ट्रशक्ति विघटित हो जाती है और अवसर का लाभ उठाकर विदेशी शक्तियाँ उस पर आक्रमण करके उसकी स्वतंत्रता को छीन कर उसकी चिरसंचित संस्कृति को पददलित करने लगती हैं। ग्यारहवीं और बारहवीं शती का भारत इसी दुरवस्था का शिकार हो रहा था। वह छोटे-छोटे राज्यों में बँट गया था। उनके शासक आपस में निरूद्देश्य लड़ा करते थे। आल्हाखंडकार के शब्दों में-

"बातन बातन बतबढ़ हुई गई, छत्रिन खैंचि लई तलवार।।"

वस्तुतः वह वीर भावना का नहीं, युद्धोन्माद का युग था। साधारण जनता राजनीति से पूर्णतः तटस्थ थी। वह अपने जीविकोपार्जन में व्यस्त थी, राजाओं के संधि-विग्रहों से उसे कोई सरोकार न था। यही हिंदी का 'वीरगाथाकाल' था। उस काल के कवियों का कार्य अपने आश्रयदाताओं की अतिरंजित प्रशंसा करना अथवा उन्हें युद्ध के लिए प्रोत्साहित करना था।

साहित्य का कोई उद्देश्य नहीं रह गया था। वह अर्थप्राप्ति का साधन बन गया था अतः उससे राष्ट्रीयता का अन्वेषण व्यर्थ था। "वास्तव में वीरगाथा काल की रचनाएँ वीरकाव्य से अभिहित की जा सकती हैं, न कि राष्ट्रीय काव्य से।"

हिंदी साहित्य के भक्तिकाल तक आक्रांता इस्लाम धर्मावलंबियों के धर्मोन्माद और युद्धोन्माद प्रायः शांत हो चुके थे। अब वे विदेशी नहीं रह गए थे। अपनी प्रभुसत्ता स्थापित कर उन्होंने भारत को अपना वतन मान लिया था राजकाज में हिंदुओं को अपना सहयोगी बना लिया था और हिंदुओं के साथ पारस्परिक सौहार्दपूर्ण सामाजिक जीवन को वे अंगीकार करने लगे थे। यहाँ की सामाजिक रीति-नीति, उच्च-उदात्त संस्कृति और ऊर्ध्व चिंतन का उनके मन-मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव पड़ चुका था। सूफी कवियों का साहित्य इसका ज्वलंत प्रमाण है।

दूसरी ओर, पहले से ही युद्धप्रिय अहंकारी राजपूतों के पारस्परिक विग्रह की मूक दर्शक और तदुपरांत विदेशियों द्वारा पदाक्रांत क्षीणशक्ति भारत की लुटी-पिटी निःसत्व जनता घोंघे की तरह अपने खोल में सिमटती जा रही थी। सामाजिक उथल-पुथल और राजनैतिक उलट-फेर से उसे कुछ भी लेना-देना न था। तत्कालीन जनता की जीवन के प्रति निराशा एवं समाज और राज्य के प्रति उपेक्षा और उदासीनता को गोस्वामी जी ने 'रामचरितमानस' में 'मंथरावाद' के रूप में रेखांकित किया है-

कोउ नृप होय हमें का हानी, चेरि छाँडि अब होब कि रानी?

उन्होंने अपने समय के अकाल, महामारी, गरीबी और भुखमरी का बड़ा ही हृदयद्रावक चित्र 'कवितावली' में खींचा है।

गोस्वामी जी ने आदर्श व्यक्ति, आदर्श परिवार, आदर्श समाज और आदर्श राष्ट्र का स्वरूप प्रस्तुत करके व्यापक बोध और विराट चिंतन का परिचय दिया है और इस दृष्टि से भारत की सांस्कृतिक चेतना का पुनरुद्धार या पुनर्जागरण करने वाले वे हिंदी के अन्यतम कवि हैं। किंतु उनके काव्य में समसामयिक राष्ट्रीय चेतना, जिसे हम 'राजनैतिक चेतना' कहते हैं, मुखरित नहीं हो पाई है। क्रांतिकारी कबीर सामाजिक सुधार और आत्मोद्धार तक ही सीमित रह गए और सूरप्रभृति कृष्णभक्त कवि भगवान के लोकरंजन रूप में ही रमे रहे। इसीलिए "भक्तियुग हिंदी साहित्य का स्वर्ण युग होते हुए भी राष्ट्रीयता का स्वर्णयुग नहीं कहला सका।" देश-भक्ति से ओत-प्रोत कविताओं का अभाव रहा और समूचा राष्ट्र काव्य के माध्यम से प्रतिनिधित्व नहीं पा सका।

वस्तुतः भक्तिकाल का संपूर्ण साहित्य समसामयिक राजनैतिक चेतना से अस्पृष्य होते हुए भी विराट मानवीय चेतना से अनुप्राणित है। उसमें तोड़ने की नहीं, जोड़ने की चेष्टा है, बहिष्कार की नहीं, आत्मसात् की भावना है, नकार का नहीं, स्वीकार का स्वर है। मुसलमानों के भारत में बसकर भारतीय हो जाने पर हमारे साहित्य-मनीषियों की यही दृष्टि और चेतना प्रासंगिक और समीचीन हो सकती थी, तथापि खेद के साथ कहना पड़ता है कि उस युग के भारतीय स्वाधीनता के पुरोधा महाराणा प्रताप किसी भी समकालीन कवि के प्रशस्तिपात्र नहीं बन पाए।

जब हमारी शक्ति जवाब दे देती है तब हमें भगवान की याद आती है। भक्तिधारा मानो विजित हिंदुओं की करुण कंठध्वनि थी। वे संसार के प्रति वितृष्ण आत्मोद्धार के लिए सचेष्ट हो रहे थे कि पुनः सामाजिक और राजनैतिक स्थिरता का वातावरण बनने लगा। हिंदू और मुसलमान सभी हर्षोल्लासमय जीवन के प्रति लालायित हो उठे। रीतिकाल का घोर शृंगारिक साहित्य इसका प्रमाण है। साहित्य मुट्ठी भर धनी-मानी राजा-रईसों और सामंतों के मनोरंजन का साधन बनकर दरबारों की चहारदिवारी में सिमटकर रह गया। तब आम जनता के हर्ष-विषाद और आशा-आकांक्षाएँ उसमें कैसे प्रतिबिंबित होतीं? उस समय औरंगजेब की साम्राज्यलिप्सा और धर्मांधता ने भारत को बुरी तरह झकझोर डाला। उत्तर भारत में गुरु गोविंदसिंह के नेतृत्व में सिक्खों ने, मध्यभारत के बुंदेलखंड में महाराज छत्रसाल के नेतृत्व में वीर बुंदेले क्षत्रियों ने और दक्षिण-पश्चिम भारत में छत्रपति शिवाजी के कुशल कूटनीतिक संचालन में मराठों ने स्वाधीनता-संघर्ष छेड़ दिया। राजस्थान के महाराज राजसिंह भी स्वतंत्रता-संग्राम के उल्लेखनीय सेनानी थे किंतु जयसिंह, औरंगजेब के हाथों की कठपुतली बनकर अपने ही लोगों को कुचल रहा था। उसके

दरबारी कवि ने प्रस्तुत अन्योक्ति के माध्यम से उसे रोकने की चेष्टा भी की थी–

स्वारथ सुकृत न श्रम वृथा, देख विहंग विचारि।
बाज पराए पानि परि तू पच्छीनु न मारि।।

काश, बिहारी जैसे रससिद्ध कवियों की यह चेष्टा राष्ट्रीय जागरण का व्यापक रूप ले पाती। हिंदी की राष्ट्रीय काव्यधारा सर्वप्रथम महाकवि भूषण की लेखनी से फूटी। उन्होंने हमारे राष्ट्रनेता छत्रपति शिवाजी पर 'शिवराज भूषण' और 'शिवाबावनी' का एवं महाराज छत्रसाल पर 'छत्रसाल दशक' का प्रणयन किया। लाल कवि ने भी 'छत्रसाल प्रकाश' की रचना करके राष्ट्रीय काव्य की श्रीवृद्धि की।

महाकवि भूषण पर 'सांप्रदायिकता का जहर फैलाने वाला जातीय कवि' कहकर कुछ आलोचकों ने आरोप लगाया है, जो सर्वथा भ्रांतिपूर्ण है। वास्तव में भूषण अपने कीर्तिपात्र महाराज शिवाजी की ही तरह औरंगजेब की साम्राज्यलिप्सा, धर्मांधता और अमानुषिक अत्याचारों के विरुद्ध थे। इस्लाम धर्म और मुसलमान जाति के विरुद्ध वे नहीं थे। शिवाजी की धार्मिक उदारता तो सर्वविदित ही है। उनकी सेना में मुसलमान भी जिम्मेदारी के पदों पर थे।

भाग्य ने भारत का साथ नहीं दिया! गुरु गोविंदसिंह ने वीरगति पाई! धर्म-भेदविहीन राष्ट्र की कल्पना को साकार करने के पूर्व ही भारत की शूरता के सूर्य शिवाजी अस्त हो गए और उनके बाद ही डूब गया भारत की केंद्रीय शक्ति को जर्जर कर देने वाला और उसके भावी अनिष्ट की सूचना देने वाला धूमकेतू औरंगजेब! तभी बाजार की तलाश करते-करते इंग्लैंड की ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत में प्रवेश किया और यहाँ की आंतरिक दुर्बलता का लाभ उठाकर अपनी धूर्तता और कूटनीति के बल पर धीरे-धीरे राज्यों को हड़प कर व्यापारी से शासक बन बैठी। उसकी हड़प नीति के विरोध में भारत ने संगठित होकर 1857 में स्वाधीनता की पहली लड़ाई लड़ी थी। वह हमारी राष्ट्रीयता का प्रथम व्यापक उन्मेष था, जो कतिपय कारणों से असफल तो रहा किंतु उसका मूलोच्छेद नहीं हुआ। भारत की बागडोर ईस्ट इंडिया कंपनी के हाथ से ब्रिटिश पार्लियामेंट के हाथ में चली गई और अंग्रज़ी राज्य दृढ़ता से स्थापित हो गया।

विज्ञान के बल पर भौतिक उन्नति के उच्च धरातल पर स्थित भौतिकवादी संस्कृति (वस्तुतः सभ्यता) और विश्व की अभिनव चेतना से संवलित पाश्चात्य शिक्षा के संपर्क में आकर भारत में नवीन वैचारिक क्रांति का उदय हुआ। अंग्रेज भारत में व्यापारी बनकर आए थे और बाद में शासक बन बैठे और शासक ही बने रहे। उन्होंने भारत की नागरिकता कभी स्वीकार नहीं की। विजित देशों के उद्योग-धंधों को ठप्प करके उन्हें अपने देश में निर्मित वस्तुओं का बाजार बनाकर शासन और व्यापार के दोहरे माध्यम से उनका शोषण करके वे अपने राष्ट्र को समृद्ध बना रहे थे। अपने राष्ट्र के प्रति उनकी इस दृढ़ प्रतिबद्धता ने हमारी आँखें खोल दी। भारतेंदुयुगीन साहित्य ने सर्वप्रथम व्यापक बोध के मुक्त गगन में उड़ान भरने के लिए अपने पंख फड़फड़ाए। सामाजिक विसंगतियों पर भी उसने जोरदार प्रहार किए। इस युग के राष्ट्रीय काव्य में अतीत का गौरवगान, देशभक्ति, समाज-सुधार और आर्थिक शोषण से मुक्ति का स्वर ही प्रधान है और पूर्ण स्वतंत्रता के वज्र निनाद के स्थान पर राजभक्ति की क्षीण ध्वनि है।

भारतेंदु युग में राष्ट्रीयता का बीजनिक्षेप और अंकुरण हुआ एवं द्विवेदी युग में वह पल्लवित और पुष्पित हुई। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत-भारती' उस युग की प्रतिनिधि रचना है, जिसमें कवि-दृष्टि ने सुदूर अतीत में बैठकर वर्तमान का संस्पर्श करते हुए भविष्य की आशा-आकांक्षाओं तक संचरण किया है। 'भारत-भारती' और किसान में राजभक्ति का खटकने वाला स्वर भी विद्यमान है। 'अजित' ही उनकी एकमात्र कृति है, जिसमें उनका अंग्रेज़ी-विरोध खुलकर सामने आया है। किंतु यह संवत् 2003 (सन् 1946) की कृति है, जब भारतीय स्वाधीनता-आंदोलन अपने पूर्ण यौवन पर था।

गुप्त जी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने पुरावृत्तों और ऐतिहासिक घटनाओं में राष्ट्रीयता और मानवता के संजीवन स्रोतों का संधान ही नहीं किया है, उन्हें युगचेतना से अनुप्राणित भी कर दिया है। प्राचीन भारतीय संस्कृति को युग की परिस्थितियों के अनुरूप नव्यतम और भव्यतम स्वरूप से समलंकृत कर प्रस्तुत कर देने में ही उनकी काव्यकला की सार्थकता है हरिऔध ने 'प्रिय-प्रवास' में राधा और कृष्ण को आदर्श

लोकसेविका और लोकसेवक के रूप में एवं 'वैदेही वनवास' में राम और सीता को लोकाराधक (प्रकृतिरंजक) राजा-रानी के रूप में प्रस्तुत करके परंपरागत धारणाओं को अभिनव दिशा दी है।

युग की चुनौतियों को झेलने वाले, अवसन्न-अलसित राष्ट्र की उनींदी आँखें खोलकर उसके हृदय को कर्मोत्साह, आत्मबलिदान और विजयोल्लास से मंडित करने वाले राष्ट्रीय काव्य को भाषा की मसृणता एवं शक्तिमत्ता, भावों की कोमलता और सूक्ष्म संवेदनशीलता, चिंतन की दर्शनोन्मुख गहनता और कल्पना की ऊँची उड़ान से संवलित किया छायावादी काव्य ने। द्विवेदी युगीन काव्य में सब कुछ वाच्य(अभिधेय) है, लक्ष्य अत्यल्प और व्यंग्य (व्यंजनागर्भी) तो प्राय: नगण्य है। प्रथम में अनावश्यक विस्तृत व्यास शैली है तो द्वितीय में लाघ्य समास शैली। 1928 में रचित निराला की 'भारती-वंदना' को लीजिए-

भारति, जय-विजय-करे,
कनक-शस्य-कमल-धरे!
लंका पदतल-शतदल,
गर्जितोर्मि सागर जल
धोता शुचि चरण युगल
स्तव कर बहु अर्थ भरे।
तरू-तृण-वन-लता-वसन
अंचल में खचित सुमन
गंगा ज्योतिर्जल-कण
धवल-धार हार गले।
मुकुट शुभ्र हिम तुशार
प्राण-प्रणव ओंकार
ध्वनित दिशाएँ उदार
शतमुख-शतरव-मुखरे।

इसमें भारत माता का मानवीकरण करके उसे विद्या-बुद्धि-समन्वित सौंदर्य की अधिष्ठात्री अथवा विद्या, ऐश्वर्य और सौंदर्य की एकीकृत स्वरूपा भारती के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यहाँ बिना विस्तृत विवरण का सहारा लिए आसमुद्रहिमालय भारत की भौगोलिक सीमा, प्राकृतिक सुषमा, शस्य-श्यामला एवं सांस्कृतिक उदात्तता को अपनी समग्रता के साथ अंकित कर दिया गया है। कविता का बिंब एवं प्रतीक-विधान बेजोड़ है। 'कनक' धनसंपत्ति या भौतिक समृद्धि का, 'शस्य' धन्य, सफल मानवीय श्रम या फसलों से हरी-भरी प्राकृतिक सुषमा का और कमल शांति, मैत्री, सौंदर्य और छीना-झपटी से संगृहीत पुष्कल ऐश्वर्य और उत्पीड़न का केंद्र होने से भौतिकवाद का प्रतीक बन गई है। भौतिकवाद भारतीय अध्यात्म के सम्मुख शतदल बनकर-संस्कारित होकर विनत हैं गर्वीला सागर भी उसके पवित्र चरणों को धो रहा है। हरी-भरी प्रकृति उसका पुष्पजटित परिधान है। भारतीय संस्कृति की मूल स्रोत गंगा उसके कंठ का मुक्ताहार है। अपनी पवित्र वेद-ध्वनि से दिशाओं को शीतलता भारतीय संस्कृति की उदात्तता, पवित्रता और शांतिप्रियता के साथ अपराजेय पौरुष को भी ध्वनित करती हैं। इसके विपरीत गुप्त जी की 'मातृभूमि' कविता में केवल भारत माता का न होकर धरती माता का ही विराट चित्र अंकित हुआ है किंतु निराला का- सा काव्योकर्ष यहाँ कहाँ-

नीलांबर परिधान हरित पट पर सुंदर है।
सूर्य-चंद्र युग-मुकुट मेखला रत्नाकर है।।
बंदीजन खग वृंद शेष- फण सिंहासन है।।
करते अभिषेक पयोद हैं बलिहारी इस वेष की।
हे मातृभूमि! तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की।।

(मंगल घट पृ. 9)

छायावाद के अन्य स्तम्भ पंतजी ने पराधीन भारत माता की उदास - विषण्ण मूर्ति उकेरी है-

दैन्य - जड़ित अपलक नत चितवन
अधरों में चिर नीरव रोदन
युग-युग के तम से विषण्ण मन
वह अपने घर में प्रवासिनी।
भारत-माता ग्रामवासिनी।- नवभारती

(सं.न.दु. बाजपेयी)पृ. 122

किंतु उसकी कुक्षि से गांधी के रूप में एक दिव्य ज्योति जगत का उद्धार करने के लिए प्रादुर्भूत हुई-

सफल आज उसका तप-संयम

पिला अहिंसा-स्तन्य सुधोपम

हरती जन-मन-भय भव-तम-भ्रम

जग जननी जीवन-विकासिनी।

आगे चलकर भारत माता के स्वातंत्र्योत्तर संस्करण (सन् 1958) में कवि ने औद्योगिक क्रांति और जागतिक जीवन के प्रति समर्पण में स्वाधीन भारत के पुनरभ्युदय की कल्पना की है-

उसे चाहिए लौह संगठन

सुंदर तन श्रद्धा-दीपित मन

भू-जीवन प्रति-प्रति अथक समर्पण

लोक कलामयि रस विलासिनी। भारत माता ग्राम वासिनी- रश्मिबंध पृ. 144

छायावाद की अतिशय कल्पनाशीलता, रहस्योन्मुख चिंतन और भावाकुलता के कारण उस पर पलायनवादी होने का आरोप लगाया है, जो सर्वांश में युक्तिसंगत नहीं है। न तो छायावादी काव्य के कर्णधारों ने जगत के घटनाचक्रों और क्रांतिकारी परिवर्तनों की अनदेखी की है और न ही प्राकृत जीवन से मुँह मोड़ा है। उनके काव्य का प्रधान स्वर अनास्था और अवसाद का नहीं, आस्था और उत्साह का है, पलायन का नहीं, प्राकृत जीवन के सहर्ष वरण का है-

प्रकृति के यौवन का शृंगार, करेंगे कभी न बासी फूल।

तथा 'तप नहीं' केवल जीवन सत्य, क्षणिक यह करुण दीन अवसाद।

तरल आकांक्षाओं से भरा, सो रहा आशा का आह्लाद।

ये उद्गार छायावाद की ही नहीं हिंदी साहित्य की भी उत्कृष्ट कृति 'कामायनी' के कंठ से फूटे हैं। "आध्यात्म-विहीन औद्योगिक क्रांति विश्व-संघर्ष की जननी है, श्रद्धा-विरहित वितर्क बुद्धि से मानव का कल्याण नहीं हो सकता" यही उसका संदेश है।

'प्रसाद' ने अपने ऐतिहासिक नाटकों द्वारा राष्ट्रीयता की मशाल जलाई है, जिससे भारतीय संस्कृति के समग्र वैशिष्ट्य का आलोक स्फुटित हो रहा है, जिसमें शूरता की उष्णता तो है किंतु क्रूरता की विनाशकारी दाहकता नहीं। पौरुष के अन्यतम कवि 'निराला' की सिंहगर्जना- 'जागो फिर एकबार' ने पराधीन भारत की तंद्रा को भंग किया। उन्होंने पराधीनता-पाश को तोड़ फेंकने के लिए राष्ट्रीय काव्यधारा के स्वर मिलाकर क्रांति का आवाहन किया- "एक बार बस और नाच तू श्यामा!"

भारत के राष्ट्रीय जागरण की उषा-सी उदित होकर विदेशी सत्ता को मध्याह्न की प्रचंडता-सी संतप्त करने वाली वीरांगना लक्ष्मीबाई के व्यक्तित्व में श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान ने साकार शूरता और क्राांति की ज्वाला के दर्शन किए तो गुप्त जी ने हमारे राष्ट्र-पुरुष महाराणा प्रताप और शिवाजी के व्यक्तित्वों में स्वाधीनता की ज्योति का संधान किया।

राष्ट्रीयता की क्रांतिधारा में दुरवस्था और अवरोधों के ध्वंस का नाद है तो नव सृजन का स्वर भी है। वह कभी बादल के वज्र-गर्जन से फूटती है तो कभी कोयल की कूक से निकलती है, कहीं उसमें मरने-मारने की उमंग है तो कहीं आत्म-बलिदान की भावना का प्रबल उद्वेलन।

राष्ट्रीय काव्य ने भारत के गौरवमय अतीत का चित्र अंकित करके 'हम कौन थे' का और पराधीनताजन्य दुरवस्था का अंकन करके 'क्या हो गए', का गंभीर विश्लेषण किया है। उसने अंग्रेज़ों के विरुद्ध विद्रोह का बिगुल बजाया है तो राष्ट्र की आंतरिक विसंगतियों और बुराइयों (यथा वर्गभेद, जातिभेद, धर्मभेद, अस्पृश्यता, गतानुगतिकता और सांप्रदायिकता आदि) पर भी प्रबल प्रहार किया है। उसका राष्ट्रप्रेम विश्वबंधुत्व का सोपान है। वह अपनों से प्रेम और औरों से घृणा और विद्वेश का पाठ नहीं पढ़ाता, अपने राष्ट्र को सुख-समृद्धिमय बनाने के लिए विश्व के शोषण की सीख नहीं देता। उसकी राष्ट्रीय भावना विश्वमैत्री का हाथ बढ़ाती है, विश्वयुद्ध की विभीषिका उत्पन्न नहीं करती। हमारी राष्ट्रीयता सांस्कृतिक राष्ट्रीयता है, जिसमें सहअस्तित्व, मैत्री और शांति की शीतल सुधा है, शोषण, उत्पीड़न, शत्रुता और अशांति का कराल कालकूट नहीं।

हमारी राष्ट्रीयता की तीन रूपों में अभिव्यक्ति हुई है-

1. पराधीन राष्ट्र की राष्ट्रीयता

2. स्वाधीन भारत की राष्ट्रीयता

3. आक्रांत राष्ट्र की राष्ट्रीयता।

प्रथम में विदेशी शासन को उखाड़ फेंकने की भावना और प्रयत्न है। द्वितीय में, प्रजातंत्र की उपलब्धियों का यशोगान है तो सीमाओं और प्रवंचनाओं का बेलाग विश्लेषण भी है। संघर्षमय विश्व को स्वतंत्र भारत का क्या अवदान हो सकता है? इस पर भी राष्ट्रीय काव्य ने प्रकाश डाला है। दोनों दृष्टियों से गुप्त जी की 'राजा-प्रजा' और 'पृथ्वीपुत्र' एवं दिनकर की 'दिल्ली' की स्वातंत्र्योत्तर कविताएँ, 'नीम के पत्ते' की व्यंग्य कविताएँ, 'परशुराम की प्रतीक्षा' की एनार्की कविता तथा 'नील कुसुम' की किसको नमन करूँ? (जिसमें कवि की राष्ट्रीयता राष्ट्र की भौगोलिक सीमाओं में नहीं, उसकी चिरसंचित मानवीय संस्कृति में बसती है) 'राष्ट्र देवता का विसर्जन' और 'हिमालय का संदेश' विशेष महत्वपूर्ण हैं। उनके काव्यों में राष्ट्रीयता अंतरराष्ट्रीयता की पोषक है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद भी उनकी काव्य-वीणा से राष्ट्रीयता की ध्वनि अनवरत फूटती रही है। "राष्ट्रीय काव्य पराधीनता काल में राष्ट्र को शक्ति और उत्तेजना देता है तो स्वाधीनता काल में पारस्परिक सौहार्द, समत्व बोध और निरंतर विकास का अभंग उत्साह।" हमारे दोनों राष्ट्रकवियों-मैथिलीशरण गुप्त और दिनकर के काव्य इसके ज्वलंत प्रमाण है।

चीन के आक्रमण ने शांतिलीन भारत को पुनः शस्त्रसज्जित होने के लिए उकसाया और दिनकर के मुख से आक्रांत राष्ट्र की राष्ट्रीयता 'परशुराम की प्रतीक्षा' में फूट पड़ी। उसने प्रतिरक्षा में 'गिराओ बम, गोली दागो' का वज्रनाद किया।

भारत का राष्ट्रीय व्यक्तित्व शूरतत्व और संतत्व के सम्मिलित रूप से निर्मित हुआ है। शूरता संतत्व के बिना क्रूरता की पर्याय है तो संतत्व शूरता के बिना आत्मरक्षा में असमर्थ। अतः भारत को ऐसे राष्ट्रनायक की प्रतीक्षा है-

"आ रहा नए भारत भाग्य- पुरुष है।"- परशुराम की प्रतीक्षा

सच्ची राष्ट्रीय कविता सामयिक संघर्षों, विक्षोभों और उपलब्धियों के अंतराल से उत्पन्न होने वाली तरंग मात्र नहीं है, वह अतीत से संजीवन तत्व लेकर वर्तमान को सँवारती है और मंगलमय भविष्य का पथ प्रशस्त करती है उसमें राष्ट्र के उत्थान की भावना और विश्व के कल्याण की कामना निहित है। हमारा राष्ट्रीय काव्य इन्हीं विशेषताओं से विभूषित है।

'एक भारतीय आत्मा' का अवदान-

पं. माखनलाल चतुर्वेदी 'एक भारतीय आत्मा' जो राष्ट्रपिता की तरह "चिंतन की घड़ियों को क्रिया से तोलता था, तब वाणी से बोलता था" जिसने काव्य की अभिव्यंजना शैली को नवीन भंगिमा और नए तेवर दिए, एवं घनानंद की भाँति कवित्व ने ही जिसके व्यक्तित्व की सर्जना की है का पावन स्मरण किए बिना 'हिंदी की राष्ट्रीय काव्य- यात्रा' की चर्चा भला कैसे पूरी हो सकती है?

उन्होंने क्रांति का शंखनाद ही नहीं किया, क्रांतिकारी का जीवन जिया भी है। कविता के स्वच्छंदतावादी मनोजगत में संचरण करने वाला विचरण करता हैं शोषक और उत्पीड़क विदेशी सत्ता से समझौता या छोटे-मोटे सामयिक सुधार उसे स्वीकार्य नहीं। उसकी स्पष्ट उद्घोषणा है-

अमर राष्ट्र, उद्दंड राष्ट्र उन्मुक्त राष्ट्र वह मेरी बोली।

यह सुधार-समझौते वाली भाती मुझको नहीं ठिठोली।

स्वतंत्र भारत में गांधी की रक्षा के लिए गांधी से भागने का परामर्श देने वाला दिनकर एक भारतीय आत्मा के इसी दाय को लेकर चलता है और शांतिवाद को, जिसके 1962 में चीनी आक्रमण में भारत को पराजय का मुँह देखना पड़ा था, खुली चुनौती देता है-

नहीं चाहता युद्ध लड़ाई, लेकिन गर ठनेगी,

किसी तरह भी शांतिवाद से मेरी नहीं बनेगी।-

कोयला और कवित्व पृ. 43

उस 'बलिपथ के अंगारे को 'पराधीनता के शीतल सिंहासन की अपेक्षा विद्रोह की ज्वाला में दीर्घकाल (सौ युग) तक तपना सुखकर है। जिस क्रांतिधर्मा को 'शूली का पथ' ही इष्ट हो वह दासता की घिनौनी सुख-सुविधाओं को ठोकर क्यों न मार देगा? कहीं वह पुष्प बनकर बलिपंथी वीरों के प्रयाण-मार्ग में बिखरकर उनकी चरण-रज से मिल जाना चाहता है ('एक पुष्प की

अभिलाषा') तो कहीं आत्मबलिदानी वीर बनकर मारने-मरने के लिए कटिबद्ध है। ऊर्जस्वल ऊर्जा से संपृक्त उनके ये शब्द तरूणों के लिए कितने प्रेरणाप्रद और प्राणदायी हैं-

लाल चेहरा है नहीं, फिर लाल किसके?
लाल खून नहीं? अरे कंकाल किसके?
विश्व है असि का? नहीं संकल्प का है,
हर प्रलय का कोण काया कल्प का है।
फूल गिरते, शूल शिर ऊँचा किए हैं।
रसो के अभिमान को नीरस किए हैं।
खून हो जाए न तेरा देख पानी,
मरण का त्योहार जीवन की जवानी।

यहाँ तरूणों को क्रांति (काया-कल्प, विश्व-परिवर्तन) का केंद्र बिंदु स्वीकारते हुए हिंसा-शोषण उत्पीड़न और आतंकवाद (असि-ध्वंसात्मकता) को नकार कर उन्हें उनकी उस सृजनात्मक शक्ति का स्मरण दिलाया गया है जो अपने सत्संकल्प से विश्व का कायाकल्प कर सकती है। जवानी 'मरण का त्योहार' है। वह कभी बुराइयों से समझौता नहीं करती। असत् के साथ संघर्ष ही उसका लक्ष्य है स्वाधीनता भारत की तरूणाई सुविधाजीवी बनकर कहीं दुरित और दैन्य से संधि न कर बैठे, इसलिए कवि ललकार उठता है-

खून हो जाए न तेरा देख पानी।

ऋतुराज के आगमन की सूचक कोकिल की कूक जैसे विद्रोह (क्रांति) का झंझावात उत्पन्न कर ब्रिटिश साम्राज्य का पतझड़ (पतन) और स्वतंत्रता के वसंत के शुभागमन का संकेत देती है। चतुर्वेदी जी की कोकिला राजनैतिक क्रांति और स्वतंत्रता का प्रतीक है, जो काली रात (पराधीनता) के अवसान का स्वर्णिम संदेश देती है। वह पराधीन भारतीय जनता के प्रति गहरी संवेदना के कारण ही नहीं कूक उठती अपितु उसकी कूक ब्रिटिश- अत्याचारों के विरुद्ध क्रांति का शंखनाद भी करती है।

तब तू रण का ही प्रसाद है तेरा स्वर बस शंखनाद है- 'कैदी और कोकिला' कविता सुकुमार भावनाओं के अन्यतम कवि पंत भी चतुर्वेदी जी से प्रभावित होकर कल-कूजन करने वाली कोकिल की कूक में सामाजिक क्रांति के पावक- कणों का संधान करने लगते हैं-

गा कोकिल बरसा पावक कण!
नष्ट भ्रष्ट हों जीर्ण पुरातन
ध्वंस भ्रंश जग के जड़ बंधन।

अंत में, डॉ. प्रेमशंकर के शब्दों में इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि "उनकी कविताएँ केवल देशप्रेम के भावोच्छ्वासों से संतुष्ट नहीं होती, वहाँ राष्ट्रीय-चेतना का संपूर्ण बिंब मौजूद है। कवि राष्ट्र को उसकी समग्रता में देखता है। वह अपने व्यक्तित्व के साथ वहाँ उपस्थित है, केवल वक्तव्यों के साथ नहीं।"

(हिंदी का स्वच्छंदतावादी काव्य, पृ. 389)

– महाराज बाग, भैरवगंज, सिवनी, मध्य प्रदेश-480661

❑❑❑

हिंदी : विश्व और भारतीय संस्कृति

डॉ. दयानंद भूयाँ

विश्व भाषा के रूप में हिंदी

आज विश्व में भारत की ज्यों-ज्यों प्रभुता बढ़ रही है, हिंदी भाषा भी विश्वभर में अपने महत्व को रेखांकित कर रही है। भारत विभिन्न संस्कृतियों के साथ विभिन्न बोलियों एवं भाषाओं को अपने में समेटे हुए है। अंग्रेज़ी के बाद हिंदी और चीनी विश्व की दो सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषाएँ हैं। वे दोनों भाषाएँ आबादी की दृष्टि से दो सबसे अधिक जनसंख्या के देशों की भाषाएँ भी हैं। हिंदी विश्व की अत्यंत समृद्ध भाषा है। सदियों से हिंदी के महान साहित्यकारों ने सूक्ष्म से सूक्ष्मतर विषयों पर विविध ग्रंथों की रचना कर हिंदी भाषा सागर को महान बनाया है। संस्कृत विश्व की प्राचीनतम भाषाओं में से एक है और हिंदी की उत्पत्ति संस्कृत से हुई है।

भारतीय इतिहास के घटनाक्रमों में हिंदी का विशेष योगदान है। हिंदी साहित्य ने समयानुकूल जनमानस को आंदोलित किया है। बौद्धकाल में समाज अंहिसक होकर विरक्त और उदासीन हो रहा था। तत्कालीन साहित्यकारों ने श्रृंगार रस युक्त साहित्य का सृजन किया। खजुराहो में शिल्पों-मंदिरों का निर्माण किया। जब मुगल काल में हिंदू धर्म की जड़ें सूख रही थी तब संत तुलसीदास राम रूपी दीपक लेकर जनता में अवतरित हुए एवं जनमानस की भाषा में रामायण की रचना की।

स्वतंत्रता संग्राम में हिंदी का विशेष योगदान रहा है। उस समय अमरीका तथा कनाडा आदि देशों में बसे भारतीय छात्र हिंदी में हस्तलिखित समाचार पत्रों का आदान-प्रदान कर आंदोलन को गति देते रहे। साथ ही विश्व पटल पर भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के औचित्य का प्रचार-प्रसार होने लगा। हिंदी को विश्व में पनपने का सुयोग इस प्रकार प्राप्त होने लगा।

1873 ई. से अंग्रेज़ सरकार द्वारा भारत से मजदूरों को सूरीनाम, गुयाना एवं करेबियन देशों में भेजा गया। जहाजी भाई अपने साथ हिंदी भाषा-साहित्य तथा भारतीय संस्कृति को लाकर उसे वहाँ अबतक संजोकर रखे हुए हैं। यहाँ उल्लेख करना आवश्यक है कि आठवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन 2007 ई. न्यूयार्क में उस समय भाग ले रहे गुयाना के माननीय मंत्री महोदय का कथन- "हमारे दादा परदादा ने पोटली में बाँधकर रामचरितमानस को ले आए थे। जिससे वहाँ अब भी भारतीय संस्कृति का दीपक प्रज्वलित है। सूरीनाम के साथ करेबियन देशों में हिंदी का प्रचार-प्रसार का यही कारण है।"

फीजी, मॉरीशस आदि देशों में भी हिंदी पनपने का कारण एक ही है, भारत भूमि से आए हुए लोग अपनी अस्मिता को बरकरार रखने के लिए संघर्ष कर रहे हैं। हिंदी के साथ अन्य भाषी लोगों से जरूर टकराव हुआ होगा जो स्वाभाविक है। जो परिस्थिति करेबिनय देशों में हिंदी की हो रही है एवं उन देशों में हिंदी की जो स्थिति बन रही है उसमें यदि भारत से विशेष सहयोग न दिया जाए तो वहाँ हिंदी की नैया डूबने में ज्यादा समय नहीं लगेगा। वर्तमान देश में अंग्रेज़ी से हिंदी की ही नहीं अन्य प्रादेशिक भाषा जिस प्रकार पिछड़ रही है, यह देखकर तो देशीय हिंदी को लेकर गंभीर संकट पैदा होने की आशंका करना अंसभव नहीं है। तब

भाषा ISSN 0523-1418

हिंदी भाषा को विश्व की ओर आगे बढ़ाना और दुरूह प्रतीत होने लगता है। तब भी हिंदी की विश्व स्वरूप की संकल्पना समय का ही आह्वान है।

हिंदी के लिए समर्पित और इसे विश्वभाषा बनाने के संकल्प से कटिबद्ध राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा का अन्यतम योगदान है- विश्व हिंदी सम्मेलनों की शुरुआत करना। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी द्वारा संस्थापित राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा द्वारा विश्व हिंदी सम्मेलन की अवधारणा भी हिंदी को विश्व स्वरूप प्रदान करने के साथ-साथ विश्व में फैले हिंदी भाषी-प्रेमियों को एकत्रित कर हिंदी का महामंत्र प्रदान करना ही था। सन् 1973 में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा ने विश्व हिंदी सम्मेलन आयोजित करने का मूल विचार देश के सामने रखा। भारत के प्रमुख नेताओं से विचार विमर्श के बाद और आचार्य विनोबाजी का आशीर्वाद तथा तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी से सहयोग का आश्वासन मिलने के बाद प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन भारत के नागपुर में आयोजित करने का निर्णय किया गया। इस सम्मेलन का उद्देश्य था राष्ट्रीय संदर्भ में हिंदी की उपलब्धियों एवं संभावनाओं पर विचार विमर्श करना। भारतीय संस्कृति के मूलमंत्र वसुधैव कुटुंबकम और विज्ञान तथा अध्यात्म के समन्वय की दृष्टि से एक विश्व मानव परिवार की भावना को सुदृढ़ किया जाए।

10 से 14 जनवरी 1975 में प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन का नागपुर में आयोजन हुआ। सम्मेलन का उद्घाटन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने किया तथा अध्यक्षता मॉरीशस के तत्कालीन प्रधानमंत्री सर शिवसागर रामगुलाम ने की। सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए इंदिरा गांधी ने कहा कि हिंदी विश्व की महान भाषाओं में से है। विश्व हिंदी सम्मेलन के उद्घाटन समारोह की अध्यक्षता करते हुए मॉरीशस के तत्कालीन प्रधानमंत्री सर शिवसागर रामगुलाम ने कहा कि हिंदी भारतीय राष्ट्रभाषा तो है लेकिन हमारे लिए इस बात का अधिक महत्व है कि यह एक अंतरराष्ट्रीय भाषा है। उनका कहना था कि मुझे इस बात की खुशी है कि इस अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन ने विश्व एकता और भाई चारे के आदर्श को सामने रखा है। आज दुनिया के सब देश यह अनुभव कर रहे हैं कि जब तक इंसान वर्ग, जाति, रंग के भेदभाव को नहीं भूलेगा तब तक विश्व का कल्याण नहीं हो सकता। उन्होंने कामना की कि यह विश्व सम्मेलन अपने उद्देश्यों को पूरा करे।

प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन में सर्वसम्मत पारित मंतव्य के रूप में तीन दिशानिर्देश सामने आए-

1. संयुक्त राष्ट्रसंघ में हिंदी को आधिकारिक भाषा के रूप में स्थान दिया जाए।

2. विश्व हिंदी विद्यापीठ की स्थापना वर्धा में हो।

3. विश्व हिंदी सम्मेलनों की उपलब्धियों को स्थायित्व प्रदान करने के लिए अत्यंत विचारपूर्वक एक योजना बनाई जाए जिससे कार्य की ज्योति भविष्य में भी जलती रहे।

द्वितीय विश्व हिंदी सम्मेलन मॉरीशस में 28 से 30 अगस्त, 1976 में संपन्न हुआ। नागपुर सम्मेलन में निश्चित किए गए तीन मंतव्यों को पुनः स्वीकारते हुए दो अन्य मंतव्य भी स्वीकार किए गए-

1. मॉरीशस में एक विश्व हिंदी केंद्र की स्थापना की जाए जो सारे विश्व में हिंदी की गतिविधियों का समन्वय कर सके।

2. एक अंतरराष्ट्रीय हिंदी पत्रिका का प्रकाशन किया जाए जो भाषा के माध्यम से ऐसे समुचित वातावरण का निर्माण कर सके जिसमें मानव विश्व का नागरिक बना रहे और विज्ञान तथा अध्यात्म की महान शक्ति एक नए समन्वित सामंजस्य का रूप धारण कर सके।

1975 से प्रारंभ कर अब तक 2018 तक ग्यारह सम्मेलन संपन्न हुए और मॉरीशस में अबतक द्वितीय, चतुर्थ और ग्यारहवें सम्मेलन सहित तीन सम्मेलन संपन्न हुए। परंतु आज भी प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन, नागपुर में पारित सर्वप्रथम मंतव्य संयुक्त राष्ट्रसंघ में हिंदी का आधिकारिक भाषा के रूप में स्थान प्राप्त करना बाकी रह गया है।

प्रथम और द्वितीय विश्व हिंदी सम्मेलन में पारित प्रस्तावों में बाकी करीब-करीब पूरा होने जा रहा है, यह कहना अत्युक्ति नहीं होगी। अंतरराष्ट्रीय हिंदी सचिवालय मॉरीशस में स्थापित हुआ है, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय वर्धा में स्थापित हुआ,

संयुक्त राष्ट्रसंघ में हिंदी सम्मेलन का कार्यक्रम तैयार करना विश्व के हिंदी प्रेमियों के लिए सबसे जरूरी आकांक्षा है।

विश्व हिंदी सम्मेलन के जरिए दुनिया में बसे हिंदी भाषियों को, हिंदी को भविष्य के लिए जीवित रखने के लिए भी उन्हें प्रयत्नशील रहना चाहिए। हम नहीं चाहते हैं कि विश्व हिंदी सम्मेलन सिर्फ धनवान लोगों के लिए विनोद स्थल बनकर रह जाए। जिससे विश्व हिंदी सम्मेलन की संकल्पना पर ही प्रश्न चिह्न लग जाएगा।

सबसे बड़ी बात यह है कि हिंदी का दोहन सब करते हैं, पर हिंदी के सशक्तिकरण के लिए किसी ने कभी प्रयास किया है, ऐसा देखा नहीं गया। संयुक्त राष्ट्रसंघ में हिंदी को अधिकृत भाषा बनाने में हम कब पहल करेंगे और कैसे करेंगे, इसका विचार विमर्श करना और हिंदी प्रेमी देशों की सरकारों को इसका दायित्व प्रदान करना अब समय की माँग है।

– मकान नं.-44, वाणीपथ, भेटापारा, बेलतला, गुवाहाटी-781028

❑❑❑

चुटकुला विधा पर एक काव्यशास्त्रीय दृष्टिपात

डॉ. मथुरेश नंदन कुलश्रेष्ठ

चुटकुला जनसामान्य में प्रचलित एक लघु कथांश से युक्त ऐसी उक्ति होती है जो ध्वनि का प्रयोग करके, व्यंग्य के माध्यम से हास्यरस की सृष्टि करती है। इसके अंत में होने वाला रहस्योद्घाटन चमत्कारपूर्ण होता है और यह किसी विशिष्ट कमजोरी की ओर संकेत करता है। मौलिक रूप में यह एक लोक विधा है। साहित्य में इसकी तुलना लघुकथा से की जा सकती है। वस्तुतः चुटकुला भी एक लघु कथा ही है परंतु प्रत्येक लघुकथा चुटकुला नहीं हो सकती। दोनों में आकार के साम्य की अपेक्षा होते हुए भी लघुकथा आकार में बड़ी भी हो सकती है। उसका आकार एक या दो पृष्ठ भी हो सकता है जबकि चुटकुला दस, बारह पंक्तियों में ही सीमित रहता है। चुटकुला सुनाया जाता है तब श्रोता में उत्सुकता का तत्व चरम पर होता है और वह चाहता है कि जल्दी से उसकी चरम सीमा आए। लघुकथा का पाठक अपेक्षाकृत अधिक धैर्यशाली होता है। लघुकथा का उद्देश्य व्यंग्य और हास्य प्रधान भी हो सकता है, उपदेशात्मक भी हो सकता है सामाजिक, धार्मिक, राष्ट्रीय या दार्शनिक उद्देश्य भी हो सकता है। उसमें चिंतन के लिए सामग्री हो सकती है परंतु चुटकुलों में यह गंभीरता नहीं होती। न तो उसमें आदर्श की ललक होती है और न ही आदर्श उसका उद्देश्य होता है लोकविधा होने के कारण घृणा, व्यंग्य कुत्सितता का भी वर्णन होता है और किसी भी प्रकार का लोकहित रहित या लोकहित के विपरीत तत्व भी अनुस्यूत हो सकता है। आकस्मिकता और हास्य यह दोनों ही चुटकुले के आवश्यक तत्व हैं। यह पाठक को ऐसी स्थिति से परिचित कराता है जिसकी पाठक आशा नहीं करता। आकस्मिक विस्फोट चुटकुले का प्राणतत्व है। हास्य, व्यंग्य और आकस्मिकता के तत्वों का समाहार करने वाली लघुकथा चुटकुले का रूप धारण कर लेती है। मुख्य बिंदु यह है कि लघुकथा एक साहित्यिक विधा है जबकि चुटकुला एक लोक विधा है। लोकतत्व की दृष्टि से चुटकुला पहेली और कहावत के लोकतत्व के नजदीक होता है।

जहाँ तक काव्य-प्रयोजन[1] की दृष्टि से चुटकुलों पर विचार करने का प्रश्न है, इसके रचयिता को यश की कोई प्राप्ति नहीं होती। चुटकुले का रचयिता चुटकुला बनाकर उसे लोक में छोड़कर स्वयं विलुप्त हो जाता है। हाँ चुटकुला सुनाने वाले को क्षणिक यशस्विता अवश्य मिल जाती है। कुछ लोग चुटकुले बाजी में दक्ष हो जाते हैं, उन्हें चुटकुले सुनाने का यश मिलता है, रचना करने का नहीं। यही स्थिति अर्थ की भी है। रचयिता को अर्थ की कोई उपलब्धि नहीं होती। हाँ, पत्रिकाओं में, रेडियो या दूरदर्शन के लिए चुटकुले भेजने वालों को कुछ थोड़े से अर्थ की प्राप्ति अवश्य हो जाती है जो नगण्य है। जहाँ तक व्यवहार ज्ञान और कांतासम्मित उपदेश का प्रश्न है, इस पर विचार करना आवश्यक है।

यद्यपि चुटकुलों की रचना करने वाले का उद्देश्य व्यवहार ज्ञान देना नहीं होता परंतु चुटकुलों से व्यवहार का ज्ञान प्रकारांतर से होता है। उदाहरणार्थ इस चुटकुले को देखें- एक बड़े विभागीय स्टोर में जब रमेश की पत्नी बिछुड़कर कहीं लुप्त हो गई और उसे वह नहीं

दिखाई दी तो उसने सामने खड़े स्टोर के व्यक्ति से पूछा 'मेरी पत्नी दिखाई नहीं दे रही मैं क्या करू? व्यक्ति ने उत्तर दिया "हमारे स्टोर में इतनी सुंदर सेल्सगर्ल काम कर रही हैं। आप किसी से भी हँसकर बात करने लगें आपकी पत्नी आपकी बगल में आ जाएगी।" यहाँ नारी की इस कमजोरी पर तीखा व्यंग्य किया गया है कि कोई भी नारी अपने पति को किसी भी अन्य स्त्री से बात करते नहीं देखना चाहती। यह चुटकुला प्रकारांतर से नारी के व्यवहार और मनोवृत्ति का ज्ञान भी कराता है।

जहाँ तक उपदेश, शिक्षा और लोक कल्याण का प्रश्न है यह तो स्पष्ट है कि चुटकुलों का आदर्शवाद से कोई संबंध नहीं है। उनकी प्रकृति भावनात्मक स्थापना न होकर, निषेधात्मक होती है। उसमें जनजीवन में व्याप्त विभिन्न जातियों, धंधों, समुदायों, भाषा-भाषियों की परस्पर घृणा की अभिव्यक्ति होती है, उपहास की अभिव्यक्ति होती है। इसका उद्देश्य व्यंग्य के माध्यम से प्रतिद्वंदवी को इस प्रकार से छकाना होता है कि हास्य के वातावरण में यह गहरा प्रभाव छोड़ जाए। उनमें आदर्शवाद, राष्ट्रवाद, अंतरराष्ट्रीय या मानवतावाद ढूँढना अप्रसांगिक होगा।

परंतु यह कहना ठीक नहीं होगा कि सभी चुटकुलों में शिक्षा का तत्व शून्य है। उनका उद्देश्य शिक्षा देना नहीं होता परंतु किस चुटकुले से कौन-सी शिक्षा ग्रहण की जा सकती है, यह बहुत कुछ ग्राहक की ग्राहकता पर निर्भर करता है। यद्यपि चुटकुलों का श्रोता इतना सजग नहीं होता कि शिक्षा ग्रहण करे परंतु चुटकुलों में शिक्षा का तत्व होता ही नहीं है, यह कहना गलत होगा। उदाहरणार्थ जब स्टेशन पर उतरा तो उसने टिकिट कलेक्टर को द्वार पर व्यस्त पाया। उसे देखकर तुरंत रमण को स्मरण आया कि वह तो उसका पुराना स्कूल साथी रामकृष्ण है। हालाँकि उससे मिले हुए 15-20 वर्ष हो गए थे पर रमण को पूरा विश्वास था कि वह रामकृष्ण ही है। रेलवे का एक बड़ा अफसर रमण जाँच के लिए जा रहा था उसने सोचा वह उसे पुरानी दोस्ती याद दिलाएगा और दिखला देगा कि बड़ा अफसर बन जाने पर भी उसे अफसरी की हवा नहीं लगी। वह रामकृष्ण के पास जाकर खड़ा हो गया और भीड़ छँटने पर मुस्कुराकर बोला "रामकृष्ण तुमने मुझे पहचाना या नहीं? हम दोनों स्कूल में साथ पढ़ते थे।" रामकृष्ण का उत्तर था - "अच्छा, अच्छा, तो तुम बिना टिकिट दिए ही निकल जाओ।" रमण जब उसे याद दिलाता है कि वे दोनों सहपाठी हैं तो रामकृष्ण यही अर्थ लगाता है कि यह व्यक्ति बिना टिकिट दिए बाहर जाने के लिए जान-पहचान बनाने का ढोंग कर रहा है और ऐसे प्रसंग टिकिट कलक्टर के जीवन में आते ही रहते हैं। इन असंगतियों के कारण यह चुटकुला एक हल्की हँसी की सृष्टि करता है परंतु यदि कोई चाहे तो इससे यह शिक्षा भी ले सकता है कि ड्यूटी पर संबंधों का कोई महत्व नहीं होना चाहिए। उसने ऐसी स्थिति उपस्थित कर दी है कि उसका साथी रमण उसके प्रति कोई कार्यवाही नहीं कर सकता। चुटकुलों का श्रोता ऐसी स्थितियों के अंदर प्रवेश नहीं करता, वह ऊपर ही ऊपर रहकर हास्य के बाद संतुष्ट हो जाता है। इससे प्राप्त होने वाली शिक्षा 'कांता उपदेश' की सहजता से युक्त नहीं है, आचार्य द्वारा प्रदत्त शिक्षा कही जा सकती है एक अन्य चुटकुले पर भी दृष्टि डालें। "एक पागलखाने में दर्शक को गाइड ने बताया यह जो आपके सामने पागल दीख रहा है, इसकी यह दशा इसलिए हुई कि इसे उस लड़की ने ठुकरा दिया था जिससे यह प्रेम करता था।" एक दूसरे पागल के सामने जाकर वह फिर बोला कि इसको पागलखाने इस कारण आना पड़ा कि इसने उसी लड़की से शादी कर ली जिससे यह प्रेम करता था।' यह चुटकुला दो स्थितियों से सामना कराता है। चाहे तो लड़की यह शिक्षा ग्रहण कर सकती है कि उसकी बेवफाई से लड़के का जीवन नष्ट हो सकता है अतः ऐसा नहीं करना चाहिए। दूसरी स्थिति से यह स्पष्ट होता है कि प्रेम के अतिरेक में अंधा नहीं होना चाहिए। शादी से पूर्व लड़की के गुणदोष देखने चाहिए। इन शिक्षाओं को कांतासम्मित उपदेश तो कहा जा सकता है परंतु है सब कुछ अप्रत्यक्ष ही। तात्पर्य यह कि चुटकुला विधा के विषय में यह नहीं कहा जा सकता कि उसका व्यवहार ज्ञान और शिक्षा से कुछ लेना देना नहीं है परंतु यह उसका मुख्य उद्देश्य तो क्या द्वितीय उद्देश्य भी नहीं है। प्रथम उद्देश्य मनोरंजन और द्वितीय उद्देश्य व्यंग्य के माध्यम से बाजीगरी जैसा प्रभाव उत्पन्न करता है। यहाँ 'कला, कला के लिए' की स्थिति है। इससे इतर नहीं। इसी संदर्भ में 'शिवेतरक्षतये' अर्थात् शिव से

भाषा ISSN 0523-1418

इतर का क्षय की स्थिति का भी अनुमान किया जा सकता है। रचनाकार का यह उद्देश्य ही नहीं रहता शिव तथा शिवेतर जैसे विचार की कोई भूमिका चुटकुलों में नहीं होती है और न उनका निर्माता इससे प्रेरित होता है।

आइए अब 'सद्यः परिनिर्वृति' की दृष्टि से विचार करें जिसका अर्थ होता है तुरंत फल देने वाला। मम्मट ने इसे अलौकिक आनंद और रस से जोड़कर इसकी व्याख्या की है परंतु चुटकुलों का उद्देश्य हास्य रस की सृष्टि करना होते हुए भी उनमें रस की वह गरिमा नहीं होती जो गंभीर काव्य में होती है, जिसे लोकोत्तर आनंद कहा गया है। निश्चित ही चुटकुलों का आनंद पूर्णतः भौतिक जगत के आनंद का स्तर है। हाँ तुरंत फल देने की स्थिति उसमें है और समुचित मात्रा में है। चुटकुलों से आनंद प्राप्त करने में न तो समय का व्यवधान होता है और न स्थान का। जिन चुटकुलों में यह व्यवधान पाया जाता है उन्हें अच्छा चुटकुला नहीं कहा जा सकता। चुटकुलों के संदर्भ में 'सद्यः परिनिर्वृतये' का अर्थ रस और तुरंत पकड़ में आने वाला व्यंग्यार्थ है।

चुटकुले और रस

चुटकुला एक हास्यरस प्रधान विधा है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि चुटकुलों में हास्यरस के अतिरिक्त अन्य कोई रस नहीं रहता। चुटकुलों का अंगी रस हास्य है। महाकाव्य और नाटकों के संदर्भ में आचार्यों ने अंगीरस की जो व्याख्या की है उसके अनुसार 1. आद्यत व्याप्ति, 2. नायक की मूलवृत्ति 3. फलागम और 4. अंतिम प्रभाव उसके लक्षण माने गए हैं। चुटकुलों का आकार इतना छोटा होता है कि आद्यंत व्याप्ति का कोई अर्थ नहीं होता। हाँ इसकी उलट स्थिति वहाँ होती है। प्रारंभ में चुटकुला कोई छोटा प्लॉट लेकर शुरू होता है, कोई गंभीर स्थिति लेकर चल सकता है, परंतु उसका अंतिम प्रभाव हास्य रस का विस्फोट होता है। चाहें तो हम कह सकते हैं कि अधिकांश चुटकुलों में हास्य रस आद्यंत व्याप्त नहीं होता परंतु उसका फलागम या अंतिम प्रभाव हास्य रस ही होता है। हास्यरस के अतिरिक्त चुटकुलों में अंगरूप में जिन रसों को ढूँढा जा सकता है वे हैं- श्रृंगार, वीर, करुण, वीभत्स, शांत और वात्सल्य। इन सभी रसों की स्थिति चुटकुलों में गौण रूप में होती है। वास्तविकता यह है कि ये सभी रस चुटकुलों में रस की स्थिति में पहुँच नहीं पाते। भाव रूप ही रहते हैं। इस स्थिति तक पहुँचने वाला एकमात्र रस हास्य ही है। व्यंग्य चुटकुले का महत्वपूर्ण साधन है परंतु इस साधन की भी अंतिम परिणति हास्य रस में ही होती है। कभी-कभी व्यंग्य हास्य की सीमा तक नहीं पहुँच पाता और पाठक व्यंग्य का ही आनंद प्राप्त कर पाता है परंतु इसके गर्भ में भी किसी रूप में हास्य की स्थिति रहती ही है।

हास्य रस और चुटकुला

संस्कृत काव्यशासत्र में हास्यरस को कोई महत्व नहीं दिया गया है। अधिकांश काव्यशास्त्रियों ने केवल उदाहरण ही दिए हैं। रुद्रट, विश्वनाथ और पंडितराज जगन्नाथ ने इसका लक्षण भी किया है। सभी कुछ अत्यंत संक्षेप में है। कविराज विश्वनाथ ने इसका लक्षण कर, इसके रंग, आलंबन आदि का वर्णन करने के बाद इसके भेद भी किए हैं। उनके अनुसार "हास्य वह रस है जिसे 'हास' स्थायीभाव का अभिव्यंजन कहा जाता है। इसका अविर्भाव आकार-विकृति, वेष-विकृति, चेष्टा-विकृति किंवा अन्याय प्रकार की विकृतियों के वर्णन अथवा अभिनयन से हुआ करता है।" उनके अनुसार इसके छह भेद हैं- (1) स्मित, (2) हसित, (3) विहसित, (4) अवहसित, (5) अपहसित, (6) अतिहसित। स्मित और हसित उत्तम प्रकृति के हास्य हैं। विहसित और अवहसित मध्यम कोटि के हास्य हैं और अपहसित और अतिहसित अधम कोटि के हास्य हैं। इन सभी भेदों की संक्षिप्त व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा है कि स्मित से तात्पर्य नेत्रों के किंचित विकास और ओठों के कुछ-कुछ फड़कने से है। हसित ऐसे हास्य को कहते हैं जिसमें दाँत भी कुछ-कुछ दिखाई पड़ जाए। विहसित ऐसा हास्य है जिसमें साथ ही साथ मधुर वचन भी निकल पड़े है। अवहसित हास्य में कंधे और सिर भी काँपने लगते हैं। अपहसित ऐसी हँसी होती है जिसमें आँखों में आँसू तक आ जाए। अतिहसित वह हास्य है जिसमें हाथ-पैरों की भी उठापटक हो जाए।

स्पष्ट है कि हास्यरस का काव्यशात्र में कोई सम्मानजनक स्थान नहीं है। यह संपूर्ण विवेचन नाटक और महाकाव्य आदि को दृष्टि में रखकर किया गया है

जहाँ अट्टाहस सभ्य समाज का व्यवहार नहीं माना जाता। जहाँ तक चुटकुलों का प्रश्न है स्थिति एकदम उल्टी है हास्य की जिन दो स्थितियों अपहसित को अधम कोटि का माना गया है, वे स्थितियाँ चुटकुलों के प्रसंग में एकदम उलट जाती हैं। जो चुटकुला जितना जबर्दस्त हास्य उत्पन्न कर सकता है, उतना ही श्रेष्ठ माना जाता है। कम हास्य की स्थितियाँ व्यंग्य के प्राधान्य की होती हैं। स्मित और हसित की स्थितियाँ भी चुटकुलों में होती हैं और विहसित और अवहसित की भी परंतु अच्छा चुटकुला व्यंग्य से निकटतम संबंधित होते हुए भी मुख्य रूप से ही संबंधित है। इन भेदों के चुटकुलों के कुछ उदाहरणों पर विचार करना संगत होगा।

चुटकुलों में स्मित की सृष्टि वहाँ होती है जहाँ वह अंत में पैनी मार करके किसी कमजोरी पर व्यंग्य करता है। यद्यपि चुटकुलों में व्यंग्य का प्रयोग सर्वत्र होता है परंतु स्मित में यह सूक्ष्म होता है। हँसना अंदर ही अंदर होता है। दाँत तक दिखाई नहीं देते। उदाहरणार्थ-

1. प्रेमी एक बड़े स्टेशन पर अपनी प्रेमिका को शादी के लिए मनाने की कोशिश बहुत देर से कर रहा था। जब बहुत देर बाद भी वह नहीं मानी तो प्रेमी ने अधीर होकर कहा यदि तुमने मुझसे शादी करना स्वीकार नहीं किया तो मैं आने वाली गाड़ी से कटकर मर जाऊँगा। प्रेमिका ने कहा- "जल्दी क्या है। इस स्टेशन पर तो हर घंटे गाड़ियाँ आती जाती रहती हैं।"

2. एक पादरी ने सुंदर युवती से कहा - "रात को मैं पूरे दो घंटे तक तुम्हारे लिए ईश्वर से दुआ करता रहा।" लड़की ने उत्तर दिया- "आपने बेकार इतना कष्ट किया। मुझे सिर्फ टेलिफोन कर देते तो मैं पाँच मिनिट में आपके पास आ जाती।"

3. एक बुढ़िया बस में खड़ी हिचकोले खा रही थी। सब सीटें भरी हुई थीं। किसी को उस पर तरस नहीं आया। बस स्टाप आने पर एक युवक नीचे उतरा और एक युवती बस में चढ़ी। उसे देखते ही एक नौजवान सीट से उठकर खड़ा हो गया और लड़की से सीट लेने के लिए कहा। लड़की ने बड़ी शालीनता से उस बुढ़िया का हाथ पकड़कर सीट पर बिठा दिया। युवक ने युवती से कहा "मैंने तो सीट आपके लिए खाली की थी।" लड़की ने मुस्कुराते हुए कहा- "कोई बात नहीं। वास्तव में बहिन से ज्यादा हक माँ का होता है।"

प्रथम उदाहरण में स्पष्ट है कि प्रेमिका प्रेमी की इतनी भी परवाह नहीं करती कि उसे आत्महत्या से रोके। दूसरे उदाहरण में व्यंग्य यह है कि जिस अप्रासंगिक कार्य में तुमने दो घंटे लगाए, उसकी अपेक्षा प्रासंगिक कार्य करने में पाँच मिनिट लगते। यहाँ पादरी की मनोवृत्ति और बेवकूफी पर व्यंग्य है। तीसरे उदाहरण में युवती की मुस्कुराहट युवक पर यह व्यंग्य करती है कि तुम्हारे मन में नारी के प्रति सम्मान नहीं है तुम नारी-लोलुप हो। वह स्वयं को बहन बनाकर उसमें उसकी भावना के अनौचित्य को जाग्रत करती है। ये तीनों ही स्थितियाँ 'स्मित' हास्य की हैं जो तर्क की बारीकी से उत्पन्न होती हैं। प्रेमी-प्रेमिकाओं की चुहलबाजी, वकील-मुवक्किल के प्रसंगों और सास-बहू के झगड़ों में इसे देखा जा सकता है। 'हसित' हास्य जिसमें हँसी में दाँत दिख जाते हैं, के उदाहरण इस प्रकार है-

1. नौकर - "बाबू जी, मोची आया था और कह रहा था अभी तक जूते की मरम्मत के पैसे नहीं मिले।"

बाबूजी - "अरे तो कौन-सी मुसीबत आ गई। उसकी बारी आने पर पैसे दे दिए जाएँगे। अभी तो हमने जूतों के दाम भी दुकानदार को चुकाने हैं।"

2. "तुम हिंदस्तानी न जाने कितने डिफरैंट कलर्स में होते हो। हम अंग्रेजों को देखो, सबके सब एकदम गोरे-चिट्टे"

"ठीक कहते हो प्यारे अंग्रेज भाई। घोड़े तो कई रंगों के होते हैं लेकिन सब गधे तो एक ही रंग के होते हैं।"

प्रथम उदाहरण में भारत के निम्न मध्यम वर्ग की आर्थिक स्थिति और उधार लेने और न चुकाने की वृत्ति पर व्यंग्य है कि जूते की कीमत तो चुकाई नहीं, विलंब इतना हो गया कि जूता टूट ही गया और सिलाई करानी पड़ी मरम्मत के पैसे देने का प्रश्न ही नहीं उठता। यह 'हसित' की स्थिति है। दूसरे उदाहरण में हिंदुस्तानी व्यक्ति अंग्रेजों को गधा कह देता है। उसकी हाजिर जवाबी और प्रत्युत्पन्नमति से यह हसित की स्थिति उत्पन्न हुई है।

विहसित की स्थिति में दाँत खुलने के साथ-साथ कुछ आवाज भी आती है। इस स्थिति में व्यंग्य का पैनापन उतना आवश्यक नहीं है जितना कि आलंबन का हास्यास्पद होना। उदाहरणार्थ-

1. एक मास्टर साहब बच्चों को गाली बहुत दिया करते थे। एक दिन वे भूगोल की कक्षा में सूअर की उपयोगिता बता रहे थे कि उसके बाल ब्रुश बनाने के काम आते हैं, चर्बी घी बनाने के काम आती है और माँस खाने के काम आता है। एक लड़का बीच में बोला-सर! वो गाली देने के काम में भी तो आता है।

2. नीलाम करने वाले अधिकारी के पास एक पर्ची पहुँची जिसमें लिखा था कि "अभी-अभी मेरी दस वर्षीय बिटिया खो गई है, उसे जो भी ढूँढ़कर लाएगा उसे मैं सौ रुपए इनाम दूँगा।" अधिकारी द्वारा संदेश पढ़कर सुनाने के पाँच क्षण बाद ही एक आवाज़ आई "एक सौ पच्चीस रुपए"।

प्रथम उदाहरण में बालक का भोलेपन से भरा तर्क और मास्टर की गाली देने की आदत, दोनों मिलकर जो व्यंग्य पैदा करते हैं वह विहसित की स्थिति पैदा करता है। द्वितीय उदाहरण में भी एक सौ पच्चीस रुपया आवाज लगाने वाला हास्य का आलंब बनता है। उसकी लड़की नहीं खोई थी परंतु व्यावसायिक आदत के कारण उसने बिना सोचे समझे इनाम को ही एक बोली समझ लिया।

'अवहसित' की स्थिति में दाँत खुलने और आवाज़ निकलने के साथ-साथ हास्य के आधिक्य के कारण कंधे और सिर में भी कंपन होने लगता है। यह स्थिति अधम की तरह असभ्यता को उजागर नहीं करती, परंतु इसमें असामाजिकता हो सकती है। हास्य की दृष्टि से इसकी स्थिति बीच की रहती है। उदाहरणार्थ-

1. जज ने तलाक के प्रार्थी एक व्यक्ति को कहा कि आपने जो कारण दिए हैं वो अपर्याप्त है। कोई बड़ा कारण हो तो बताएँ। प्रार्थी ने जवाब दिया कि उसकी पत्नी ने उसके कमरे में बकरियाँ पाल रखी हैं। उससे सारे कमरे में काफी बदबू रहती है। जज ने इसे एक ठीक कारण समझते हुए सलाह दी कि आप कमरे की खिड़कियाँ और दरवाजे खुले क्यों नहीं रखते। पार्थी ने जज को कहा "क्या आप चाहते हैं कि मैंने उस कमरे में जो कबूतर पाल रखे हैं वे सबके सब उड़ जाए"।

2. एक दावत हो रही थी। लोग खाकर आ जा रहे थे। परंतु दो लोग डटे हुए थे। जाने का नाम ही नहीं ले रहे थे। एक व्यक्ति जब झल्लाकर उनके पास आया और उनको कुछ कहा तो एक ने कहा मैं लड़के वालों की ओर से हूँ दूसरे ने कहा मैं लड़की के पक्ष का हूँ। झल्लाए आदमी ने गुस्से से कहा "यह शादी की दावत नहीं है। यह तो पंडित जी का श्राद्ध हो रहा है।"

प्रथम चुटकुले में हास्य का कारण प्रार्थी द्वारा बड़े भोलेपन के साथ अपनी गलती प्रस्तुत कर देना है। जिसके कारण तलाक के पक्ष में उसका तर्क न जानकर स्वयं की मूर्खता प्रदर्शित करता है। वह यह बात सामने ले आता है कि शयन कक्ष में बकरी और कबूतर दोनों पाल रखे हैं। श्रोता के सामने तलाक की बात पीछे हट जाती है और कमरे की स्थिति हास्य उत्पन्न करती है। द्वितीय चुटकुले में भी हास्य का आलंबन भोजन करते चले जाने वाले दोनों व्यक्ति हैं जो दावत के हेतु से अनभिज्ञ है। और उनकी दृष्टि केवल भोजन पर है।

अपहसित और अट्टहास के उदाहरण देने के पूर्व हम यह कहना चाहेंगे कि विहसित और अपहसित के निर्णय में श्रोता की भूमिका भी महत्वपूर्ण है। श्रोता का संयम और गंभीरता इनको परस्पर बदल भी सकती है और इनके कुछ उदाहरण 'हसित' तक भी सीमित रह सकते हैं। चुटकुलों में प्रकार के निर्णय का आधार काफी कुछ श्रोता पर है परंतु अपहसित और अट्टहास की स्थिति पैदा होती है जब कथ्य इतना सशक्त होता है कि श्रोता की सारी गंभीरता और संयम क्षण भर में तिरोहित हो जाती है और हास्य उन पर छा जाता है। दोनों का एक-एक उदाहण प्रस्तुत है-

अपहसित :

अट्टहास :

1. उसके उलझे हुए बाल, फटे हुए गाल और बेहाल देखकर मैंने पूछा "मित्र! क्या तुम्हारा पुत्र बेरोज़गार है।" उत्तर मिला, "नहीं! वह साहित्यकार है।"

2. एक बार म्यूनिसिपिल चुनाव से पहले एक उम्मीदवार विशाल जनसमूह को संबोधित कर रहा था

"हमें अधिक से अधिक मात्रा में गेहूँ पैदा करना चाहिए।" तभी विरोधी दल का एक श्रोता बोला "हाँ ठीक, परंतु घास के बारे में क्या ख्याल है।" उम्मीदवार ने उत्तर दिया "जी, अभी तो मैं मनुष्यों के भोजन के बारे में भाषण दे रहा था। जरा ठहरिए, आपके भोजन के बारे में भी अभी बताता हूँ।"

चुटकुला और हास्येतर रस :

चुटकुले का अंगीरस हास्यरस ही है परंतु हास्यरस की सृष्टि के लिए चुटकुलों में अन्य अनेक रसों का सहारा भी लिया जा रहा है। अधिक उपयुक्त यह कहना होगा कि अन्य रसों के स्थायिभाव रस की पूर्णता तक न पहुँचकर रसाभास की स्थिति तक सीमित रहते हैं और हास्यरस की निष्पत्ति में सहायक होते हैं। व्यावहारिक रूप से अद्‌भुत, रौद्र और भयानक ऐसे रस हैं जिनके उदाहरण नहीं प्राप्त होते। यहाँ हम श्रृंगार, वीर, करुण और वात्सल्य के द्‌वारा पुष्ट होने वाले चुटकुलों का एक-एक उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं-

श्रृंगार :

"एक युवक ने अकेले में अपनी प्रेमिका से कहा" "अगर मैं तुम्हारा एक चुंबन लूँ तो तुम मुझे क्या कहोगी।" प्रेमिका ने उत्तर देते हुए कहा "एक ऐसा चोर जो पूरी कार चुरा सकता था लेकिन सिर्फ टायर चुराकर ही संतुष्ट हो गया।"

करुण :

एक व्यक्ति की चाची की मृत्यु पर उसके मित्र ने पूछा "इतने अधिक उदास क्यों हो? चाची की आयु तो काफी हो चुकी थी।" व्यक्ति ने उत्तर दिया "बात यह है कि गत पाँच वर्षों से मैंने चाची को पागल सिद्‌ध करके पागलखाने भेज दिया था। अब पता चला है कि उसने सारी संपत्ति मेरे नाम कर रखी है। अब मुझे यह सिद्‌ध करना है कि उनकी दिमागी हालत दुरुस्त थी।"

वीर रस :

राम-रावण युद्‌ध में रावण बने लड़के ने खूब जमकर लड़ाई का अभिनय किया और गिरकर मर गया। लड़कों ने खुश होकर तालियाँ बजाई वाह! वाह! तभी एक आवाज़ आई 'वंस मोर'। सुनते ही वह लड़का तुरंत उठकर पुनः लड़ने लगा।

वात्सल्य :

माँ ने सुबह ही सुबह झुँझलाकर अपने बच्चे से पूछा- "शाम को हमने अलमारी में दो लड्‌डू रखे थे। एक ही कैसे रह गया।" बच्चे ने सकपकाकर उत्तर दिया "अँधेरा होने के कारण दूसरा लड्‌डू मुझे दिखाई ही नहीं दिया।"

चुटकुला और ध्वनि तत्व :

काव्यशास्त्र में ध्वनि-सिद्‌धांत के संस्थापक आनंदवद्‌र्धन हैं और उनके अनुसार काव्य के तीन भेद हैं। 1. ध्वनि काव्य 2. गुणीभूत ध्वनि काव्य 3. चित्र काव्य। उनके अनुसार ध्वनि काव्य सर्वश्रेष्ठ है जिसकी रचना महाकवियों द्‌वारा होती है और जिसमें कवि द्‌वारा कथित शब्दार्थ से एक अन्य ही अर्थ उसी प्रकार निष्पन्न होता है जिस प्रकार सुंदर नारी के अंगों के लावण्य से अलग एक अन्य ही सौंदर्य निष्पन्न झलकता है। उन्होंने ध्वनिकाव्य के दो भेद किए लक्षणामूला ध्वनि और अभिधामूला ध्वनि। लक्षणामूला ध्वनि के दो भेद किए 1. अर्थांतर संक्रमित वाच्य ध्वनि और अत्यंत तिरस्कृत वाच्य ध्वनि। अभिधामूला ध्वनि के दो भेद किए 1. संलक्ष्य क्रम व्यंग्य ध्वनि और असंलक्ष्य क्रम व्यंग्य ध्वनि। असंलक्ष्य क्रम व्यंग्य ध्वनि से उनका तात्पर्य रस से है और उसके संदर्भ में चुटकुलों का व्यवस्थित विवेचन ऊपर कर चुके हैं। यहाँ शेष तीन पर विचार करना है।

सर्वप्रथम बिंदु तो यह है कि चुटकुलों में ध्वनि के विभिन्न प्रकारों का इतना अधिक और इतना सशक्त प्रयोग होता है कि इसे श्रेष्ठ रचना की संज्ञा दी जा सकती है। ध्वनि के सभी रूप वस्तुध्वनि, अलंकार ध्वनि, अर्थशक्ति उद्‌भव, उभय आदि चुटकुलों में प्राप्त हो जाते हैं और चुटकुला ध्वनि से समृद्‌ध विधा सिद्‌ध होती है। यहाँ कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं-

अर्थांतर संक्रमित वाच्य ध्वनि :

एक बार बादशाह ने नौकर से कहकर बीरबल का जूता छिपवा दिया। बीरबल को जब अपना जूता नहीं मिला तो बादशाह ने रौब दिखाते हुए बीरबल को नया जूता दिलवा दिया। बीरबल ने कहा "ईश्वर इसके बदले आपको स्वर्ग में हजारों जूते दें।"

अत्यंत तिरस्कृत वाच्य ध्वनि :

पति अपने मित्र से कह रहा है कि "जब हम पति-पत्नी में झगड़ा होता है तो वह मुझ पर बेलन और प्लेटें फेंकती है। अगर पत्नी का निशाना मुझ पर ठीक बैठ जाता है तो पत्नी खुश होती है और यदि चूक जाता है तो मैं खुश होता हूँ।"

वस्तु ध्वनि :

पत्नी- अगर मेरी किसी राक्षस के साथ शादी हो जाती तो भी मैं इतनी दुखी न होती जितनी तुम्हारे साथ हूँ।

पति - पगली! खून के रिश्तों में कहाँ शादी होती है।

अलंकार ध्वनि :

"एक दिन बादशाह ने बीरबल से कहा जिस नाम के साथ वान लगा रहता है वह बड़ा बेकार होता है। जैसे दरवान फीलवान, कोचवान आदि। बीरबल ने उत्तर दिया 'हाँ महरवान।"

यहाँ दरवान, कोचवान और फीलवान के समक्ष 'महरवान' शब्द का प्रयोग उपमा अलंकार को ध्वनित करता है अर्थात् 'महरवान' शब्द में भी वह प्रत्यय लगा है जो अन्य शब्दों के साथ लगा है अत: अकबर भी उसी श्रेणी में आता है। यह उपमा अलंकार ध्वनि का उदाहरण है। इस चुटकुले का वैशिष्ट्य यह भी है कि यह बीरबल द्वारा दी गई स्वीकृति में से ध्वनित होता है। बीरबल अकबर का विरोध नहीं करता वरन् स्वीकृति देता है और उसी में से उपमा ध्वनित होती है।

तात्पर्य यह है कि ध्वनि सिद्धांत ने ध्वनि काव्य अर्थात् श्रेष्ठ काव्य के जो भी भेद किए हैं वे चुटकुलों में पर्याप्त संख्या में मिल जाते हैं और इस प्रकार चुटकुला एक श्रेष्ठ काव्य विधा सिद्ध होती है। वास्तकिता तो यह है कि लगभग 80% चुटकुलों में ध्वनि तत्व किसी न किसी रूप में प्राप्त है। असंलक्ष्य क्रम व्यंग्य ध्वनि अर्थात् रस को ध्वनि में ही शामिल कर लिया जाए (जो कि शास्त्रीय दृष्टि से वह है ही) तो एक भी चुटकुला ऐसा नहीं मिलेगा जो ध्वनि-तत्व से रहित हो। जहाँ तक गुणीभूत व्यंग्य का प्रश्न है (जिसे आनंदवद्धर्न ने मध्यम कोटि का काव्य कहा है) चुटकुलों में जहाँ भी अन्य रस आया है वह गुणीभूत होकर ही आया है। यों ऐसे अनेक चुटकुले मिल जाएँगे जहाँ व्यंग्य गुणीभूत ही है। ध्वनि का एक अर्थ व्यंजना भी है। चुटकुलों में व्यंजना के अर्थ निर्धारक तत्व पर्याप्त संख्या में मिलते हैं। वक्तृवैशिष्ट्य पूर्ण, काकुवैशिष्ट्यपूर्ण, वाच्य वैशिष्ट्य पूर्ण, अन्य सानिध्य वैशिष्ट्य पूर्ण, देश वैशिष्ट्य पूर्ण, चेष्टा वैशिष्ट्य पूर्ण चुटकुलों का अभाव नहीं है।

चुटकुलों में अलंकार :

अलंकार कथन की विशिष्ट शैलियाँ हैं। उनका एक उद्देश्य काव्य में चमत्कार उत्पन्न करना भी है। इनकी संख्या लगभग 108 है परंतु चुटकुलों में भी अलंकार नहीं ढूँढ़े जा सके हैं।

"मालिक - (गुस्से से नौकर से) अबे उल्लू दिन भर कहाँ रहता है।

नौकर - सरकार घौंसले में

मालिक - (क्रोधित होकर) गधा।

नौकर - (तपाक से) हुजूर धोबी के यहाँ।

मालिक - (बिगड़कर) अरे बेवकूफ क्यों दिमाग खाता है।

नौकर - सरकार, यह तो मुझे भी नहीं मालूम।"

यहाँ उल्लू, गधा और बेवकूफ को काकु के अन्य प्रकार में परिगणित कर नौकर ने अपनी बात की है। कुछ अन्य अलंकारों के उदाहरण इस प्रकार है-

तुल्ययोगिता अलंकार :

"एक सहृदय ने कवि से पूछा- पान क्यों सड़ा, घोड़ा क्यों अड़ा, रोटी क्यों जली, छात्र पाठ क्यों भूला, इन सभी का एक ही उत्तर दो।" कवि ने तुरंत कहा - 'फेरा न था'। यहाँ चार की एक ही विशेषता है फेरा न था परंतु प्रत्येक क्रम में प्रसंग: उसका अर्थ अलग-अलग है जो मूलत: एक ही है।

रूपकातिश्योक्ति :

एक बस स्टाप पर एक हसीना खड़ी हुई थी। उसे देखकर एक मनचला लड़का पास आकर कहने लगा- "आज तो सारे ही काम उल्टे हो रहे हैं। दिन में ही चंद्रमा निकल आया।" लड़की भी कम न थी उसने तपाक से जवाब दिया- "हाँ, आज तो सारे काम उल्टे हो रहे हैं। दिन में ही उल्लू बोलने लगा।"

अतिश्योक्ति अलंकार :

एक फिल्म डायरेक्टर से सिने जगत में प्रवेश करने की इच्छुक लड़की से कहा, "तुम अपना पता

छोड़ जाओ। मैं तुम्हें बुढ़िया का पार्ट करने के लिए बुला लूँगा।" लड़की ने कहा – "बुढ़िया का पार्ट! मैं तो अभी बहुत छोटी हूँ" डायरेक्टर ने जवाब दिया – "पर जब तक मैं तुम्हें बुलाऊँगा तुम बुढ़िया हो गई होगी।"

कुंतक ने 'वक्रोक्ति जीवितम्' में वक्रोक्ति के जो छह भेद किए हैं- वर्णक्रता पद पूर्वाद्र्ध वक्रता-पद पराद्र्धवक्रता, वाक्य वक्रता, प्रकरण वक्रता और प्रबंध वक्रता, उनमें से प्रबंध वक्रता चुटकुलों के क्षेत्र से बाहर का भेद है क्योंकि चुटकुला प्रबंध रूप नहीं होता। हाँ, प्रत्येक चुटकुला अपने आप में एक वक्रप्रकरण होता है। परंतु कुंतक ने प्रकरण – वक्रता के जो भेद किए हैं' वे चुटकुलों के क्षेत्र पर लागू नहीं होते। जहाँ तक पद पूर्वाद्र्ध, पद पराद्र्ध और वाक्य वक्रता का प्रश्न है हमने अनेक प्रसंगों में चुटकलों के जो उदाहरण प्रस्तुत किए हैं, उनमें ये भेद स्पष्टता से ढूँढ़े जा सकते हैं। वस्तुतः चुटकुला एक ऐसा स्वायत्त वक्र प्रकरण है जो किसी प्रबंधत्व के आश्रित न होकर अपने स्वतंत्र अस्तित्व की घोषणा करता है। जहाँ तक औचित्य सिद्धांत का प्रश्न है चुटकुलों का सारा महल अनौचित्य के माध्यम से हास्य या व्यंग्य पूर्ण प्रकरण की सृष्टि करता है।

इस संपूर्ण लेख का निष्कर्ष यही है कि चुटकुला एक ऐसी चमत्कारपूर्ण लोकविधा है जिसकी अंतिम परिणति हास्य में होती है। यह हास्य किसी भी कोटि का हो सकता है। इस हास्य रस की सृष्टि के लिए उसका गुमनाम लेखक अनजाने ही ध्वनि, अलंकार और वक्रोक्ति शास्त्र में वर्णित सूक्ष्म, काव्योपकरणों का प्रयोग करता है। इन प्रयोगों में शिष्ट ललित काव्य जैसी भव्यता नहीं होती। वर्ण विषय की महानता, विशालता और आदर्श वादिता से दूर यह कला संरचना की दृष्टि से एक श्रेष्ठ कला है और कला-कला के लिए सिद्धांत का पालन तो करती ही है परंतु इसमें जीवन के तत्व भी प्रर्याप्त मात्रा में है। यह एक शुद्ध मनोरंजक कला है परंतु अप्रत्यक्ष रूप से श्रोता पर सामाजिकता के संस्कार भी डालती है। यह कला साहित्य की दृष्टि में उपेक्षित ही रही है जबकि पहेली, लोकोक्ति और मुहावरे जैसी लोक विधाओं पर काफी काम हो चुका है। आवश्यकता इस विधा को साहित्यिक प्रश्रय देने की है।

– आनंद निकेतन, 75/70, टैगोर पथ, मानसरोवर, जयपुर-302020

❑❑❑

राष्ट्रवाद और भाषाई अस्तित्व

प्रो. प्रदीप के. शर्मा

किसी भी राष्ट्र में राष्ट्रवाद के विकास के साथ उस राष्ट्र की भाषा या भाषाओं की उन्नति होती है और राष्ट्रवाद की भावना के क्षरण के साथ उसकी भाषाओं की अवनति जो आज हम भारत में हिंदी और दूसरी राष्ट्रीय भाषाओं के क्षेत्र में देख रहे हैं इसका मूल कारण है देश में राष्ट्रवाद का क्षरण।

इसके लिए हमें जानना होगा राष्ट्र क्या है? अनेक विद्वानों ने इसे अलग-अलग रूप से व्याख्यायित किया है। वेदों में अगर राष्ट्र शब्द का उल्लेख है तो फिर यह मानना ही पड़ेगा कि भारत राष्ट्र की पहचान करवाने के लिए जगत में शिरोमणि है क्योंकि दुनिया के प्राचीनतम साहित्य में वेद की गणना होती है।

'राष्ट्र' शब्द राज दीप्तों धातु से बना है। 'राजते दीप्यते प्रकाशते इति राष्ट्र' अर्थात् वह भूखंड जो स्वयं प्रकाशित हो, विदेशियों से पदाक्रांत न हो और स्वयं स्वतंत्र हो राष्ट्र कहलाता है। शतपथ ब्राह्मण में समृद्धि युक्त ओजस्वी जनसमूह को राष्ट्र कहा गया है। यानी प्रजा को ही राष्ट्र की संज्ञा दी गई है।

भद्र इच्छन्त ऋषयः स्वर्विदः

तपो दीक्षां उपसेदुः अग्रे।

ततो राष्ट्रं बलं ओजश्च जातम।

तदस्मै देवा उपसं नमंतु।। अथर्ववेद 19/41/1[1]

अथर्ववेद में 'अहं राष्ट्रे स्यामिवर्गे निजी भूयासमुत्तमः' के माध्यम से कहा गया है कि मैं राष्ट्र की जनता में उत्तम निज अर्थात् अपना होऊँ। राष्ट्र का प्रत्येक व्यक्ति कभी भी स्वयं को मुख्य धारा से अलग न समझे।

ऋग्वेद के श्री सूक्त में कहा गया .... 'प्रातुर्भूतोस्मि राष्ट्रस्मिन कीर्ति वृद्धि ददातु में।'

मैं इस राष्ट्र में पैदा हुआ हूँ ईश्वर मेरे राष्ट्र को कीर्ति और वृद्धि प्रदान करें।[2] अथर्ववेद का 'भूमि सूक्त' तो मानो वेदों का राष्ट्र गीत ही हो। उसके प्रथम मंत्र में आया है... 'सम्यं बृहम् मुद्रां दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवी धारयन्ति। सा नो भूतम्य भव्यस्य पत्न्युसं लोकं पृथिवी नः कृणोतु'

यहाँ मंत्र का संयुक्त अर्थ हुआ हमारे भूतकाल की और भविष्य की रक्षा करने वाली यह हमारी मातृभूमि हर स्थान को प्रकाशित करे।

इसमें राष्ट्रोन्नति संबंधी सात मूल तत्व उभरकर आए हैं।

सत्यम् - सत्य बोलने से तात्पर्य यह है कि कोई राष्ट्र तभी समृद्धशाली बन सकता है जब उसमें रहने वाले जनसमूह आपस में सत्याचरण करते हैं।

ऋतम् - इसका अर्थ है 'सत्यज्ञान' जहाँ ज्ञान इस अर्थ में है कि हम वाक्पटु न बने और मिथ्यापूर्ण भाष्य न करें।

उग्रम राष्ट्र - राष्ट्र की रक्षा के लिए उग्र होना परम आवश्यक है। यह काम जनता को संगठित रहकर ही किया जा सकेगा। इसी भूमि सूक्त के अन्य मंत्र में कहा गया है जो हमारे राष्ट्र से द्वेष रखे और हमसे युद्ध करना चाहता है उसे नष्ट करना अपना दायित्व है।

दीक्षा - का अर्थ है अपने काम को पूर्ण करना। काम पूरा नहीं होगा तो राष्ट्र के विकास में बाधा उत्पन्न

होगी। इससे हमारा आत्मविश्वास समाप्त होगा। इसी बात को यजुर्वेद में इस प्रकार से कहा गया है कि मातृभूमि के लिए काम करने का व्रत ही संस्कारों को जन्म देता है। जब तक नागरिकों में राष्ट्र दीक्षा का गुण उत्पन्न नहीं होगा उनके कार्य राष्ट्र के लिए नहीं हो सकते।

तप – राष्ट्र के उत्थान की प्रथम सीढ़ी है। यजुर्वेद में कहा गया है– 'वयं राष्ट्रेतरग्रयाम पुरोहिताः।'[3] अर्थात् हम सभी राष्ट्र के जागरूक पुरोहित हैं। पुरोहित का तात्पर्य है पर के हित का ध्यान रखने वाला। इसी परंपरा के आधार पर मंदिर के पुजारी जो मंदिर की संपत्ति और व्यवस्था की रक्षा पर तैनात किए जाते हैं उन्हें पुरोहित कहा जाता है। जब तक वह अपना स्वार्थ नहीं त्यागता तब तक अन्य के हित का ध्यान भला किस प्रकार रख सकता है। इसलिए अपने लिए नहीं बल्कि पराए के लिए अनिवार्य है। यानी संपूर्ण राष्ट्र की सेवा अपने हित को त्याग कर ही हो सकती है।

ब्रह्मा – यानी शिक्षा। जिस राष्ट्र के पास अपने नागरिकों को देने के लिए अच्छी शिक्षा होगी वह अन्य राष्ट्रों के बीच अग्रणी होगा। शिक्षा तो प्रगति का मूल मंत्र है इसलिए किसी राष्ट्र की आत्मा है तो वह मात्र शिक्षा में ही है। अपने ऐतिहासिक ग्रंथों पर श्रद्धा और अपने विद्वानों का सम्मान शिक्षा के तहत एक महत्व का काम है।

यज्ञ – जिसका अर्थ सामान्य भाषा में मिल–जुलकर काम करने की वृत्ति होती है। इसलिए ऋग्वेद के संज्ञान सूक्त में कहा गया है... 'संगच्छध्वं सं वदध्वं सवों मनांसि जानताम। देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपसते' जिसका अर्थ होता है सब मिलकर चले, सब मिलकर संभाषण करो और एकता से रहो। इसी वेद में एक स्थान पर यह भी कहा गया है कि सब का विचार सबके लिए हितकारी हो। आपकी सभा में सबकी समानता रहे, विषमता कभी न हो। कुल मिलाकर सबसे बड़ा यज्ञ यह है कि एकता को सुदृढ़ करें। भाव यह रहे 'राष्ट्राय स्वाहाः, राष्ट्राय इदं नमम्।' मेरा कुछ भी नहीं सब कुछ राष्ट्र का है। इसलिए विश्व के सबसे प्राचीन ग्रंथ वेदों में राष्ट्र का स्पष्ट वर्णन मिलता है और साथ ही उपर्युक्त सातों तत्वों को भी राष्ट्र के निर्माण हेतु मार्गदर्शिका के रूप में प्रस्तुत किया गया है।[4]

किसी भी राष्ट्र में, राष्ट्रवाद के विकास के साथ उस राष्ट्र की भाषा या भाषाओं की उन्नति। आज भारत में हिंदी ही नहीं, अपितु अन्य सब राष्ट्रीय भाषाओं, जैसे असमिया, बांग्ला, तमिल, तेलुगु, मलयालम आदि भाषाओं का अवमूल्यन हुआ है। उसका मुख्य कारण है देश में राष्ट्रवाद का क्षरण।

राष्ट्र को परिभाषित करना बहुत कठिन कार्य है। अनेक विद्वानों ने इसे अलग–अलग व्याख्यायित किया है जैसे–

परिवार एक 'बायलॉजिकल' (जैविक) इकाई होता है। इसके सब सदस्य एक दूसरे से रक्त–संबंध से जुड़े होते हैं। परिवार जब कालांतर में बढ़ते–बढ़ते इतना बड़ा हो जाता है कि बहुत बड़े भूभाग में बिखरे एक वंश का रूप ले ले, तो उसे 'क्लैन' कहते हैं। यह 'क्लैन' बढ़ते–बढ़ते 'ट्राइब' (कबीले) का स्वरूप ग्रहण कर लेते हैं। कबीले के सदस्यों में एकत्व का आधार ही रक्त–संबंध होता है। जब विभिन्न कबीलों के सदस्य, जिनके आपस में रक्त–संबंध न हो, एक साथ रहते हुए, अपनी कबीलाई या क्षेत्रीय पहचान से ऊपर उठकर, एक–दूसरे के निकट आते हैं तथा मानसिक और भावनात्मक रूप से एकत्व अनुभव करते हैं, तो वह पहचान 'राष्ट्र' का स्वरूप लेती है। 'राष्ट्र' के निर्माण में रक्त–संबंध की कोई भूमिका नहीं है। इस प्रकार राष्ट्र एक 'बायलॉजिकल कांसेप्ट' (जैविक अवधारणा) नहीं है।

सामान्यतः हम देखते हैं कि 'सिटिजनशिप' (नागरिकता) तथा 'नेशनेलिटी' (राष्ट्रीयता) को पर्यायवाची शब्दों के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार 'सिटीजन' (नागरिक) तथा 'नेशनल' (राष्ट्रिक) भी एक दूसरे के पर्याय माने जाते हैं। यह तथ्यपरक नहीं है। 'सिटिजनशिप' तथा 'सिटीजन' विधिक शब्द हैं, जबकि 'राष्ट्रीय' और 'राष्ट्रिक' विधिमान्य शब्द नहीं है। कोई भी व्यक्ति जो भारतीय मूल के माता–पिता की संतान है और भारत में जन्मा है, वह देश के विधान के अंतर्गत भारत का 'सिटीजन' (नागरिक) माना जाएगा। कोई भी विदेशी विधिक प्रक्रिया के अंतर्गत ही भारतीय 'सिटीजनशिप' (नागरिकता) प्राप्त कर सकता है। इसके बाद ही वह विधिक रूप से भारतीय 'सिटीजन' (नागरिक) माना जाएगा। इसके विपरीत 'राष्ट्रीयता' (नेशनेलिटी)

और 'राष्ट्रिक' (नेशनल) विधिसंगत शब्द नहीं है। विधान में राष्ट्र (नेशन), राष्ट्रवाद (नेशनलिज़्म), राष्ट्रिक (नेशनल) आदि परिभाषित नहीं है। इससे स्पष्ट है कि राष्ट्र एक 'लीगल कॉन्सेप्ट' (विधिक अवधारणा) नहीं है। राष्ट्र एक भावनात्मक अवधारणा है।

रक्त, धर्म, भाषा, व्यवसाय, क्षेत्र आदि के द्वारा एक-दूसरे से संबद्ध अथवा असंबद्ध जन जब अपनी सामूहिक पहचान स्वीकार करते हैं, तो राष्ट्र अस्तित्व में आता है इसका यह अर्थ नहीं है कि उस राष्ट्र के सब राष्ट्रिकों की अन्य पहचानें विलुप्त हो जाती हैं। वे अपनी अन्य छोटी-छोटी पहचानों को जीवित रखते हुए ही भावनात्मक स्तर पर सर्वाधिक बड़ी पहचान 'राष्ट्र' के प्रति निष्ठावान होते हैं। उनकी इस बड़ी पहचान में, छोटी-छोटी पहचाने गौण हो जाती हैं। उदाहरण के लिए हम सब भारतीय अपने आपको भारत राष्ट्र का सदस्य मानते हैं। भावना के धरातल पर भारतीय राष्ट्रीयता की चेतना हमारी सबसे बड़ी पहचान है। साथ ही संभव है कि हम किसी धर्म को मानते हों। वह हमें एक धार्मिक पहचान देता है। हम एक प्रदेश में जन्में हों या उसमें कार्य करते हैं, जो निवासीय या क्षेत्रीय या प्रदेशीय पहचान देता है। सब पहचानों को स्वीकार करते हैं, तो अन्य पहचानें आच्छादित हो जाती हैं, हम मानसिक स्तर पर अपने आप को भारत राष्ट्र का सदस्य मानते हैं, और इसके आधार पर ही हम असम में जन्म होने के बावजूद पिछले दस साल से चेन्नई में रहने के कारण तमिल से भावनात्मक स्तर पर अपनापन अनुभव करते हैं।

सैकड़ों वर्षों की अवधि में जाति, धर्म, क्षेत्र, भाषा आदि की छोटी-छोटी पहचानों से निरपेक्षित राष्ट्रवाद की भावना धीरे-धीरे स्वतः विकसित होती है।

राष्ट्रीय चेतना ही राष्ट्रवाद के मूल में है। जब राष्ट्रीय चेतना दुर्बल होती है, तो राष्ट्र बिखरने लगता है। राष्ट्रीय चेतना के दुर्बल होने के अनेक कारण हो सकते हैं। जाति, धर्म, क्षेत्र, भाषा आदि की छोटी-छोटी मान्यताएँ संपुष्ट होकर जातिवाद, अलगाववाद, क्षेत्रवाद, मजहबी उन्माद का भीषण रूप लेकर राष्ट्र की बड़ी पहचान को चुनौती देने लगे या विरोधी शक्तियों के एजेंट राष्ट्र जन में फूट डालने में सफल हो जाएँ या दिशाहीन, बौने लोग नेतृत्व प्राप्त कर लें या नेतृत्व बिक जाए या ऐसा ही कुछ और। कुछ विचारधाराएँ भी राष्ट्रवाद को नकारती हैं। साम्यवाद राष्ट्रभावना को नकार कर अपने अनुयायियों में साम्यवादियों की अंतरराष्ट्रीय एकात्मता में विश्वास करता है वैश्विक बाज़ारवाद भी राष्ट्रवाद को क्षीण कर रहा है।

राष्ट्रीयता की रीढ़ है भावना और भावना कभी चिरस्थायी नहीं होती। प्रेम, क्रोध, वितृष्णा आदि भी भावनाएँ हैं। यह भावनाएँ चिरस्थायी नहीं रहतीं, और उन्हें बनाए रखने के लिए सतत प्रयत्न करना पड़ता है। राष्ट्रवाद भी एक भावना है अतएव राष्ट्रवाद की चेतना भी चिरस्थायी तब ही हो सकती है, जब सुविचारित रूप से उसे सतत संतुष्ट किया जाए। इस संदर्भ में राजनैतिक और बौद्धिक नेतृत्व का यह दायित्व बनता है कि वे राष्ट्रवाद की भावना और राष्ट्रीय चेतना को बराबर बनाए रखने और सघन करने के लिए सतत उपाय करते रहें।

राष्ट्र के निर्माण में भाषा का महत्व नींव के पत्थर के समान है। जैसे नींव का पत्थर कमज़ोर हो जाए या अपने स्थान से हिल जाए तो भवन गिर जाता है, उसी प्रकार भाषा के नष्ट होने या काट दिए जाने पर, राष्ट्र भी पतित हो जाता है।[5]

ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा सन् 1830 तक भारत के अधिकांश भू-भाग पर कब्ज़ा हो गया था। गवर्नर जनरल सहित ईस्ट इंडिया कंपनी के सभी उच्चाधिकारी चिंतित थे कि किस प्रकार भारत में अंग्रेजी साम्राज्य को चिरस्थाई बनाया जाए। उस समय कंपनी के आगे एक और प्रश्न भी था। इतने बड़े भूभाग की भारतीय जनता के स्कूलों का पाठ्यक्रम क्या हो? क्या उनको पारंपरिक संस्कृत पाठ्यशालाओं और मुस्लिम मकतबों के अनुसार पढ़ाया जाए या इंग्लैंड के स्कूलों के नमूने पर शिक्षा दी जाए? अधिकारियों का एक दल हिंदुस्तानियों की परंपरागत शिक्षा के पक्ष में था, तो दूसरा अंग्रेजी शिक्षण के पक्ष में। कंपनी के अधिकारी अपने परामर्श में एक राय नहीं थे। उनके विवाद का अंत लार्ड मैकॉले के सुझाव ने किया, जिसे गर्वनर-जनरल लॉर्ड विलियम बैंटिक ने स्वीकार करके अंग्रेजी को भारतीयों की शिक्षा का माध्यम बनाने का आदेश किया।

लार्ड मैकॉले के सुझाव में यह तर्क था कि अंग्रेजी शिक्षा अंग्रेजी साम्राज्य की सुरक्षा और उसे चिरस्थाई बनाने में भी कामगार होगी। उसने गवर्नर जनरल को सन् 1835 में लिखे अपने 'मिनिट्स' में लिखा कि अगर हिंदुस्तानियों को अंग्रेजी में शिक्षित करेंगे तो, "हम एक ऐसे वर्ग का निर्माण करेंगे जो केवल रंग और रक्त में हिंदुस्तानी होगा, लेकिन अपनी पसंद, अपनी सोच, अपनी नैतिकता और बुद्धि में एक अंग्रेज होगा, और जो हमारे और लाखों हिंदुस्तानियों की प्रजा के बीच, जिन पर हम शासन करते हैं, बिचौलिए का काम करेगा।"

मैकॉले का यह सपना सच हुआ। कुछ ही वर्षों में अंग्रेजी स्कूलों ने हजारों-लाखों 'भूरे अंग्रेजों' की फौज तैयार कर दी, जो अंग्रेजों के समान ही भारत और भारतीय संस्कृति सभ्यता, विरासत और उससे संबंधित हर चीज़ को हेय दृष्टि से देखते थे। कालांतर में, 'भूरे अंग्रेज' भारत में अंग्रेजी साम्राज्य के सबसे बड़े हिमायती और स्तंभ सिद्ध हुए। स्वाभाविक रूप से, इन 'भूरे अंग्रेजों' में राष्ट्रीय चेतना का एकदम अभाव था।

बाद में सुभाष चंद्र बोस के दबाव में गांधी जी ने पूर्ण स्वराज को कांग्रेस का लक्ष्य दिसंबर, 1929 में स्वीकार तो किया, किंतु जब देश की आजादी का वक्त आया तो उन्होंने 15 अगस्त 1947 को पूर्ण स्वराज के स्थान पर अंग्रेजी ताज के अंतर्गत आधी आजादी (डोमीनियन स्टेट्स) स्वीकार लिया। पूर्ण स्वराज के लिए कोई आग्रह नहीं किया। अपना अरबों-खरबों का निवेश भारत से निकाल लेने के बाद ही अंग्रेजों ने भारत को 26 जनवरी 1950 को पूर्ण स्वराज दिया।

पूर्ण स्वराज प्राप्ति के उपरांत संविधान सभा ने जब एक स्वर में हिंदी को राजभाषा बनाने का प्रस्ताव पारित किया। तत्कालीन प्रधानमंत्री को यह स्वीकार नहीं था। इस प्रस्ताव के पारित होने के पूर्व उन्होंने घोषित किया कि जब तक संपूर्ण देश के हर राज्य इसे स्वीकार नहीं करेंगे तथा हिंदी भाषा द्वारा कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त नहीं करेंगे तब तक हिंदी को राजभाषा के रूप में पारित करना संभव नहीं है। यह भी निर्णय लिया गया कि हिंदी राजभाषा के रूप में पंद्रह वर्षों के बाद लागू की जाएगी। तब तक अंग्रेजी पहले के समान बनी रहेगी।

इस बीच 1961 में देश के सब मुख्यमंत्रियों ने एकमत से यह प्रस्ताव पारित किया कि देश की सभी भाषाओं के लिए देवनागरी स्वीकार की जाए, जैसे यूरोप की सभी भाषाएँ रोमन लिपि में लिखी जाती हैं। उनका तर्क था कि यह राष्ट्रीय एकता की दिशा में समुचित कदम होगा। किंतु जब यह प्रस्ताव केंद्र सरकार के पास गया तो, उन्होंने इसे ठंडे बस्ते में डाल कर खत्म कर दिया। देश ने राष्ट्रीय एकता का एक बड़ा अवसर खो दिया। इससे पहले मद्रास में सन् 1937 को राष्ट्रपिता गांधी जी ने कहा था "भारत में कई लिपियों का प्रचलन विभिन्न प्रांतों की भाषाएँ समझने के मार्ग में बाधक है। यूरोप के तमाम राष्ट्रों ने एक ही लिपि अपनाई है। तब भारत को भी, जो एक राष्ट्र होने का दावा करता है, एक ही लिपि अपनानी चाहिए। रोमन लिपि का व्यवहार भारत में नहीं हो सकता, देवनागरी लिपि का ही व्यवहार होना चाहिए, क्योंकि अनेक प्रांतीय भाषाओं की लिपि प्रायः एक सी है।"

उसी भाँति 16 जुलाई 1893 को काशी नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना हुई। नागरी प्रचारिणी सभा के प्रयास से 18 अप्रैल 1900 में सर एंटोनी मैकडोनल ने न्यायालयों में देवनागरी के वैकल्पिक प्रयोग का आदेश दे दिया था।[6]

आज देश की स्थिति यह है कि देश की 135 करोड़ जनसंख्या में से यदि 130 करोड़ हिंदी को एकमात्र राजभाषा बनाना चाहें, और अगर चंद राज्य के मात्र 5 करोड़ लोग न बनाना चाहें, तो हिंदी एकमात्र राजभाषा नहीं बन सकती। अंग्रेजी अपने सिंहासन पर पूर्ववत् बनी रहेगी, सदा-सदा के लिए।

आज हिंदी सहित अन्य सभी भाषाएँ जैसे - असमिया, बांग्ला, तमिल, तेलुगु, मलयालम आदि अपने ही देश में निष्काषित, तिरस्कृत हैं, जबकि विदेशी भाषा अंग्रेजी हम भारतीयों के दिलों दिमाग तथा हर कहीं कब्जा जमाए बैठी है। इसके पीछे 'भूरे अंग्रेजों' जिन्होंने आजादी के बाद सत्ता पर कब्जा करके देश को आत्मविश्वासहीन बनाकर भारतीयों के राष्ट्रवाद और राष्ट्रीय चेतना को क्षीण कर दिया। ऐसे में भारतीय राष्ट्रवाद के पतन के साथ भारतीय भाषाओं का पतन एक स्वाभाविक प्रक्रिया है।

आज नई पीढ़ी के मध्यवर्गीय बच्चे, चाहे वह हिंदी प्रदेश के हो या हिंदीतर प्रदेश के। वे अपनी मातृभाषा भूलते जा रहे हैं और मातृभाषा के साथ राष्ट्रीय चेतना को भी। इसके लिए मैं समझता हूँ 70 प्रतिशत जिम्मेदार माता-पिता हैं। वैसे अनेक माता-पिता हैं जो यह कहने में गौरव का अनुभव करते हैं कि मेरे बेटे को ठीक से असमिया बोलना नहीं आता, या मलयालम बोलना नहीं आता, मतलब वह बढ़िया अंग्रेजी बोल लेता है यानी समाज के प्रतिष्ठित श्रेणियों में उसकी गिनती होगी।

सच्चाई तो यह है कि जब तक कोई व्यक्ति अपनी मातृभाषा ठीक से या शुद्धता के साथ बोल नहीं पाएगा तब तक वह दुनिया की किसी भी भाषा को पूरी दक्षता के साथ बोल नहीं पाएगा। मातृभाषा यानी माँ की भाषा। मातृभाषा का अनादर माँ के अनादर के समान है और वह कभी देशभक्त कहलाने लायक नहीं है।

मैं एक असमिया भाषी हूँ पिछले 10 साल से तमिलनाडु के चेन्नई शहर में नौकरी के चलते रह रहा हूँ। मेरा छोटा बेटा तो चार साल की उम्र से ही यहाँ पढ़ रहा है। भले ही असमिया विषय पढ़ने का मौका नहीं मिला हो, पर हम घर में अपनी भाषा से ही सारा कामकाज संपन्न करते हैं। घर के बाहर जाते ही हमारी भाषाएँ अपने आप परिवर्तित हो जाती हैं। किंतु किसी भी हालत में हम अपने भाषाई अस्तित्व को एक पल के लिए भी नहीं भुलाते या भुलाना चाहते हैं। यह तो हमारी भाषाई जड़ है।

मेरे एक मित्र असमिया के चर्चित लेखक हैं। एक दिन वह बातों-बातों में कहने लगे कि उनका बेटा असमिया बोल तो लेता है, लेकिन लिखना-पढ़ना नहीं जानता। असमिया साहित्य में उनकी कोई रुचि नहीं है। उन्होंने और यह भी कहा कि नई पीढ़ी के संभ्रांत परिवार के खूब पढ़े-लिखे लड़के-लड़कियाँ असमिया न पढ़ना जानते हैं और न पढ़ना चाहते हैं। असमिया साहित्य इतना श्रेष्ठ एवं समृद्ध है कि विश्व के किसी भी भाषा के साहित्य से कम नहीं है। दर्दभरे लहज़े से वे बोले- भविष्य में कौन पढ़ेगा यह साहित्य? क्या यह ऐसे ही नष्ट हो जाएगा? बहुत सी ऐसी जनजातियाँ हैं, जिनकी केवल बोलने की भाषा है, लिखी नहीं जा सकती, क्योंकि उनसे पास लिपि नहीं है। क्या असमिया भी कभी इसी तरह बोलने की भाषा बनकर रह जाएगी?

यह दर्द सिर्फ असमिया का ही नहीं है, यह दर्द भारत की सभी राष्ट्रीय भाषाओं का है, लगता है हमारी इस दशा पर मैकॉले कब्र से ही मुस्कुरा रहा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अथर्ववेद - 19/41/1

2. ऋग्वेद

3. यजुर्वेद

4. पद्मश्री मुजफ्फर हुसैन - साहित्य में राष्ट्रीयता का उद्भव - मधुमती पृ. सं. 11

5. डॉ. दया तकारा सिन्हा - राष्ट्रवाद और भाषा - मधुमती - पृ. सं. 19

6. लखन लाल गुप्त - भाषाई एवं राष्ट्रीय एकता का संबल नागरी - नागरी लिपि परिषद् - पृ. सं. 10

- उच्च शिक्षा और शोध संस्थान, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, चेन्नई-17

❑❑❑

कविवर महेंद्र सिंह बेदी के साहित्य में पंजाबी संवेदना के आयाम

हरिराम

पंजाब भारत का अखंड व गौरवशाली इतिहास का प्रदाता है। चाहे साहित्य हो, चाहे संस्कृति हो, चाहे सामाजिक-सांस्कृतिक सुरक्षा हो या चाहे देश की रक्षा-सुरक्षा हो हर एक मानवता की मिसाल पंजाब ने युगों-युगों से भारतवर्ष को प्रदान की है। साहित्य की दृष्टि से पंजाब हिंदीतर भाषी क्षेत्र होते हुए भी पंजाब ने समृद्ध व कालजयी साहित्य भारतवर्ष को प्रदान किया है। प्राचीन काल से इस धरती पर तक्षशिला विश्वविद्यालय में अनेक विदेशी छात्र शिक्षा ग्रहण करने आते थे और यहाँ से हजारों छात्र अपने देश में यहाँ की शिक्षा नीति, संस्कृति व यहाँ के संस्कार लेकर जाते थे। हमारा साहित्य का इतिहास इसका साक्षी है। पंजाबी भाषा की लिपि गुरुमुखी है। इसी कारण अधिकांश साहित्य प्रचलित इतिहास ग्रंथों की सूची में स्थान प्राप्त नहीं कर पाया। अतः पंजाब की गुरुमुखी लिपि में लिखे हुए ढेरों ग्रंथ हिंदी साहित्य के इतिहास में स्थान प्राप्त करने से वंचित हो गए। आधुनिक पंजाब के हिंदी साहित्य की विवेचना की जाए तो पंजाब में भक्ति, सौंदर्य, वीर सामाजिकता व संस्कृति इत्यादि के कोने-कोने में जाकर पंजाबी कवियों ने साहित्य का सृजन किया। आधुनिक कवियों में अनेक मूर्धन्य सामाजिक चेतना के श्रेष्ठ कवि भी पंजाब ने दिए हैं। जिन्होंने मानवीय भावभूमि के सशक्त साहित्य प्रदान किए हैं जो किसी नाम के मोहताज नहीं हैं, इन्हीं शीर्ष कवियों में हैं 'पंजाबी शख्सियत के हिंदी पुरोधा : हरमहेंद्र सिंह बेदी' बेदी जी सामाजिक उत्तरदायित्व को और समाज के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को ही काव्य में उकेरते हुए आमजन को चेतना प्रदान करते हैं। अतः कवि बेदी का समग्र काव्य साहित्य एक लघु मानव को उसकी मानवीयता का बोध करवाता है।

सर्वविदित है कि पंजाब की वीरभूमि ने वैदिक युग से लेकर निरंतर भारतवर्ष के उत्कर्ष और उत्थान में साहित्य समर्पित किया है। व्यास नदी के तट पर वेदों की रचना इसका साक्षात् प्रमाण है। इसके अतिरिक्त गुरु नानक देव जी द्वारा प्रदत्त सामाजिक व धर्म एवं संस्कृति के रक्षार्थ उनकी वाणी कालजयी है। श्रीआदि गुरु ग्रंथ साहिब इसका साक्षात् प्रमाण है। जिसमें लगभग सभी सिख गुरुओं की रचनाएँ समन्वय का संदेश दे रही हैं और वर्तमान अखंड भारत को गौरवशाली इतिहास की दृष्टि से भी समृद्धवान बनाने वाले गुरु अर्जुन देव से गुरु गोविंद सिंह तक भारतीय धर्म की रक्षा-सुरक्षा व सामाजिक स्थितियों में सुधार लाने वालो में अमिट हस्ताक्षर हैं। इसके अतिरिक्त पंजाब सूफी काव्य की भी उद्गम स्थली रही है। पंजाब की ओर से पश्चिमांत हमलावरों से भारतवर्ष की रक्षा आक्रांताओं से सामना करने का साहस व प्रेरणा गुरु दरबारी वीर कवियों ने प्रदान की है। इसी संदर्भ में इंद्रनाथ मदान, डॉ. जयभगवान गोयल व डॉ. हर महेंद्र सिंह बेदी ने विशेष शोध कर उक्त ग्रंथों को प्रकाश में लाकर यह स्पष्ट किया कि पंजाब में गुरुमुखी लिपि में लिखित हिंदी साहित्य भारतवर्ष के हिंदी साहित्य इतिहास की समृद्ध व अमूल्य निधि हैं। डॉ. जय भगवान गोयल के अनुसार "आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने जब हिंदी साहित्य का इतिहास लिखा तो उस समय तक के सभी इतिहास ग्रंथों में वह पूर्ण समझा गया लेकिन जब अपभ्रंश और प्राकृत

भाषा ISSN 0523-1418

की रचनाएँ प्रकाश में आने लगीं तो उसकी अपूर्णता भी प्रकट होने लगी। विशेष रूप से वीरगाथा काल के संबंध में उनकी मान्यताएँ अपूर्ण सिद्ध हुईं। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी तथा अन्य विद्वानों ने उस कमी को पूरा करने की चेष्टा की। लेकिन उसमें और अब तक के हिंदी के रूप में सभी इतिहास में एक अपूर्णता बनी हुई है और यह अपूर्णता गुरुमुखी में उपलब्ध हिंदी साहित्य को लेकर है।" इससे स्पष्ट है कि हिंदीतर भाषी पंजाब का समृद्ध साहित्य होते हुए भी लिपि भेद के कारण हिंदी साहित्य इतिहास ग्रंथों में उचित स्थान प्राप्त नहीं कर सका।

आधुनिक युग और पंजाब का हिंदी साहित्य- आधुनिक युग में पंजाब में हिंदी को अनेक विमर्शों पर साहित्य प्रदान किया है। आधुनिक युग में गद्य की विशाल परंपरा का निर्वाह पंजाब ने किया। अतः पत्र पत्रिकाएँ, वाणी-व्याख्या, रामचरित टीकाएँ, पत्रिका एवं दरबारी साहित्य व गुरुमुखी साहित्य का हिंदी अनुवाद इत्यादि मुद्रित सामग्री पंजाब ने आधुनिक युग की हिंदी को प्रदान की है। हिंदीतर क्षेत्र पंजाब के आधुनिक श्रेष्ठ गद्यकार श्रद्धाराम फिल्लौरी जो उच्च कोटि के कथावाचक व व्याख्याता थे। उनकी लोकप्रियता की ख्याति का अनुमान हम ओम जय जगदीश हरे..... आरती से लगा सकते हैं। परंतु श्रद्धाराम फिल्लौरी का साहित्य प्रारंभिक युगीन काव्यों की विपुलता के आगे लुप्त हो गया। जबकि श्रद्धाराम फिल्लौरी जी का समग्र साहित्य जनता की भाषा अर्थात् बोलचाल की भाषा में ही रचा गया था। श्रद्धाराम फिल्लौरी के संबंध में कवि डॉ. हरमहेंद्र सिंह बेदी कहते हैं- "उन्होंने यह सभी काव्य संग्रह या भजन जनता की बोलचाल की भाषा में लिखे। उनके काव्य लिखने का एकमात्र उद्देश्य जनसाधारण में नैतिक मूल्यों का प्रचार-प्रसार करना था। उनके काव्य का मुख्य विषय सेवा, त्याग, अहिंसा तथा जीवन आदर्श मूल्यों से जुड़ा था।..... हिंदी काव्य को पंजाब की यह देन पंडित जी के माध्यम से रेखांकित हो रही थी। पंजाब के आधुनिक हिंदी साहित्येतिहास में पंडित श्रद्धाराम फिल्लौरी इस दृष्टि से प्रथम कवि ठहरते हैं।"

आधुनिक हिंदी साहित्य और पंजाब के कवि - आधुनिक हिंदी साहित्य को पंजाब ने अनेक समृद्ध कवि प्रदान किए हैं। जिनमें देवराज दिनेश (अंतर्गीत, भारत माँ की लोरी), सुरेश वात्सयायन (अंकुर, प्रवाल), द्वारिका प्रसाद उत्सुक (सूरज और सन्नाटा), तरसेम गुजराल (फिर जागृति), डॉ. हरमहेंद्र सिंह बेदी (गर्म लोहा, पहचान की यात्रा), मोहन सपरा (आदमी जिंदा है), डॉ. ओम अवस्थी (उस पार-कहानी संग्रह), उपेंद्रनाथ अश्क (बरगद की बेटी, अदृश्य नदी), नरेंद्र मोहन (इस हादसे से, दृश्य बदलते हुए- पंजाब में), खुशीराम वशिष्ठ (आर-पार, गुरु गोविंद सिंह जी), पांडेय शशि भूषण 'शीतांशु' (शहर अमृतसर), बलदेव वंशी, विनोद साहू, कीर्ति केसर इत्यादि अनेक कवि पंजाब ने आधुनिक हिंदी साहित्य को प्रदान किए हैं। इनमें वर्तमान हिंदी के कवि दैनिक समाचार पत्र-पत्रिकाएँ, साहित्य-पत्रिकाएँ इत्यादि में अपना योगदान दे रहे हैं। जिन सभी का नामोल्लेख करना संभव नहीं था, इसलिए आंशिक नामावली उक्त दी है।

पंजाबी शख्सियत के हिंदी पुरोधा : डॉ. हरमहेंद्र सिंह बेदी की काव्य यात्रा- कवि हरमहेंद्र सिंह बेदी को साहित्य और अध्ययन-अध्यापन के प्रति गहरा अनुराग है। काव्य संगोष्ठी हो, साहित्य संवाद हो या अन्य विचार-विमर्श हो वह सभी में रुचि लेते हैं। वे स्वयं कहते हैं- "मन कहता है कि मैं खूब-खूब पढ़ता रहूँ।" कवि बेदी का संप्रेषण कौशल सादगीपूर्ण व सरलतापूर्ण काव्य शैली सामाजिक व सांस्कृतिक चेतना का सोपान है। अतः कवि अनुशासनबद्ध रूप में सामाजिक उत्तरदायित्व का बोध अपनी कविता में पाठकों को करवाता है। हिंदी विद्वान व साहित्यकार कुलपति प्रोफेसर राम सजन पांडेय के अनुसार- "कवि बेदी अनुशासनबद्ध रचनाकार हैं, अनुशासन में रहना उन्हें बड़ा प्रिय लगता है। उनके यहाँ साहित्यकारों वाली मौज मस्ती नहीं है। उनकी मान्यता है कि सामाजिक उत्तरदायित्व के प्रति प्रतिबद्धता रचनाकार का प्रथम दायित्व है। वह जितने श्रेष्ठ रचनाकार हैं, उतने ही नेक इंसान भी हैं। उदारता, सहिष्णुता, परोपकार व संवेदनशीलता इत्यादि उनके व्यक्तित्व में रची बसी है।" अतः बेदी जी अपने काव्य में सामाजिक उत्तरदायित्व को और समाज के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को ही काव्य में उकेरते हुए आमजन को चेतना देते हैं। वे 'पहचान की यात्रा' काव्य ग्रंथ में एक कविता में लिखते हैं, जो सामाजिक यथार्थ की अनुभूति करवाती है।

अब मैं कहाँ जाऊँ/ उपदेशों में कोई नहीं/

शब्द शक्ति कहाँ खो गई/ मेरी पुकार व्यर्थ है।।

दूसरी ओर वे 'अकेले की पीड़ा' कविता में आम आदमी से सरोकार होते हुए उन्हें सामाजिक रहन-सहन का बोध कराते हैं।

अकेले में ही सीखा/ उपदेश भी/ चलना रुकना मंजिल से पूर्व/

अब फिर समूह जन चले/ अपने तक/ मंजिल के पार।।

अर्थात् कवि एकाकीपन से दूर सामाजिकता व संयुक्तता में ही जीवन को सार्थक मानता है 'पहचान की यात्रा बनाम रचना की मानसिकता' निबंध में साहित्यकार निर्मल कुमार कौशिक लिखते हैं- "कवि को समाज के दोनों छोरों की पहचान है। यथास्थिति को कविता के माध्यम से भी कह देना बहुत खतरनाक होता है। इसमें भाषा की सार्थकता जाती है। सामाजिक यथार्थ के सभी पक्ष सिलसिले से प्रस्तुत नहीं हो पाते, क्योंकि रचना का आधार कवि की सृजन शक्ति होती है। यह सृजन शक्ति तभी सक्रिय होती है, जब सामाजिक अनुभव पकने लगता है और फिर कविता केवल वैशाखी नहीं रहती बल्कि अभिव्यक्ति बन जाती है।"

भेड़िया जब भी शहर में आता है/ शहर जंगली हो जाता है या फिर/

देश केवल भूगोल नहीं होता/ आदमी का आदमी से संवाद होता है।।

अत: कवि ने शब्दों की व्यंजना करते हुए शहर से आदमी, आदमी से जंगल की ओर आकर्षित करते हुए चुनावी अभियुक्ति को दर्शाया है। यहाँ कवि केवल चुनाव तक सीमित न रहकर आदमी से आदमी को जोड़ने व सामाजिकता की उपादेयता में पाठक को बिठा देने की योग्यता रखता है। अत: साहित्यकार निर्मल कुमार कौशिक इसी प्रसंग में आगे लिखते हैं- "पंजाब की समकालीन कविता में कुमार विमल के बाद जो तीन चार नाम रेखांकित हुए है, उनमें हरमहेंद्र सिंह बेदी का नाम लिया जा सकता है। पंजाब की समकालीन कविता का चेहरा इसलिए भी उजला दिखाई देता है, क्योंकि पंजाबी कविता की समृद्ध विरासत को बेदी सरीखे कवियों ने सहज ही अपनाया हैं।" 'पंजाब की समकालीन हिंदी कविता के चर्चित कवि : हरमहेंद्र सिंह बेदी' में कवि व साहित्यकार हुकुमचंद राजपाल लिखते हैं- "हमारा मानना है कि बेदी की रचना धर्मिता आत्म (स्व) पहचान की प्रक्रिया से गुजरते हुए मानव मन की भीतरी गहराइयों का संस्पर्श करती प्रतीत होती है। आज का आम आदमी मानसिक तनावों से घिरा इस व्यवस्था में पिस रहा है। इस स्थिति में वह संबंधों की आत्मीयता व पावनता का अर्थ भी विस्मृत कर चुका है।" बेदी जी 'पहचान की यात्रा' कविता में इस मन:स्थिति का सरोकार करवाते हैं।

खाली जिस्मों को/ शहर के चौराहों पर/ भटकते हैं/

कोई भी दस्तक तक नहीं देता/ मेरे घर पर किसका पहरा है/

टूटकर भी नहीं टूटता/ एहसासों का रिश्ता कैसा रिश्ता है (एहसासों का रिश्ता)

'फिर से फिर' काव्य संग्रह के संबंध में साहित्यकार डॉ. धर्मपाल साहिल कहते हैं- "इन कविताओं में आत्म प्रवंचना है, तनाव है, टीस है, तन्हाई इत्यादि व्यंजना है। कवि ने कविता की नई ज़मीन तलाश कर नए प्रयोग किए हैं।..... सरल भाषा विचारों की उधड़ती पर्त दर पर्त, मानवीय सरोकारों के साथ प्रतिबद्धता संग्रह को पठनीय बनाती है।..... पाठक को सोचने के लिए मजबूर कर देना कवि बेदी की कविताओं का सकारात्मक पक्ष है। कविता की जीवंतता है तथा एक उपलब्धि है।" 'धुंध में डूबा शहर' कविता में कवि अविराम संघर्ष की चेतना देते हुए सद्भाव व धैर्य रखने की बात करते हैं।

धैर्य रखो/ बीते दिन लौटेंगे/ घबराने की बात नहीं/

पीले पत्ते झड़ जाएँगे/ सतरंगा मौसम/ देख रहा है।

निष्कर्ष में स्पष्ट है कि हिंदीतर भाषी क्षेत्र पंजाब के पंजाबी शख्सियत एवं हिंदी के पुरोधा व उदीयमान कवि डॉ. हरमहेंद्र सिंह बेदी का साहित्य सर्जन का मूल उद्देश्य बदलते परिवेश के साथ बदलती आम जन मानसिकता व सामाजिक व सांस्कृतिक उथल-पुथल को व्यवस्थित कर समाज में सद्व्यवहार एवं मनुष्यता की स्थापना करना है। कवि एक आम आदमी से जुड़कर उसे अपनी कविता का नायक बनाते हुए, उसी आदमी

को उसकी पहचान दिलाते हुए उसे सामाजिक परिवेश की प्रतिबद्धता दर्शाते हैं। पंजाब के हिंदी साहित्यकार बलवेंद्र सिंह के अनुसार "काव्य सृजन के लिहाज से कवि बेदी के यहाँ 'गर्म लोहा', 'पहचान की यात्रा', 'किसी और दिन' प्रमाण रूप में मौजूद हैं।"

इन सभी में सरोकार से संबद्ध, जीवन की समग्रता में तलाशने वाली कविताओं को ही स्थान दिया गया है। अत: कवि बेदी का समग्र काव्य साहित्य एक लघु मानव को उसकी मानवीयता का बोध करवाता है। वे प्रत्येक काव्य में लघु मानव की प्रतिष्ठा, उसकी सामाजिक स्थापना एवं बदलते परिवेश एवं उसके बदलाव को दर्शाते हुए सामाजिकता से सरोकार करवाते हैं और लघु मानव के पथ में आने वाले विरोधी तत्वों से टकराते हुए उन्हें ललकारते हुए कहते हैं-

मेरा आकाश छोटा मत करो/ मेरी करोड़ों नक्षत्रों से दोस्ती है/

अनेक रंग बहुत सी भाषाएँ/ मेरे इतिहास को महान बनाती है।

अत: कवि अलगाव के विरुद्ध जूझते हुए समाज में राष्ट्रीयता, प्रेम, सद्भावना, अहिंसा की स्थापना करना चाहता है। जिसमें वह सफल भी हुआ है। कवि हेतराम 'हिंदी जुड़वाँ' के अनुसार- "हम उनके आंशिक अध्ययनार्थी रहे हैं, हमें पुत्रवत्, सम्मान, प्यार देना, गले लगाना और सदैव भाषा साहित्य पर समय-समय पर सुझाव देना, हिंदी पथ पर नए आयाम-नए विचार प्रदान करना और हमारे साहित्य अध्ययन में आने वाले अवरोधक को हटाकर नई दिशा देना यह एक सच्चा हिंदी प्रेमी ही कर सकता है। वास्तव में उनकी गुरुमत विचारधारा, उनका सद्व्यवहार व घनिष्ठ हिंदी प्रेम उनको सादगीपूर्ण व्यक्तित्व का धनी बनाता है तथा उनकी आत्मीयता व धैर्य को प्रकट करता है।" अत: सैकड़ों साहित्य छात्रों का हृदयंगम होना, उनका प्रिय होना, समय-समय पर उन सभी का मार्गदर्शन करना एक सच्चे हिंदी प्रेमी का उदाहरण है। बेदी केवल कलम के प्रेमी नहीं हैं, बल्कि वे आत्मीयता के भी सच्चे प्रेमी हैं। पद-प्रतिष्ठा से कोसों दूर सभी से आत्मीयता से मिलते हैं, मार्ग प्रदर्शित करते हैं और यही यथार्थ उनके काव्य में झलकता है। बेदी जी कलम, वाणी और कर्म तीनों गुणों में एक सच्चे यथार्थवादी सामाजिक कवि व शिक्षक हैं। उनका समग्र साहित्य हिंदी की अमूल्य धरोहर है। जो सामाजिक व सांस्कृतिक चेतना का वाहक है। वे स्वयं अपने आत्मीय परिचय 'अपने आईने में' आत्मपरक निबंध में कहते हैं- "मेहनती ईमानदार लोग मेरे भीतर के सच को प्रभावित करते हैं और मैं ऐसे परिवेश में जी कर अपनी नजर को साफ रखता हूँ तथा नजर आने वाली वस्तुओं के बारे में अच्छे विचार बनाकर साहित्य और कला की दुनिया में नए सृजन की ओर अग्रसर होता हूँ, बस यही है मेरा अक्स, मेरा आईना और मेरा परिचय।" अत: इसी में निहित है कवि बेदी जी का यथार्थ जीवन, उनका यथार्थ प्रेम और उनकी यथार्थ मानवीयता और उनका यथार्थ साहित्य धर्म-कर्म।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. आईने में- डॉ. हरमहेंद्र सिंह बेदी-कवि व साहित्यकार हरमहेंद्र सिंह बेदी, अभिनंदन ग्रंथ (पारसमणि पत्रिका, त्रिवेणी साहित्य अकादमी, जालंधर, पंजाब, अंक मई-जुलाई, 2017)

2. बदरंग समय में कविता- डॉ. बलविंद्र सिंह- कवि व साहित्यकार हरमहेंद्र सिंह बेदी, अभिनंदन ग्रंथ (पारसमणि पत्रिका, त्रिवेणी साहित्य अकादमी, जालंधर, पंजाब, अंक मई-जुलाई, 2017)

3. पंजाब की समकालीन हिंदी कविता के चर्चित कवि - डॉ. हरमहेंद्र सिंह बेदी - हुकुमचंद राजपाल - कवि व साहित्यकार हरमहेंद्र सिंह बेदी, अभिनंदन ग्रंथ (पारसमणि पत्रिका, त्रिवेणी साहित्य अकादमी, जालंधर, पंजाब, अंक मई-जुलाई, 2017)

4. पहचान की यात्रा बनाम रचना की मानसिकता- निर्मल कुमार कौशिक - कवि व साहित्यकार हरमहेंद्र सिंह बेदी, अभिनंदन ग्रंथ (पारसमणि पत्रिका, त्रिवेणी साहित्य अकादमी, जालंधर, पंजाब, अंक मई-जुलाई, 2017)

5. डॉ. हरमहेंद्र सिंह बेदी व्यक्तित्व : विभास - साहित्यकार राम सजन पांडे - कवि व साहित्यकार हरमहेंद्र सिंह बेदी अभिनंदन ग्रंथ (पारसमणि पत्रिका त्रिवेणी साहित्य अकादमी जालंधर, पंजाब, अंक मई-जुलाई, 2017)

6. पंजाब के हिंदी साहित्य का इतिहास - डॉ. हर महेंद्र सिंह बेदी/ डॉ. कुलविंदर कौर, निर्मल पब्लिकेशन, दिल्ली

7. एकांत में शब्द- डॉ. हरमहेंद्र सिंह बेदी - आस्था प्रकाशन, जालंधर

8. गर्म लोहा- डॉ. हरमहेंद्र सिंह बेदी, रचनावली भाग 1, संपादक प्रोफेसर राम सजन पांडे, निर्मल पब्लिकेशन, दिल्ली

9. फिर से फिर - डॉ. हरमहेंद्र सिंह बेदी, रचनावली भाग 1, संपादक प्रोफेसर राम सजन पांडे, निर्मल पब्लिकेशन, दिल्ली

10. पहचान की यात्रा - डॉ. हरमहेंद्र सिंह बेदी, रचनावली भाग 2, संपादक प्रोफेसर राम सजन पांडे, निर्मल पब्लिकेशन, दिल्ली

11. आत्मीयता व सहजता के कवि - हेतराम (शोधार्थी व हिंदी शिक्षक), राजकीय मॉडल उच्च माध्यमिक विद्यालय, केंद्र शासित प्रदेश चंडीगढ़

12. कवि हरमहेंद्र सिंह बेदी के काव्यों में मानवीय अनुभूति का संसार - हरिराम (शोधार्थी)

– शोधार्थी ओपीजेएस विश्वविद्यालय चूरु राजस्थान, राजकीय सर्वोदय बाल विद्यालय पूठकलां, दिल्ली-110086

❑❑❑

हिंदी भाषा का आरंभिक संघर्ष

डॉ. बीरेंद्र सिंह

भारतेंदुयुग ने हिंदी भाषा के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। तत्कालीन समय में सरकार और कानून की भाषा या तो अंग्रेजी थी या फिर फारसी के बोझ से लदी उर्दू। इन दोनों ही भाषाओं का साधारण जन से कोई संबंध नहीं जुड़ता था। भारतेंदुयुगीन मनीषियों ने राष्ट्रीय विकास में आने वाली इस भाषाई अड़चन को भलीभाँति महसूस करते हुए हिंदी के विकास का बीड़ा उठाया। पत्र-पत्रिकाओं ने समुचित भाषाई एवं जनहित को ध्यान में रखकर आमजन की भाषा को उसका प्राप्य दिलाने की लड़ाई छेड़ दी।

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने हिंदी के महत्व को अस्वीकारने वालों को लक्ष्य पर 'कविवचन सुधा', 'हिंदी भाषा' शीर्षक में लिखा, "प्रायः लोग कहते हैं कि हिंदी कोई भाषा ही नहीं है। हमको इस बात को सुनकर बड़ा अफसोस होता है यदि कोई अंग्रेज ऐसा कहता तो हम जानते कि वह अज्ञानी है इस देश का समाचार भलीभाँति नहीं जानता। पर अपने स्वेदेशियों को हम क्या कहें। हम नहीं जानते कि उनकी ऐसी हतबुद्धि क्यों हो गई कि वे अपनी प्राचीन भाषा का तिरस्कार करते हैं।"[1] भारतेंदु हिंदी भाषा के महत्व से भलीभाँति परिचित थे और साथ ही हिंदी की तत्कालीन दुरावस्था से प्रचंड व्यथित भी। उन्होंने नवजागरण को हिंदी भाषा की उन्नति से एकमेक करके देखा था। "निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल" के सिद्धांतानुसार भारतेंदु ने स्वदेशी भाषा की समृद्धि को विशेष महत्व दिया। उन्होंने अपनी पत्रिकाओं के माध्यम से हिंदी भाषा के समुचित विकास का बीड़ा उठाया।

कानून की प्रचलित भाषा तत्कालीन साधारण जनता के लिए बड़ी मुसीबत थी। अंग्रेजी सत्ता के कानून के दाँव-पेंच तो यूँ काफी जटिल थे उसपर फारसी भाषा में होने के कारण आम जनता की समझ से बिल्कुल परे थे। वास्तव में भाषा की कठिनता ने साधारण जन में कानून का ऐसा भय बना रखा था कि लोग कानून-कचहरी से मीलों दूर रहने में ही गनीमत समझते थे। भारतेंदु ने जनमानस की इस उलझन को समझा था फलतः तत्कालीन कानून के हिंदी-अनुवाद पर विचार करते हुए 20 जुलाई, सन् 1872 की 'कविवचन सुधा' में इस सबब का एक 'इश्तिहार' कुछ यों प्रकाशित हुआ, "प्रगट है कि सरकारी कानूनों से परिचय होना सब को अवश्य ओ हितकारी हो पर इसके साथ यह भी सिद्ध ओ माननीय है कि जब तक वे कानून हमारी भाषा में उलथा ओ हमारे देवनागरी अक्षरों में न लिखे जाएँगे उनसे सब को ज्ञान होना संभव नहीं है इसलिए विचार है कि आदि से लेकर गत साल सन् 1876 ई. के अनंतर के जितने कानून उन देशों से किसी भाँति संबंध रखते हैं जहाँ एक भाषा बोली और अक्षर बरते जाते हैं हमारी भाषा ओ अक्षरों में उलथा हो जाए।"[2]

तत्कालीन समय में हिंदी की दशा काफी शोचनीय थी। 'हिंदी प्रदीप' ने अपने एक वर्ष के प्रकाशन के अनुभव पर हिंदी की स्थिति को अपने पाठकों के साथ साझा करते हुए लिखा, "इस थोड़े से समय एक वर्ष में मुझे यह तो स्पष्ट रूप से प्रगट हो गया कि यह हिंदी भाषा अभी ऐसी हीन, दीन और बे-कदर है, वैसी कोई दूसरी भाषा न होगी। जिस हिंदी का देश में प्रमोद-निद्रा-मग्न

धनिकों के यहाँ कुछ आदर नहीं है, दाहिने बाएँ खड़े होने का स्थान जिसे नहीं है, सामने से-पत्नी समान एक कुलटा-यवनी गाज रही है।--- मातृभाषा न जानना ही पांडित्य है।"[3] जनता की भाषा हिंदी के बरक्स शासन भाषा फारसी-अंग्रेजी के प्रभुत्व ने बालकृष्ण भट्ट जैसे भाषाई चिंतकों को कहीं गहरी सोच में डाल रखा था। चरम निराशाजनक परिस्थितियों के गहरे अंधकार में भट्ट जी ने 'हिंदी प्रदीप' को सचमुच हिंदी का एक देदीप्यमान दीपक बनाकर पेश किया और एक लंबे समय तक बिना थके, बिना रुके हिंदी भाषा की असंभव सेवा की।

भारतेंदुयुगीन विद्वानों और सुधीजनों ने समाज की उन्नति के लिए हिंदी के समाचार पत्रों की आवश्यकता पर विशेष जोर दिया। उस समय जो अंग्रेजी समाचार पत्र वगैरह निकलते थे उनसे साधारण लोगो को कोई विशेष लाभ नहीं हो सकता था, इसी आशय से 'हिंदी प्रदीप' के मई, 1885 के अंक में 'प्रयाग में हिंदी पत्र की आवश्यकता' शीर्षक से छपा, "अंग्रेजी पत्र से देश का उपकार नहीं हो सकता, क्योकि यह उन्हींके प्रयोजन का है जो अंग्रेजी पढ़े हैं पर अब ठौर-ठौर से छोटे-मोटे देशी भाषा के साप्ताहिक पत्र निकलते देख कर लोकल सेल्फ सरकार की घर-घर चर्चा और भाँति-भाँति के उत्तेजक व्याख्यान (लेक्चर्स) सुन तथा अनेक प्रकार के कितने देश हितैषी आंदोलनों में लोगों की प्रवृत्ति देख क्यों न तबियत फ़ड़के कि यहाँ से भी एक हिंदी का साप्ताहिक पत्र निकलता, जिसमें देशी तथा राजकीय विषय की पूरी-पूरी समालोचना रहती तो कैसा अच्छा होता और छोटी-छोटी बातों के लिए भी पायोनियर का जो मुँह ताकना पड़ता है, सो न करना पड़े और संकीर्ण हृदय गौरांगों का प्रधान अस्त्र होने के कारण पायोनियर हम सब देशी लोगों से घिनाता है और न कभी हमारे सुख-दुख से हर्ष या विषाद से उससे कुछ सरोकार है। फिर वह अंग्रेजी भाषा में है, इसलिए सर्वसाधारण को उससे कुछ लाभ नहीं पहुँच सकता।"[4] अंग्रेजी भाषा के पत्र भारतीयों के प्रति कैसी भावना रखते थे साथ ही वह किन लोगों के लिए निकला करते थे- दोनों ही बातें यहाँ स्पष्ट हैं। भारतीयों का हित साधन तो उनकी अपनी भाषा के पत्र ही कर सकते थे। भारतेंदुयुगीन लेखक-पत्रकारों ने समय की इस जरूरत को भली-भाँति समझा और हिंदी में पत्र-पत्रिकाओं की एक तरह से बाढ़ ही आ गई।

हिंदी पत्रकारिता ने फारसी बोझिल उर्दू और अंग्रेजी की कमियों की ओर इशारा करते हुए अपनी भाषा के खड़ी बोली के संघर्ष पर भी ध्यान दिया। पद्य के समुचित विकास के आगे हिंदी के गद्य विकास की आवश्यकता पर विचार करते हुए हरदेव प्रसाद ने 'हिंदी प्रदीप' के अक्तूबर-नबंबर-दिसंबर, सन् 1889 के अंक में लिखा, "गद्य के द्वारा हिंदी का भंडार बढ़ाइए जिसके लिए हिंदी अत्यंत लालायित हो रही है, अच्छे-अच्छे उपन्यास रचिए, जीवन चरित्र लिखिए, विज्ञान संबंधी ग्रंथों का उलथा कर डालिए, हाँ यदि हिंदी कविता का संपूर्ण लालित्य और मिठास छार में मिलाय रूखी उर्दू का बच्चा इसे बनाना चाहते हो तो खड़ी और पड़ी भाषा के बारे में खूब लड़िए-झगड़िए फलसिद्धि कुछ न होगी।"[5]

दरअसल भारतेंदुयुगीन पत्रकारिता की मूल चिंता अपने जातीय भाई-बंधुओं को अज्ञान के गहन अंधकार से निकालने की थी और इसी हेतु जातीय भाषा के पन्नों के प्रकाशन पर इतना जोर था। कोलकाता से प्रकाशित 'भारतमित्र' ने अपने पहले अंक में लिखा, "बड़े आश्चर्य की बात यह है कि आज तक कोई ऐसा समाचार पत्र नहीं प्रकाशित हुआ जिसमें हियां के हिंदुस्तानी लोग भी पृथ्वी के दूसरे लोगों की तरह अपने अक्षर अपने बोली में पृथ्वी की समस्त घटना जान सकें। क्या यह बड़े पछतावे की बात नहीं है जब कि 19वीं सदी में बंगाली तथा अन्यान्य जाति के आदमी अपनी-अपनी बोली में केवल एक समाचार पत्र की उन्नति से विद्या में ज्ञान में दिन-दिन उन्नत हुए जाते हैं और हमारे हिंदुस्तानी भाई केवल अज्ञान की खटिया पर पैर फैलाए हुए पड़े हैं और ऐसा कोई नहीं जो इनको उस खटिया पर से उठाकर ज्ञान की किरण उनके अंत:करण में प्रकाशित करे।"[6] तत्कालीन हिंदी पत्रकारिता के विकास का मूल उद्देश्य समाज की उन्नति का यह भाव ही था।

'सारसुधानिधि' संपादक सदानंद मिश्र ने भी हिंदी की उन्नति में ही जातीय उन्नति की बात करते हुए

लिखा, "हम लोगों को मुनासिब है कि जिसमें देश की उन्नति हो और निष्कपट और निर्दोष सभ्यता की वृद्धि हो, ऐसे उद्यम उपाय और यत्न करें। इसलिए जब हम सोचते है तो प्रथम दृष्टि हमारी भाषा पर पड़ती है, क्योंकि जब तक निष्कपट विशुद्ध भाषा की उन्नति नहीं होगी तब तक निष्कपट सभ्यता और देश की उन्नति भी नहीं होगी, इससे उचित है कि पहले भारतवर्ष की प्रधान और प्रसिद्ध चाँद वे गहन हिंदी की उन्नति करें।"[7] इसी पावन भावना के साथ मिश्र जी ने अपने पत्र में हिंदी का उन्नति से संबंधित कई लेख प्रकाशित किए। 'हिंदी का सौभाग्य' शीर्षक लेख में उन्होंने ब्रिटिश सरकार के समक्ष शासन और अदालतों में हिंदी प्रचलन की अपील की और उसके समर्थन में तर्क रखते हुए लिखा, "जब तक देश की मातृभाषा उन्नत नहीं होती है तब तक देश भी उन्नत भावधारण नहीं कर सकता है। ---हमारी भारत सरकार को चाहिए की भारतवर्ष की बहु दूर देशव्यापी हिंदी भाषा को अपने राजकाज में स्थान दें। हिंदी भाषा और देवनागरी अक्षरों का चलन सरकार के हर विभागों में होना उचित है। इसके प्रचलित होने से प्रथम तो लोगों को इतनी सुविधा हो जाएगी कि दूसरी भाषा के सीखने में इस देश वालों को जो कठिनता होती है वह न होगी।"[8] इस प्रकार हम देख सकते हैं कि तत्कालीन पत्रकारिता ने जातीय भाषा की प्रगति के लिए हर संभव प्रयास किया था। हिंदी भाषा की उन्नति ही देश-जाति की प्रगति का मूल कारक है। यह सत्य भारतेंदुयुगीन रचनाकारों के समक्ष बिल्कुल स्पष्ट था।

कुल मिलाकर हम भारतेंदुयुगीन हिंदी पत्रकारिता में जातीय चेतना के उत्कृष्टतम रूप के दर्शन पाते हैं। साहित्य की अन्य विधाओं में जहाँ पाठक की रुचि के अनुसार चयन का एक सवाल रहता है वहाँ पत्र-पत्रिकाएँ सीधे-सीधे प्रथमतया पूरे समाज तक पहुँचती हैं और इस प्रकार इनका प्रभाव क्षेत्र अत्यंत व्यापक हो उठता है। चूँकि भारतेंदुयुगीन पत्र संपादक पत्रकारिता की इस शक्ति से भलीभाँति परिचित थे अतः उन्होंने पत्रकारिता को जातीय चेतना के प्रचार-प्रसार के लिए सबसे अहम् साधन के रूप में विकसित किया था।

इतना ही नहीं, भारतेंदुयुगीन पत्रकार-संपादकों ने जातीय उन्नति के अपने प्रण को पूरा करने के लिए अपना सर्वस्व दाँव पर लगा दिया था। विपरीत परिस्थितियों के बीच भी तत्कालीन हिंदी पत्रकारिता जिस संकल्प और दृढ़ता के साथ विकास की सीढ़ियाँ चढ़ती गई, उसका विश्लेषण हमें रोमांचित कर देता है। डॉ. रामविलास शर्मा ने उस समय के पत्रकार- संपादकों पर लिखा- "बंगाल, बिहार, युक्तप्रांत, पंजाब, बंबई और राजपूताना में जो पत्र निकले उनमें व्यक्तिगत चेष्टा और अध्यवसाय अधिक था, सभा-समितियों अथवा धनी व्यक्तियों का सहयोग कम था। तब के सेठ लोग आज की ही भाँति अथवा आज से भी अधिक भाषा और साहित्य की ओर से उदासीन थे। इसीलिए 'ब्राह्मण' जैसे पत्र को दो आना मूल्य रखते हुए भी ग्राहक बनने के लिए लोगों से अपीलें करनी पड़ती थीं। सरकार के प्रेस-ऐक्ट आदि का भय अलग था। इन सब कठिनाइयों के होते हुए भी उस युग के समर्थ पत्रकारों ने कोलकाता, लाहौर और बंबई के त्रिकोण में हिंदी-पत्रों का एक जाल-सा बिछा दिया।"[9] हिंदी भाषी समाज को उसकी शक्ति और गौरव-बोध से परिचित कराने वाली भाषा और समाज चिंतक का यह कथन भारतेंदुयुगीन पत्रकारिता के साथ ही हिंदी भाषा और जाति की अदम्य जिजीविषा की भी कहानी बयां करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सिंह ओमप्रकाश(सं.), भारतेंदु हरिश्चंद्र ग्रंथावली, खंड-6, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, सन् 2008, पृ.-257

2. वही, पृ.-311

3. 'सरल' धनंजय भट्ट (सं.), हिंदी की दशा और पत्रकारिता, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1983, पृ.-86

4. वही, पृ.-98

5. 'हिंदी प्रदीप', ज़िल्द-13, संख्या-2-3-4, अक्तूबर-नवंबर-दिसंबर, सन् 1889

6. शंभुनाथ तथा रामनिवास द्विवेदी (सं.), हिंदी पत्रकारिता: हमारी विरासत, खंड-1, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2012, पृ.-88

7. शिशिर कर्मेंदु (सं.), नवजागरणकालीन पत्रकारिता और सारसुधानिधि, अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2008, पृ.-354-355

8. वही, पृ.-356

9. शर्मा रामविलास, भारतेंदु युग और हिंदी भाषा की विकास परंपरा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, परिवर्द्धित पहला संस्करण, 1975, पृ.-28

– सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, स्कॉटिश चर्च कॉलेज, कोलकाता

❑❑❑

पूर्वोत्तर भारत की भाषाई संस्कृति और हिंदी

डॉ. श्यामबाबू शर्मा

पूर्वोत्तर भारत सही मायने में प्रकृत भारत है। रामायण, महाभारत, योगिनी तंत्र, कालिका पुराण तथा हरगौरी संवाद इत्यादि प्रख्यात ग्रंथों में पूर्वोत्तर भारत प्रागज्योतियषपुर एवं कामरूप के रूप में वर्णित है। रामायण के किष्किंधाकांड में प्रागज्योतिष नाम का उल्लेख है। महाभारत में सभापर्व, द्रोणपर्व और अश्वमेध पर्व में भी यहाँ से जुड़े उल्लेख मिलते हैं। गुप्त साम्राज्य के शिलालेखों और चीनी यात्री ह्वेनसांग के यात्रा वर्णन में ही नहीं बाणभट्ट के हर्षचरित में भी कामरूप नरेश भास्करवर्मा का ऐतिहासिक-सांस्कृतिक दस्तावेजीकरण किया गया है। गिरिमालाओं से आच्छादित पूर्वोत्तर भारत 'शैवालय' के नाम से भी संज्ञापित है। मान्यता है कि कामदेव को शिव ने जब त्रिचक्षु से भस्म कर दिया और क्षमा याचनोपरांत पुनर्जीवन दिया तब से इसे कामरूप कहा गया। तेरहवीं शताब्दी में चाउलंग चुकाफा ने अहोम राज्य की नींव रखी। टाई भाषा का शब्द 'अहम' या अहोम ही बाद में असम हो गया। कालांतर में यह विविध प्रांतों में बँट गया।

पूर्वोत्तर भारत सांस्कृतिक वैविध्य का नमूना प्रस्तुत करता है। यहाँ के निवासी मंगोल प्रजाति के माने जाते हैं और अधिकांश भाषाएँ तिब्बती-चीनी परिवार की हैं। असमिया, बांग्ला, नेपाली, बोडो, कारबी, कछारी, डिमसा, मिसमी, गारो, मिज़ा, काकबरक, आदी, आवो और खासी भाषाओं सहित इस क्षेत्र में प्रचलित भाषाओं की संख्या शताधिक है। परंतु बोलने वालों की संख्या देश की जनसंख्या का लगभग एक प्रतिशत है। इन छोटे भाषा समूहों का कारण इस भूभाग की भौगौलिक स्थिति है। कबीलाई व्यवस्था भाषा बाहुल्य का कारण बनी। अति संवेदनशील पूर्वोत्तर में हिंदी की स्थिति पर बात करें तो अविभक्त असम के हिस्सों में प्रमुख रूप में असमिया का प्रचलन था। इसके पहले यहाँ महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव उनके शिष्य माधवदेव तथा अन्य वैष्णव कवियों ने ब्रजबुलि या ब्रजावली भाषा का प्रयोग किया था। ब्रजबुलि में अनेक गीतों और नाटकों का सृजन हुआ। इससे असमिया और हिंदी के बीच एक सेतु बना और दोनों भाषाएँ एक दूसरे के नजदीक आईं। मीनपा, और हिंदी के बीच एक सेतु बना और दोनों भाषाएँ एक दूसरे के नजदीक आईं। मीनपा, लुइपा जैसे सिद्धों का यहाँ से संबंध तथा सिद्धपीठों में नाथ पंथियों का रहना पूर्वोत्तर के शेष भारत के साथ संबंधों का साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। चर्यापदों में हिंदी, असमिया, बांग्ला, ओड़िया, का उत्स खोजा जाना भी साहित्यिक संबंध को मजबूत करता है। ब्रजावली में रचित बरगीत तत्कालीन हिंदी में हैं। वास्तव में यदि ब्रजावली को देवनागरी लिपि में लिख दिया जाए तो हिंदी जानने वालों के लिए यह अधिक बोधगम्य हो जाती है। असमिया लिपि के कारण हिंदी विद्वानों के लिए यह साहित्य अपरिचय का पहाड़ खड़ा करता है।

उन्नीसवीं शताब्दी में हिंदी प्रचार-प्रसार, पठन-पाठन एवं लेखन के माध्यम से प्रारंभ हुआ। यक्षरम खरधरिया फुकन ने हिंदी व्याकरण और अविधान नामक पुस्तक की रचना की। भुवनचंद्र गोगोई ने शिवसागर के समीप बकता नामक गाँव में असम पालिटेक्निक इंस्टीस्ट्यूट शैक्षिक संस्थान की स्थापना की जिसमें सिलाई, बुनाई,

कढ़ाई, कृषिकर्म, लौहकर्म, काष्ठकर्म आदि की विधिवत शिक्षा दी जाती थी। 1926 ई. से इसमें हिंदी अनिवार्य कर दी गई जिसकी मान्यता काशी हिंदू विश्वविद्यालय वाराणसी से प्राप्त थी। 1921 में गांधी जी असम आए और तरुनराम फुकन, लोकप्रिय गोपीनाथ बरदलै, कृष्णनाथ शर्मा, भुवनचंद्र गोगोई, कर्मयोगी हरेकृष्णदास, पीतांबर देवस्वामी, बिरंचि कुमार बरुवा को हिंदी के उन्नयन का कार्य सौंपा। जिनके अथक प्रयासों के फलस्वरूप आज अनेक हिंदी दैनिक पत्रों का प्रकाशन तथा शिक्षण के स्तर पर प्राथमिक, माध्यमिक, उच्चतर माध्यमिक, स्नातक, स्नातकोत्तर की पढ़ाई विभिन्न शिक्षण संस्थानों में हो रही है। गैर सरकारी संस्थाओं में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति गुवाहाटी, हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग आदि हिंदी को लोकप्रिय बनाने में अपना उल्लेखनीय योगदान दे रहे हैं। कहना जरूरी नहीं कि देश के अन्य प्रांतों के लोगों द्वारा हिंदी के विकास को गति मिल रही है। हिंदी और असमिया की निकटता ने भाषाई विकास तो किया ही है संकीर्णताओं की दीवारें भी तोड़ी हैं।

एकदम उत्तर-पूर्व में चीन-तिब्बत की सीमा में मिला अरुणाचल प्रदेश लोक संख्या की दृष्टि से बहुत छोटा है। यहाँ की विभिन्न जनजातियों की अनेक भाषाएँ-उपभाषाएँ हैं जिनमें निशी, आदी, गालो, मोंपा, खामती, मिनयोंग, आपातनी प्रमुख हैं। भाषाई दृष्टि से यह प्रांत एशिया का सर्वाधिक विविधतापूर्ण क्षेत्र है। भाषा परिवारों की बात की जाए तो यहाँ की भाषाएँ चीनी-तिब्बती, तिब्बती-बर्मी, ब्रह्मपुत्री, बोडो-कोच और देओरी भाषा परिवार की हैं। संपर्क भाषा के रूप में हिंदी का प्रयोग किया जाता है। माध्यमिक स्तर तक हिंदी पढ़ाई जाती है। यहाँ हिंदी के प्रचार-प्रसार में असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, ईटनागर साहित्य सभा, अरुणाचल नागरी संस्था, शब्द भारती आदि सरकारी, गैर सरकारी संस्थाओं की भूमिका उल्लेखनीय है। अरुण प्रभा, अरुण ज्योति और अरुण आवाज यहाँ के प्रमुख पत्र हैं। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में समुदायों के बीच ही नहीं घरों में भी हिंदी विचार विनिमय का माध्यम बन गई है। अनुवाद कार्य ने भी हिंदी को प्रोत्साहन दिया है।

मणिपुरी भाषा चीनी-तिब्बती भाषा परिवार के अंतर्गत तिब्बती-बर्मी उपभाषा परिवार से संबंधित है। इस भाषा परिवार की भाषाएँ हिमालय, उत्तरी असम, बर्मी नामक-तीन शाखाओं में वर्गीकृत की गई हैं। असम-बर्मी शाखा में चार विविध समूहों की भाषाएँ हैं। ये हैं- बोडो, नागा, कूकी-चिन और बर्मी। मणिपुर प्रांत की प्रमुख भाषा मीतैलोन है और इसे ही मणिपुरी कहा जाता है। इतिहास के पन्ने पलटने पर ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में ही तिब्बती-बर्मी उपभाषा परिवार की भाषाएँ बोलने वाले विविध जातियों के लोग मणिपुर में आकर बसने लगे थे। निङथौजा राजा के शासनकाल में ही सात छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त मणिपुर एक राज्य के अधीन आ गया। निङथौजा राजाओं की चेङलै बोली ही मानक भाषा के रूप में सम्मान पाकर मानक मणिपुरी भाषा के रूप में विकसित हुई। इसी राजवंश के राजा उरकौनथौबा के समय के कांस्य सिक्के में हमें सर्वप्रथम मणिपुरी लिपि का प्राचीन रूप मिलता है। मणिपुरी को आठवीं अनुसूची में जोड़कर इसे सम्मानित भाषा का दर्जा दिया गया। अब यह पूरे राज्य में विभिन्न जातियों के बीच संपर्क भाषा के रूप में ही प्रचलित नहीं है अपितु साहित्य-सृजन के लिए भी सक्षम माध्यम के रूप में कार्य कर रही है। राज्य की प्रमुख बोलियाँ हैं- तङखुल, भार पाड़ते, लुसाई, थडोऊ (कूकी) माओ आदि। मैतेइ मयांक लिपि के साथ रोमन लिपि का प्रयोग भी हो रहा है। कृष्ण भक्ति का प्रचार तथा ब्रजबुलि में रचित हिंदी वाङ्मय दोनों की घनिष्ठता को प्रकट करते हैं। रामायण, महाभारत की लोकप्रियता तथा तीर्थाटन के प्रति आकर्षण हिंदी को लोकप्रिय बना ही रहे हैं।

स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान हिंदी प्रचारकों द्वारा मणिपुर में हिंदी का विकास हुआ। हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग के कांचीपुर केंद्र और मणिपुर हिंदी प्रचार सभा की भूमिकाओं को नज़रअंदाज नहीं किया जा सकता। मणिपुरी हिंदी परिषद, नागरी लिपि प्रचार सभा, इंफाल और मणिपुर ट्राइबल्स हिंदी सेवा समिति की स्थापना ने हिंदी के विकास को गति दी। मणिपुर में राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी लेखन कार्य हो रहा है। अनुवाद कार्य के चलते हिंदी की कई पुस्तकों के मणिपुरी में आने से जहाँ मणिपुरी साहित्य समृद्ध हुआ है वहीं मणिपुरी साहित्य भी अनूदित होकर राष्ट्रीय फलक पर पहुँच सका है।

मेघालय का भाषा इतिहास खंगालने पर हम पाते हैं कि पहले यहाँ कोई लिपि नहीं थी और सांकेतिक चिह्नों द्वारा भावाभिव्यक्ति की जाती थी। भौगोलिक चित्रों का प्रयोग भी संप्रेक्षण का माध्यम था। धीरे-धीरे कला, क्राफ्ट एवं वास्तुकला के चिह्नों को भौगोलिक चिह्नों के साथ प्रयोग किया जाने लगा जिसका प्रमाण प्राचीनतम वृक्षों की छाल पर पाया जाता है। इनके बारे में किंवदंती है कि ये बाढ़ में नष्ट होने लगीं और कई लिपियाँ डूब गईं। खासी, जयंतिया और गारो यहाँ की तीन प्रमुख जनजातियाँ हैं। जिनमें मुख्य रूप से खासी, गारो भाषाओं का प्रचलन है। हिंदी, बांग्ला और नेपाली बोलने वाले प्रायः जनजातियों से इतर लोग हैं। खासी भाषा से ली गई है जो कि आग्नेय भाषा परिवार से निःसृत है। जिसे आस्ट्रो एशियाटिक परिवार कहा जाता है। वेल्स प्रेसबेटेरियन मिशन ने सर्वप्रथम रोमन लिपि का प्रयोग खासी भाषा के लिए किया। यद्यपि सिलहट और बंगाली क्षेत्रों में कार्यरत अन्य मिशनरियों ने बंगाली लिपि को ही महत्व दिया। थॉमस जेम्स की अगुवाई से बढ़ते लिपि विकास ने अंग्रेजी भाषा का उच्चारण जिस तरह वेल्स में होता है उसी उच्चारण के अनुसार खासी भाषा को भी लिखना-बोलना और प्रचार करना शुरू किया। खासी में अनेक शब्द अन्य भाषाओं से लिए गए हैं। जैसे- कंबल को किंबोल, दुख को डुक, दूध को दूद, साबुन को साबोन, छुरी को शुरी, बाल्टी को बोर्टी, मैदा को मइदा, रोटी को रूटी और चीनी को सीनी कहते हैं।

खासी भाषा के इतिहास में जिबानराय, राघौन सिंह बेरी और निसोर सिंह के योगदान को रेखांकित किया गया है। जिबानराय बंगाली, अंग्रेजी और संस्कृत के पंडित थे। उन्होंने रामायण और बुद्धदेव चरित का खासी में अनुवाद किया। जान इलियट ने गारो शब्दों को संकलित किया और दूसरा प्रयास फ्रांसिस हैमिलटन के द्वारा किया गया। खासी के सुविख्यात कवि सोसोथाम जिन्हें मेघालय का पंत कहा जाता है, ने अपनी रचनाओं से एक नई इबारत लिखी। कवि अमजद अली ने भी खासी साहित्य में अपनी काव्यात्मक विधा से योगदान दिया। मेघालय सरकार की राजभाषा अंग्रेजी है। बाजार में संपर्क भाषा के रूप में अंग्रेजी का स्थान हिंदी ले रही है। हिंदी को लेकर स्थानीय लोगों का वैसा विरोध नहीं है जैसा कि राष्ट्रीय विमर्शों में दिखाया जाता है। यहाँ हिंदी के जिज्ञासु कम नहीं है। लगभग केंद्र सरकार के सौ संस्थानों द्वारा हिंदी कार्यशालाओं, संगोष्ठियों तथा प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन और उनमें स्थानीय कर्मचारियों की भागीदारी इसका साक्ष्य है। पत्रकारिता के क्षेत्र में श्रोतावाणी, रूपांजलि, पूर्वाशा और मेघालय दर्पण आदि पत्र-पत्रिकाएँ उल्लेखनीय हैं।

त्रिपुरा प्रांत की प्रमुख भाषा कॉकबरक है। 'कॉक' का अर्थ भाषा और 'बरक' का अर्थ लोग होता है कॉकबरक भाषा तिब्बती-बर्मी भाषा परिवार की सदस्य है और असम में बोली जाने वाली बोडो भाषा और डिमासा भाषा की निकट संबंधी है। इसे त्रिपुरी भी कहा जाता है। यह मुख्य रूप से त्रिपुरी, देव बर्मा, रियाङ, जमातिया, नोवातिया, कलई, उचई एवं रूपिनी जनजातियों द्वारा बोली जाती है। कॉकबरक भाषा-भाषी स्वयं को बरक शब्द से संबोधित करना या कराना अधिक पसंद करते हैं और अपनी पहचान बनाए रखने के लिए वे अपनी संस्कृति से जुड़े हर शब्द के पीछे 'बरक' शब्द लगाते हैं। इस बात से कतई इनकार नहीं किया जा सकता कि बांग्ला एवं अंग्रेजी की तुलना में हिंदी को यहाँ उपयुक्त स्थान नहीं मिला। प्राथमिक शिक्षण में हिंदी की स्थिति ठीक नहीं कही जा सकती तथापि महाविद्यालयों तथा त्रिपुरा विश्वविद्यालय में हिंदी का शिक्षण स्नातक से पीएचडी स्तर तक अवश्य हो रहा है।

ज्ञान एवं शिक्षा के प्रति लगन का ही नतीजा है कि मिज़ारम सर्वाधिक साक्षरता वाले राज्यों में अग्रणी है। यहाँ की आधिकारिक भाषा मिज़ा है। यह लाई, मारा और म्हार भाषा से मिली हुई है। मिजी भाषा तिब्बती-चीनी भाषा परिवार के तिब्बती-बर्मी उप-परिवार की कुकी-चीन समूह की भाषा है। प्रारंभ में यह मौखिक रूप में ही प्रचलित थी। भाषाशास्त्रियों के अनुसार इसकी कोई स्वतंत्र लिपि नहीं थी। कहा जाता है कि इनका साहित्य चर्म पत्र पर लिखा हुआ था जिसे कुत्ते ने खा लिया, जिससे इनकी लिपि व साहित्य दोनों समाप्त हो गए। आधुनिक प्रमाणों के आधार पर मान्यता बनी कि मिशनरीज के आने के बाद इनकी भाषा को लिपि मिली। ईसाई धर्म प्रचारकों ने मिज़ा भाषा को लिखने के लिए रोमन लिपि पर आधारित लिपि का विकास किया। एफ. डब्ल्यू. सेविज तथा जे. एच. लौरेन ने त्लोंग नदी के

किनारे साइरांग स्थान पर अपना ठौर-ठिकाना बनाया। यहीं से मिज़ो भाषा को लिखित रूप देने का प्रयास शुरू हुआ। थामस हर्बट लुविन द्वारा मिज़ो भाषा के कुछ साथ मिज़ो जनजाति से संबंधित लोकगाथाओं को संकलित किया गया। मिज़ो भाषा एवं संस्कृति से संबंधित यह पहला ग्रंथ था। इसके बाद चिटगाँव के ब्रोजोनाथ साहा ने ग्रामर ऑफ लुशाई लैंग्वेज का प्रकाशन किया। सी. ए. सॉपिथ ने कुकी लुशाई ग्रामर लिखा।

मिज़ो की अपनी लिपि का न होना इनके तमाम दुर्लभ ऐतिहासिक साहित्यिक पाठों से हमें वंचित करती है। ध्वनि आधारित वर्तनी की सहायता से मिज़ो भाषा को व्यवस्थित करने तथा रोमन लिपि के रूप में प्रयोग में लौरेन एवं सेविज पादरियों ने महत्वपूर्ण काम किया। बाइबिल का मिज़ो भाषा में अनुवाद हुआ जिसे ब्रिटिश एंड बाइबिल सोसाइटी द्वारा प्रकाशित किया गया। ग्रामर एंड डिक्शनरी ऑफ द लुशाई लैंग्वेज के प्रकाशन मिज़ो भाषा के प्रति मिशनरियों के उल्लेखनीय कार्य कहे जा सकते हैं। असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, मिज़ोरम हिंदी प्रचार सभा और राष्ट्रभाषा प्रचार समिति जैसे सरकारी, गैर सरकारी संस्थानों का प्रयास हिंदी को बेहतर बनाने की दिशा में निश्चित ही स्तुत्य है।

1963 के पहले नागालैंड भी असम का ही हिस्सा था। यहाँ सभी जनजातियों की अपनी-अपनी भाषाएँ-उपभाषाएँ हैं। अंग्रेजी को राजभाषा का दर्जा दिया गया है और असमिया मिश्रित नगामीज वैचारिक विनिमय का प्रमुख माध्यम है। अंग्रेजी की खींची लकीरों के चलते यहाँ की लिपि रोमन बनी हुई है। नागालैंड भाषा परिषद्, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति तथा आकाशवाणी व दूरदर्शन, असम के समाचार पत्र-पत्रिकाएँ यहाँ हिंदी का दीया जलाने का प्रयास कर रहे हैं। यह कहने में संकोच नहीं होना चाहिए कि पूर्वोत्तर में हिंदी की दशा में सुधार हो रहा है जिसमें व्यवस्थागत संस्थाओं के साथ-साथ अनौपचारिक प्रतिष्ठानों व मीडिया की भूमिका उल्लेखनीय है। पर्यटन व देश के विविध क्षेत्रों से रोजी-रोटी के लिए यहाँ के निवासियों से हिंदी का प्रचार-प्रसार बढ़ रहा है। मातृभाषा, संपर्कभाषा और राजभाषा के बीच समन्वय पर जोर देने की आवश्यकता है। हिंदी के विकास को महज भाषाई दृष्टि से देखने की बजाय एकता-अखंडता के चश्मे से देखा जाए तो शायद पूर्वोत्तर जनमानस क्षेत्रीयता से ऊपर उठकर हिंदी को आत्मसात कर सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. असमिया साहित्य : रूपरेखा, एम. नियोग, गुवाहाटी।

2. असमिया भाषा और साहित्य, लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ, गुवाहाटी।

3. असमिया व्याकरण और भाषा तत्व, कालीराम मेधी, असम प्रकाशन परिषद् गुवाहाटी।

4. ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ खासी लिटरेचर, प्रो. हैमलेट, बारे नाङफता, स्कार्पियो शिलांग।

5. ए हिस्ट्री ऑफ मणिपुरी लिटरेचर, आर. के झलजीत सिंह, पब्लिक बुक स्टोर, इंफाल।

6. मणिपुरी साहित्य, द इमेजरी, थोकचोम इबोहनबी, कल्पना पब्लिकेशन, इंफाल।

7. मणिपुरी भाषा की विकास यात्रा, यच यस देवी, गवेषणा, अंक 102।

– 85/1 अंजलि कॉम्प्लेक्स, शिलांग-793001

❑❑❑

विविधरूपिणी हिंदी भाषा : समीक्षात्मक विमर्श

डॉ. ज्ञानेंद्र कुमार

सार- भाषा व्यक्ति के विचारों, संवेदनाओं और भावों को संप्रेषित करने का एक सशक्त साधन है किंतु क्या ये केवल विचारों के विनियम का साधन मात्र है? इस प्रश्न का उत्तर दे पाना निश्चित रूप से कठिन है क्योंकि भाषा किसी भी समाज की संस्कृति, परंपरा, सभ्यता और ज्ञान-विज्ञान परंपरा की संवाहिका भी है। हिंदी भाषा के विषय में यह कथन सर्वथा उचित है क्योंकि हिंदी भाषा में एक ओर जहाँ अनेकों भाषाई वैशिष्ट्य हैं, तो वहीं दूसरी ओर भारतीय समाज में प्रचलित सांस्कृतिक आदर्शों, मूल्यों और परंपराओं का रोचक विवरण भी प्राप्त होता है। प्रस्तुत शोध पत्र हिंदी भाषा के इन दोनों पक्षों पर सविस्तार चर्चा करता है साथ ही हिंदी भाषा के तेजी से प्रचलित होते रूप 'प्रयोजनमूलक' स्वरूप पर भी प्रकाश डालता है।

मुख्य बिंदु- विविधरूपिणी, प्रयोजनमूलक, रेख्ता इत्यादि।

आहार, आवरण और आवास मानव की मूलभूत आवश्यकताएँ हैं इसके बिना वह जीवित नहीं रह सकता किंतु इन सबके अतिरिक्त एक अन्य आवश्यकता होती है जिसके बिना वह जीवित नहीं रह सकता है वह आवश्यकता है संबंध की आवश्यकता, मानव एक सामाजिक प्राणी है एक ऐसा प्राणी, जो अपने विचारों, भावनाओं, अनुभवों, संवेदनाओं और कथनों को समाज के दूसरे सदस्यों के साथ बांटना चाहता है और इस कार्य में एक साधन सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है वह है भाषा। भाषा मनुष्य को ईश्वर द्वारा प्रदत्त एक अनमोल उपहार है जिसके द्वारा वह अपने विचारों और संवेदनाओं को समाज के अन्य सदस्यों तक पहुँचाने में सफल होता है। जो उसके संबंध की आवश्यकता की पूर्ति भी करता है। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी एक भाषा होती है जिसमें वह बोलना या लिखना पसंद करता है। उस भाषा में बोलने या लिखने से जो आत्म संतुष्टि उसे मिलती है वह किसी अन्य कार्य से नहीं मिलती इसी बात को भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अपने शब्दों में व्यक्त किया है "निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल, बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटे न हिय को शूल" इसी संदर्भ में यदि भारत की अपनी भाषा के विषय में बात करें तो यहाँ मुख्य बाईस भाषाएँ (जो की भारतीय संविधान के आठवीं अनुसूची में गणित हैं) बोली जाती हैं। इसके अतिरिक्त सैकड़ों बोलियों का प्रयोग अपने दैनिक कार्यों के संचालन में किया जाता है। अगर बात करें भारत में सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा की तो इसमें हिंदी भाषा प्रथम स्थान पर आती है। जनगणना '2011' के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या में 43.63% (528,347,193) जनसंख्या हिंदी भाषी है। ये वे लोग हैं जिनकी प्रथम भाषा हिंदी है। अगर द्वितीय और तृतीय भाषा को भी जोड़ दें तो कुल जनसंख्या में से 57.09% (691,347,193) जनसंख्या हिंदी भाषी है। इससे इसका भाषा के रूप के महत्व का ज्ञान होता है। हिंदी भाषा के विविध रूपों पर चर्चा से पूर्व हम 'हिंदी' शब्द का आशय समझ लें, जिससे हिंदी भाषा के विविध रूपों को ठीक प्रकार से समझा जा सके। हिंदी शब्द का संबंध संस्कृत शब्द 'सिंधु' से माना

जाता है। 'सिंधु' सिंध नदी को कहते थे और उसी आधार पर उसके आस-पास की भूमि को सिंधु कहने लगे। यह 'सिंधु' शब्द ईरानी में जाकर 'हिंदू', हिंदी और फिर 'हिंद' हो गया। बाद में ईरानी धीरे-धीरे भारत के अधिक भागों से परिचित होते गए और इस शब्द के अर्थ में विस्तार होता गया तथा 'हिंद' शब्द पूरे भारत का वाचक हो गया। इसी में ईरानी का ईक प्रत्यय लगने से (हिंद+ईक) 'हिंदीक' बना जिसका अर्थ है 'हिंद का'। यूनानी शब्द 'इन्दिका' या अंग्रेजी शब्द 'इंडिया' आदि इस 'हिंदीक' के ही विकसित रूप हैं। हिंदी भाषा के लिए इस शब्द का प्राचीनतम प्रयोग शरफुद्दीन यज्दी के 'जफरनामा' (1424) में मिलता है। प्रोफेसर महावीर सरन जैन ने अपने 'हिंदी एवं उर्दू का अद्वैत' शीर्षक आलेख में हिंदी की व्युत्पत्ति पर विचार करते हुए कहा है कि ईरान की प्राचीन भाषा अवेस्ता में 'स' ध्वनि नहीं बोली जाती थी। 'स्' को 'ह्' रूप में बोला जाता था। जैसे संस्कृत के 'असुर' शब्द को वहाँ 'अहुर' कहा जाता था। परिणामस्वरूप सिंधु को हिंदू और उसकी भाषा हिंदी कहलाई। अगर बात करें हिंदी भाषा में बोली जाने वाली शैलियों की तो कुछ भाषाविदों के अनुसार हिंदी के चार प्रमुख रूप या शैलियाँ हैं। प्रथम उच्च हिंदी या मानकीकृत हिंदी - हिंदी भाषा का मानकीकृत रूप, जिसकी अपनी स्वयं की लिपि होती है। उच्च हिंदी की अपनी लिपि है जिसे 'देवनागरी' लिपि कहा जाता है। उच्च हिंदी में संस्कृत भाषा के शब्दों की प्रधानता होती है साथ ही इसमें तत्सम शब्दों का बहुतायत में प्रयोग होता है। यही उच्च हिंदी भारतीय संघ की राजभाषा है (अनुच्छेद 343, भारतीय संविधान)। दूसरी है दक्खिनी हिंदी- हिंदी भाषा का वह रूप जिसमें उर्दू-हिंदी का बहुतायत में प्रयोग किया जाता है जो हैदराबाद और उसके आसपास की जगहों में बोला जाता है। इसमें अरबी-फारसी के शब्द उर्दू की अपेक्षा कम होते हैं। तीसरी शैली है 'रेख्ता' - उर्दू का वह रूप जो शायरी में प्रयुक्त होता था। 'उर्दू' - हिंदवी का वह रूप जो देवनागरी लिपि के बजाय फारसी-अरबी लिपि में लिखा जाता है। इसमें संस्कृत के शब्द कम होते हैं और फारसी-अरबी के शब्द अधिक। ये विविधता तो केवल लिखने और बोलने की शैली में है। इसके अतिरिक्त हिंदी भाषा की अनेक बोलियाँ है। ये बोलियाँ ही इसकी विविधता को संवर्धित करती हैं। बोलने के हिसाब से हिंदी भाषा का क्षेत्र अत्यंत व्यापक और बृहद् है परिणाम स्वरूप हिंदी भाषा की अनेक बोलियाँ (उपभाषाएँ) हैं। जिनमें से कुछ में तो उत्कृष्ट कोटि के साहित्य का निर्माण भी किया गया है। इन बोलियों में मुख्य रूप से ब्रजभाषा और अवधी आती हैं। ये बोलियाँ हिंदी भाषा के वैविध्य में संवर्धन करती हैं। ये बोलियाँ हिंदी भाषा की जड़ों को और भी गहरा बनाती हैं। हिंदी भाषा की बोलियों का महत्व केवल भाषिक रूप में ही नहीं है बल्कि स्वतंत्रता आंदोलन में भी अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। हिंदी की बोलियों में प्रमुख हैं- अवधी, ब्रजभाषा, कन्नौजी, बुंदेली, बघेली, भोजपुरी, हरियाणवी, राजस्थानी, छत्तीसगढ़ी, मालवी, नागपुरी, खोरठा, पंचपरगनिया, कु-माऊनी, मगही आदि। किंतु हिंदी भाषा के मुख्य रूप से दो भेद हैं - पश्चिमी हिंदी तथा पूर्वी हिंदी। हिंदी भाषा की शब्दावली भी अत्यंत व्यापक एवम् समृद्धशालीनी है। हिंदी शब्दावली में मुख्यतः दो वर्ग हैं।

प्रथम वर्ग- तत्सम शब्द - तत्सम वे शब्द हैं जो संस्कृत भाषा के शब्दों को बगैर किसी परिवर्तन के ही प्रयोग में लाए जाते हैं, जैसे बालक, फल, कवि, नदी, मुख। (परंतु हिंदी में आने पर ऐसे शब्दों से विसर्ग का लोप हो जाता है जैसे संस्कृत 'कविः' हिंदी में केवल 'कवि' हो जाता है) द्वितीय तद्भव शब्द - ये वे शब्द हैं जिनका जन्म संस्कृत या प्राकृत भाषा से हुआ है, लेकिन उनमें काफी ऐतिहासिक बदलाव आया है। जैसे-आग, दूध, दाँत, मुँह।

द्वितीय वर्ग - देशज शब्द- 'देशज' शब्द का अर्थ है - 'जो अपने देश में ही उपजा या बना हो'। तो देशज शब्द का अर्थ हुआ जो न तो विदेशी भाषा का हो और न किसी दूसरी भाषा के शब्द से बना हो। ऐसा शब्द जो न संस्कृत का हो, न संस्कृत-शब्द का अपभ्रंश हो। ऐसा शब्द किसी प्रदेश (क्षेत्र) के लोगों द्वारा बोल-चाल में यों ही बना लिया जाता है। जैसे- खटिया, लुटिया। विदेशी शब्द- इसके अतिरिक्त हिंदी भाषा में कई शब्द अरबी, फारसी, तुर्की, अंग्रेजी आदि से भी आए हैं। इन्हें विदेशी शब्द कहते हैं। जिस हिंदी में अरबी, फारसी और अंग्रेजी के शब्द लगभग पूरी तरह

से हटाकर तत्सम शब्दों को ही प्रयोग में लाया जाता है, उसे (शुद्ध हिंदी) या (मानकीकृत हिंदी) कहते हैं।

हिंदी भाषा के विविध रूप

हिंदी भाषा अपने वैविध्यपूर्ण रूप के लिए संपूर्ण जगत में सुविख्यात है जहाँ एक ओर इसका भाषाई वैविध्य है वहीं दूसरी ओर इसका साहित्य अपनी विपुलता को लिए हुए है। हिंदी भाषा में जहाँ एक ओर तत्सम शब्दों की भरमार है, वहीं दूसरी ओर तद्भव शब्दों को भी वही सम्मान प्राप्त है साथ ही एक ओर जहाँ देशज शब्दों का बहुतायत प्रयोग किया जाता है वहीं दूसरी ओर विदेशी शब्दों का पर्याप्त प्रयोग दिखाई देता है। यदि समग्रता से देखें तो हिंदी भाषा विविधरूपिणी सदृश अपने सौंदर्य से पाठक या वाचक अपनी ओर आकर्षित करती है। एक शोधकर्ता के रूप में हिंदी भाषा के इस रूप के भी प्रकाशन की आवश्यकता है। हिंदी भाषा के विविध रूपों को अलग-अलग आधारों पर वर्गीकृत किया जा सकता है

- सामान्य बोलचाल की भाषा के रूप में हिंदी।
- साहित्यिक भाषा के रूप में हिंदी।
- प्रशासनिक भाषा के रूप में हिंदी।
- प्रयोजनमूलक हिंदी का।

सामान्य बोलचाल की भाषा के रूप में हिंदी- इससे आशय है कि सामान्य बोलचाल की भाषा, भाषा वह रूप जिसे हम अपने सामान्य दैनिक व्यापार में प्रयोग करते हैं। भाषा के इस रूप में तद्भव शब्दों का बहुतायत प्रयोग होता है। साथ ही इसमें व्याकरण के नियमों में शिथिलता लाई जा सकती है, क्योंकि इसका उद्देश्य श्रोता तक अपने विचारों को पहुँचाना होता है ना कि साहित्यिक विधाओं का परिचय करना तथापि हिंदी भाषा को इसके प्रयोग के आधार पर मुख्य रूप से दो भागों में बांटा जा सकता है। पहला, औपचारिक हिंदी भाषा के रूप में तथा दूसरा अनौपचारिक हिंदी भाषा के रूप में। प्राय: हम अपनी दिनचर्या में जिस भाषा का प्रयोग करते हैं, उसको अनौपचारिक हिंदी कहते हैं। अनौपचारिक हिंदी भाषा का प्रयोग हम अपने बाल्यकाल में सीखते हैं, क्योंकि इसका संबंध हमारे जीवन के विभिन्न संदर्भों से होता है। इसको सीखने के लिए हमें विशिष्ट प्रयास नहीं करने पड़ते, सहज रूप से जो कुछ भी हम बोलते हैं। वह इसके अंतर्गत आ जाता है अर्थात् इसका सीखना स्वत: स्फूर्त होता है क्योंकि भाषा के इस रूप को बालक को सिखाने का श्रेय उसकी माता को जाता है। इसीलिए इसे मातृभाषा भी कहते हैं। वर्तमान समय में बड़े-बड़े शहरों में शिक्षित वर्ग के मध्य सामान्य हिंदी का एक अलग रूप दिखलाई पड़ता है। जिसमें अंग्रेजी भाषा का काफी मिश्रण होता है परिणाम स्वरूप हिंदी भाषा ने अपने अंदर बहुत सारे अंग्रेजी शब्दों को समाहित कर लिया है, जैसे हम शहरी वातावरण में रह रहे किन्हीं दो व्यक्तियों की बातचीत को ध्यानपूर्वक सुने तथा उनकी वार्तालाप में प्रयुक्त अंग्रेजी शब्दों की सूची बनाएँ तो आप पाएँगे कि उनकी वार्तालाप में बहुत सारे अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग मिल जाएगा। उदाहरण स्वरूप जैसे आज मैं मॉर्निंग वाक के टाइम पर अपने फादर को लेने बस स्टेशन गया, मैंने बहुत हार्ड वर्क किया पर मुझे अपने मनचाहे कॉलेज में एडमिशन नहीं मिला इत्यादि।

साहित्यिक हिंदी- हिंदी भाषा का साहित्यिक रूप सामान्य हिंदी से विपरीत व्याकरणसम्मत, संस्कृतनिष्ठ शब्दों का बहुतायत प्रयोग तथा क्लिष्ट होता है क्योंकि हिंदी के इस रूप का साहित्य में प्रयोग होता है। इसीलिए इसे साहित्यिक हिंदी कहा जाता है। साहित्यिक भाषा, साहित्य की विभिन्न विधाओं में जैसे कहानी, उपन्यास, नाटक, यात्रावृतांत, संस्मरण, एकांकी, कविता आदि में प्रयुक्त होती है। इसका संबंध पाठक की सौंदर्यात्मक अनुभूति से होता है इसलिए इसको पढ़ने वाले के मन में सौंदर्य अनुभूति जागृत होनी चाहिए। साहित्यिक भाषा का प्रयोग अपनी सृजनात्मकता को व्यक्त करने के लिए होता है। साहित्यिक भाषा से सृजित साहित्य केवल सौंदर्य अनुभूति और सृजनधर्मिता की अभिव्यक्ति मात्र नहीं होता अपितु इस साहित्य में हमें सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन मूल्यों की झलक भी दिखाई देती है। साहित्य अपने आप में एक विस्तृत आयाम को समाहित किए हुए होता है साहित्यिक हिंदी की भाषा कैसी हो? इस विषय में भी पर्याप्त मत विभेद दिखाई देता है। जहाँ एक ओर विद्वानों का एक वर्ग मानता है कि साहित्य की भाषा में उच्चकोटि की लक्षणा और व्यंजना का प्रयोग होना चाहिए क्योंकि उसका उद्देश्य सौंदर्य अनुभूति को जागृत तथा रसास्वादन

कराना होता है। वहीं दूसरी ओर विद्वानों का दूसरा वर्ग स्वीकार करता है कि साहित्य की भाषा अभिधा से अभिसिक्त होनी चाहिए क्योंकि साहित्य का उद्देश्य पाठक को काव्य का भाव स्पष्ट करना या कराना होता है ना कि काव्य शैली से चमत्कृत करना। साहित्यिक भाषा की कुछ अन्य विशेषताएँ होती हैं जैसे ये व्याकरण के नियमों का दृढ़ता से पालन करती है, संस्कृतनिष्ठ शब्दों का ही प्रयोग तथा क्लिष्ट अर्थ अभिबोध होता है। इन साहित्य लक्षणों को प्रसाद, निराला, महादेवी वर्मा, हजारीप्रसाद द्विवेदी आदि के काव्य की भाषा में देख सकते हैं तथापि अगर हम साहित्यिक हिंदी का वर्गीकरण करें तो हमें मुख्य रूप से चार भागों में दिखाई देती है–

संस्कृतनिष्ठ साहित्यिक भाषा।

अरबी–फारसी मिश्रित साहित्य भाषा।

अंग्रेजी मिश्रित हिंदी भाषा।

सामान्य बोलचाल की भाषा।

इस प्रकार साहित्यिक भाषा का उद्देश्य मुख्य रूप से हमें सौंदर्य सौंदर्यानुभूति के साथ–साथ समाज में व्याप्त विषयों का ज्ञान कराना होता है।

प्रशासनिक हिंदी भाषा– हिंदी भाषा प्रशासनिक रूप से भी काफी व्यापक रूप धारण कर चुकी है। हिंदी भाषा राजभाषा, राज्यभाषा, राष्ट्रभाषा, संपर्क भाषा सभी रूपों में अपना एक विशिष्ट स्थान प्राप्त कर चुकी है। साथ ही अब हिंदी भाषा इन भूमिकाओं से आगे निकलकर हिंदी अंतरराष्ट्रीय स्तर पर 'अंतरराष्ट्रीय भाषा' के रूप में काफी तेजी से आगे बढ़ रही है। राजभाषा से आशय है कि जिस भाषा में राज्य या देश के प्रशासन कार्यों का संचालन किया जाता है। भारत में हिंदी भाषा को यह सम्मान प्राप्त है। यह तो हम सभी जानते हैं कि ब्रिटिश शासन काल में अंग्रेजी भाषा इस देश की राजभाषा थी। भारत जब स्वतंत्र हुआ और संविधान में राजभाषा के प्रश्न पर विचार किया गया तब संविधान के अनुच्छेद 343 खंड 1 में उल्लेख किया गया है। कि संघ की राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी होगी क्योंकि उस समय प्रशासन की भाषा अंग्रेजी थी। इसीलिए अंग्रेजी के स्थान पर हिंदी भाषा को राजभाषा बनाने में तत्कालीन संविधान निर्माताओं को कई व्यावहारिक कठिनाइयाँ सामने आने की संभावना थी। अतः इसे ध्यान में रखते हुए यह प्रस्ताव दिया गया कि 26 जनवरी 1965 तक अंग्रेजी भाषा का प्रयोग उन सभी प्रयोजनों के लिए किया जाता रहेगा जैसा संविधान के पारित होने से पूर्व होता रहा था। संघ की राजभाषा से आशय राज्य के तीन प्रमुख अंगों की भाषा से है यह अंग हैं–

- विधायिका।
- न्यायपालिका।
- कार्यपालिका।

भारतीय संसद संपूर्ण देश के कानून बनाने का कार्य करती है। राज्यों के विधानमंडल अपने–अपने स्तर पर अपनी भाषा में काम करते हैं। इन सब से सामंजस्य स्थापित करने के लिए आवश्यक है सभी विधायक निकायों पर निर्णय देश की राजभाषा में उपलब्ध कराए। न्यायपालिका के लिए आवश्यक है देश की उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय राजभाषा में अपने निर्णयों और कार्यों को करें। इसी प्रकार भारत सरकार के कार्यालय अपना प्रशासनिक कार्य राजभाषा में ही करें। राजभाषा पर इन तीनों अंगों के बीच समन्वय स्थापित करने का महत्वपूर्ण और गुरुतर उत्तरदायित्व है। राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी की संकल्पना राष्ट्र के भावात्मक जुड़ाव के लिए आवश्यक है कोई भी भाषा राष्ट्रभाषा का स्थान स्वतः ही अर्जित कर लेती है। भारत में यह सम्मान हिंदी भाषा को प्राप्त है यद्यपि यह भी सत्य है कि हिंदी को 'राष्ट्रभाषा' सम्मान के विषय संबंधी कोई राजकीय घोषणा नहीं हुई है किंतु यह स्थान हिंदी को जनमानस द्वारा ही दिया गया है साथ ही भारत में हिंदी को बोलने और समझने वाले कुल जनसंख्या में 57.9% हैं। राष्ट्रभाषा केवल जनमानस को जोड़ने भर का कार्य नही करती अपितु ये राष्ट्रीय अस्मिता की संवाहक भी है। स्वतंत्रता आंदोलन के समय इसी हिंदी भाषा ने राष्ट्रीय एकता के संवर्धन के लिए जनसंपर्क के जैसे महत्वपूर्ण कार्य का भी निर्वहन किया था क्योंकि हिंदी भाषा देश की जनता को जोड़ने वाली रही है इसीलिए इसे संपर्क भाषा भी कहा जाता है। दूसरे शब्दों में 'राष्ट्रभाषा' में ही जनसंपर्क को स्थापित और उसको संवर्धित करने की शक्ति है। हिंदी भाषा जहाँ एक ओर देश की अन्य भाषाओं के साथ

संपर्क स्थापित करती और वहीं दूसरी ओर यह देश की सामाजिक संस्कृति की अभिव्यक्ति का माध्यम भी बनती है। अत: इसके प्रचार-प्रसार में समाज के प्रत्येक वर्ग को अपना योगदान देना चाहिए। यद्यपि स्वैच्छिक संस्थाएँ हिंदी के प्रचार-प्रसार में लगी हैं। रेडियो, दूरदर्शन आदि माध्यम भी हिंदी के प्रचार-प्रसार में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर रहे हैं। साथ ही साहित्य अकादमी, भारत सरकार का प्रकाशन विभाग, हिंदी अकादमी या प्रचार सभा आदि हिंदी भाषा और साहित्य के प्रचार में लगी हैं। फिर भी इस क्षेत्र में जितना अधिक कार्य होना चाहिए उतना कार्य अभी नहीं हो पाया है।

प्रयोजनमूलक हिंदी- प्रयोजन का शाब्दिक अर्थ है किसी का उद्देश्य, जिस भाषा का प्रयोग किसी विशेष प्रयोजन की सिद्धि के लिए किया जाता है। उसे 'प्रयोजनमूलक भाषा' कहा जाता है। हिंदी भाषा में यह प्रयोजनमूलक शब्द (फंक्शनल लैंग्वेज) के पर्याय के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। जिसका आशय है जीवन की विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रयोग में होने वाली भाषा। इस रूप में इसका क्षेत्र संकुचित और सीमित हो जाता है। इसका उद्देश्य भाषा को जीविकोपार्जन का साधन बनाना होता है क्योंकि वर्तमान में भाषा केवल साहित्य तक सीमित नहीं है अपितु भाषा का प्रयोग पत्रकारिता, बैंक, प्रशासन, विधि आदि विभिन्न क्षेत्रों में हो रहा है। 'प्रयोजनमूलक भाषा' का मुख्य उद्देश्य किसी भी भाषा को विकसित करना तथा उसके माध्यम से कार्य को आगे बढ़ाना होता है। विभिन्न व्यवसायों से संबंधित व्यक्तियों जैसे पत्रकार, वकील, डॉक्टर, व्यापारी, वैज्ञानिक, अधिकारियों के द्वारा जिस भाषा का बहुतायत में प्रयोग किया जाता है, उसे 'प्रयोजनमूलक भाषा' कहा जा सकता है। वर्तमान समय में हिंदी भाषा के प्रयोजनमूलक स्वरूप का ही सबसे अधिक प्रयोग किया जा रहा है। इसीलिए कुछ विद्वान इसे 'कामकाजी हिंदी' और 'व्यावहारिक हिंदी' भी कहते हैं। डॉ कैलाश चंद्र भाटिया इसे 'कामकाजी हिंदी' कहते हैं तथा रमा प्रसन्न नायक इसके कार्य के स्वरूप को देखते हुए इसे 'व्यावहारिक हिंदी' कहना उचित मानते हैं। इसके विपरीत विद्वानों का दूसरा वर्ग इसे 'प्रयोजनमूलक हिंदी' कहने के पक्ष में है विशेष रूप से श्री मोहन टूरी सत्यनारायण, डॉक्टर बृजेश वर्मा का नाम आता है। 'प्रयोजनमूलक हिंदी' को विभिन्न भागों में बांटा जा सकता है। पहला है कार्यालयीय प्रयोजनमूलक हिंदी भाषा, इससे अभिप्राय प्रशासनिक क्षेत्र में प्रयुक्त हिंदी से है। इसे 'कार्यालयीय प्रयोजनमूलक हिंदी' इसलिए कहा जाता है क्योंकि यह सरकारी और सार्वजनिक क्षेत्रों के कार्यालय के कामकाज से संबंध रखती है। सरकारी कार्यालयों में हिंदी के प्रयोग पर बल स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही दिया जाने लगा क्योंकि उस समय यह अनुभव किया गया कि स्वतंत्र देश की राजभाषा हिंदी होनी चाहिए ना कि अंग्रेजी, लेकिन सरकारी कार्यालयों में कामकाज की जो प्रणाली स्वीकार की गई उसका स्वरूप अंग्रेजी शासन व्यवस्था के समान ही रहा। परिणामस्वरूप सरकारी कार्यालयों में हिंदी का प्रयोग करने के लिए अनुवाद की पर्याप्त सहायता ली गई। इस प्रकार सरकारी कार्यालयों के कार्यों ने हिंदी के विकास में अनुवाद की भूमिका रही है। कार्यालय की भाषा में हम तकनीकी शब्दों का प्रयोग ज्यादा करते हैं। जिन्हें हम सामान्य बातचीत में प्रयोग नहीं करते हैं जैसे अग्रेषित, संज्ञान, संस्तुत, विचाराधीन इत्यादि।

व्यापार के क्षेत्र में हिंदी- व्यापार के क्षेत्र में हिंदी की उपयोगिता प्रतिदिन ही बढ़ती जा रही है। इसका कारण यह है कि इस क्षेत्र का संबंध समाज के सभी वर्गों से होता है। इससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण पक्ष है हिंदी भाषा का विस्तार भी व्यापारिक कार्यों में प्रयोग से ही हो रहा है क्योंकि व्यापार का स्वरूप अंतरदेशीय और अंतरराष्ट्रीय भी होता है। अत: व्यापार के क्षेत्र में हमेशा से एक ऐसी संपर्क भाषा की आवश्यकता महसूस की जाती रही है जो पारस्परिक संप्रेषण में सहायक हो सके। हिंदी भाषा लंबे समय से देश की संपर्क भाषा के रूप में व्यवहार में लाई जा रही है। यही कारण है कि व्यापार के क्षेत्र में हिंदी का प्रयोग हमें पर्याप्त मात्रा में दिखाई देगा। कुछ उदहारण देखकर ही ज्ञात किया जा सकता है जैसे 'दलहन नरम', 'सोना लुढ़का', 'जीरे का दाम भड़का' इत्यादि।

विधि के क्षेत्र में हिंदी- स्वतंत्रता के बाद जब हिंदी को राजभाषा का स्थान दिया गया तो उसे विधि एवं न्याय व्यवस्था में भी अपनाने पर विचार किया गया। इसके लिए हिंदी के विदेश निवेश शब्दावली का

निर्माण किया गया। शब्द निर्माण का आधार अंग्रेजी को बनाया गया तथा उनके शब्द हिंदी पर्याय संस्कृत तथा अरबी-फारसी भाषा से ग्रहण किए गए। वर्तमान समय में सरकारी कार्यालयों में हिंदी भाषा का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में किया जा रहा है परंतु न्यायालय में हिंदी भाषा के प्रयोग करने की आवश्यकता है विशेष रूप से उच्च और सर्वोच्च न्यायलय में। हम न्यायलयों में प्रयुक्त शब्दों को देखकर अरबी-फारसी शब्दों का प्रभाव स्पष्ट रूप से देख सकते हैं। राजभाषा आयोग ने विधि के क्षेत्र में हिंदी को स्थापित करने के लिए महत्वपूर्ण योगदान दिया है। न्यायालय में प्रयोग होने वाली शब्दावली के उदाहरण अंजुमन (सभा या संस्था) सनद (प्रमाण पत्र) हिनाहमात (आजीवन) तस्फिया (समझौता या आपस में निपटना)।

विज्ञान के क्षेत्र में हिंदी- आजकल विज्ञान के क्षेत्र में भी हिंदी भाषा का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में किया जा रहा है। विज्ञान के जिन क्षेत्रों के अंतर्गत हिंदी भाषा का प्रयोग किया जाता है। उनमें रसायन, भौतिकी, वनस्पति शास्त्र, इंजीनियरिंग, कंप्यूटर विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान आदि प्रमुख रूप से आते हैं। इस क्षेत्र में प्रयुक्त शब्दावली, वाक्य संरचना और भाषा का स्वरूप आमतौर पर विवरणात्मक होता है क्योंकि इसमें भाषा का उद्देश्य मुख्य रूप से किसी वस्तु व्यक्ति के बारे में सूचना देना होता है, जैसे वैध्य शाला, वाष्पीकरण, विलयन, संकेंद्रण इत्यादि।

संचार के क्षेत्र में हिंदी- संचार माध्यमों में विशेष रूप से अखबार, रेडियो एवं दूरदर्शन में हिंदी भाषा का पर्याप्त मात्रा में प्रयोग होता है। वैज्ञानिक प्रगति के साथ संचार क्षेत्र में एक क्रांति आई है। इस क्षेत्र में व्यापकता का समावेश हुआ है। आज इस बात पर पर्याप्त बल दिया जा रहा है कि संसार में सबसे अधिक प्रचलित माध्यम से अखबार, रेडियो तथा दूरदर्शन किस प्रकार से कार्य करें? प्रचार और जनसंपर्क के लिए भाषा कैसे बनाई जाए? कैसे प्रभावी संचार स्थापित किया जाए? हिंदी भाषा इन कार्यों में काफी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर रही है उदाहरण के लिए अखबारों में प्रयुक्त होने वाले शब्द हैं जैसे स्कूल, टीचरों, महकमा, हड़ताल इत्यादि।

निष्कर्ष - हिंदी भाषा के विविध रूपों पर चर्चा के उपरांत एक बात सुस्पष्ट है कि हिंदी केवल विचारों के आदान-प्रदान का साधन मात्र नहीं है। इसमें भाषाई विशेषताओं के अतिरिक्त, भारतीय समाज में भाषा के बोलने को लेकर हो रहे परिवर्तनों की स्पष्ट झलक दिखाई देती है। एक शोधकर्ता के रूप में हिंदी भाषा के और अन्य रूपों पर प्रकाश डालने की आवश्यकता है। जिससे इसके महत्व को जनमानस तक पहुँचाने में सहायता मिले।

संदर्भ ग्रंथ सूची

(1) सं.र.ना. श्रीवास्तव, प्रयोजनमूलक हिंदी: चर्चा परिचर्चा 1974, आगरा।

(2) कंसल हरिबाबू, बंधु सुधांशु, 1991, राजभाषा हिंदी: संघर्षों के बीच, नई दिल्ली।

(3) गोदरे विनोद 1991, प्रयोजनमूलक हिंदी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

(4) मंगल उमा, 2007, हिंदी भाषा शिक्षण संस्करण, आर्य बुक डिपो, करोल बाग, नई दिल्ली।

(5) सिंह कर्ण संस्कृत, 2007, शिक्षण विधि संस्करण, एच. पी. भार्गव बुक हाउस, आगरा।

(6) कुमार ज्ञानेंद्र हिंदी, 2017, भाषा शिक्षण संस्करण, प्रगतिशील प्रकाशन, नई दिल्ली।

(7) शर्मा भूषण, 2017, शिक्षा समाज और राजनीति, कौटिल्य प्रकाशन, नई दिल्ली।

– असिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

❑❑❑

भारतीय भाषा चिंतन की परंपरा

डॉ. कृष्णा शर्मा

'भाषा' मनुष्य को ईश्वर का संभवतः सबसे खूबसूरत वरदान है, यही नहीं मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं में भाषा उतनी ही महत्वपूर्ण और अनिवार्य है जितनी अन्य आवश्यकताएँ। भारतीय मनीषा के एकदम आरंभिक विमर्श में भाषा के प्रति एक खास तरह की सजगता और संवेदनशीलता दृष्टिगत होती है। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र से लेकर पाणिनि के अष्टाध्यायी तक हमारा भाषा चिंतन भाषा के सूक्ष्म से सूक्ष्म स्तरों तक पहुँच चुका था। जिसकी स्वीकृति पाश्चात्य भाषाविद् सर विलियम जोन्स तक करते हैं। जब वे स्पष्ट कहते हैं "भारत द्वारा विद्याविज्ञान (इंडोलॉजी) एवं भाषाशास्त्र (फिलोलॉजी) के सूत्रपात के हम ऋणी हैं। क्योंकि आधुनिक भाषा विज्ञान का विकास हम इन्हीं आधारों पर कर सके।" इसी प्रकार जूलिस ब्लॉक का नाम भी लिया जा सकता है, जिन्होंने आर्यभाषाओं का वैदिक भाषा से लेकर आधुनिक बोली तक का ऐतिहासिक अध्ययन किया।

पाणिनि की अष्टाध्यायी में ही वास्तव में भारतीय चिंतन के मूल तत्व उपस्थित हैं। पाणिनि की अष्टाध्यायी में ही समूचा विमर्श सूत्रात्मक उपस्थित है। सूत्र पद्धति में प्रस्तुत विमर्श वास्तव में भारतीय भाषा चिंतन की उस परंपरा की ओर इंगित करता है जिसमें आधुनिक भाषा चिंतन के बीज निहित हैं। विद्यानिवास मिश्र का पाणिनि की अष्टाध्यायी का अत्यधिक व्यवस्थित अध्ययन प्राचीन भारतीय चिंतन के बहुत से रहस्यों को एकदम खोल कर रख देता है। "पाणिनि की अष्टाध्यायी सूत्रबद्ध है। इसलिए उसमें सैद्धांतिक प्रतिपादन गम्य है। कुछ को तो उनके टीकाकारों की व्याख्याओं और बहुत कुछ पाणिनि अष्टाध्यायी की आंतरिक संगति में ढूँढ़ा जा सकता है। पाणिनि प्रेषणीय उक्ति खंड़ को शब्द संज्ञा देते हैं। इसके अंतर्गत वाक्य भी हैं। क्योंकि पद का वाक्य से प्रविवेक तात्विक नहीं विश्लेषण के लिए कल्पित है। वाक्य को शब्द की संज्ञा देना यह घोषित करता है कि वाच्य जो शब्द संज्ञा नहीं है शब्द की उक्ति से प्रकाश्यमान अर्थ है और शब्द तथा अर्थ में वाच्य वाचक भाव संबंध है।"[1]

पिछली शताब्दी के सातवें आठवें दशक में नए विमर्शों संरचनावाद, उत्तर संरचनावाद, अर्थ विज्ञान, विसरंचना इत्यादि की शुरुआती स्थिति देखी जा सकती है कुछ मायने में ये बिल्कुल नए दृष्टिबोध का संकेत करते हैं। लेकिन सच्चाई यह भी है कि भारतीय भाषा चिंतन की यह मूलभूत मान्यता ही है कि मनुष्य के लिए कोई भी बोध अथवा ज्ञान भाषा के कारण ही संभव होता है। शब्द और अर्थ की समन्विति से ही भाषा बनती है। एक बहुत ही प्रसिद्ध लोक कहावत है- जो सुनि परै सो सबद है, समुझि परै सो अर्थ। यानी जो सुना जाता है वह शब्द और जो समझा जाता है वह अर्थ है। एक समय भामह ने काव्य की परिभाषा कुछ ऐसी ही की थी- 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्' अर्थात् यह एकदम स्पष्ट है कि शब्द और अर्थ की संहति की अवधारणा भारतीय वाङ्मय में हमेशा से और सर्वस्वीकृत ही है।

पंतजलि ने महाभाष्य में पदार्थों का बोध कराने वाली ध्वनि को शब्द की संज्ञा दी। शब्द का प्रयोग

वस्तुतः एक छवि का बोध कराने के लिए होता है जिसे अर्थ कहा जा सकता है। इस प्रकार शब्द बोधक है और अर्थ बोध्य। भामह की 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्' की मान्यता को ही कालिदास ने रघुवंशम् में स्वीकार किया और गोस्वामी तुलसीदास ने रामचतिमानस में "काव्यशास्त्र में शब्दार्थौ सहितौ काव्यम् आदि रूपों में शब्द अर्थ की परस्पर संबद्धता स्वीकृत से बढ़कर अपेक्षित है वहीं, साहित्यकारों द्वारा वह अभ्यर्थित भी है। रघुवंश के प्रथम श्लोक पार्वती शिव की संबद्धता को वाक् (शब्द) अर्थ की संबद्धता (सम्पृक्ति) से उपमित करने वाले कालिदास हों या सीता-राम की अभिन्नता को गिरा (वाक्) अरथ (अर्थ) की अभिन्नता से उपमित करने वाले तुलसीदास- दोनों वाक्तत्व के मर्मस्पर्शी ज्ञाता हैं।"[2] लेकिन सच और भी है कि आधुनिक भाषा विज्ञान के विमर्श में पश्चिमी भाषाविदों का एक तरह से वर्चस्व रहा है। आज भाषा विज्ञान के अंतर्गत भाषा अध्ययन के विभिन्न आयामों के संदर्भ में नवीन उद्भावनाओं का श्रेय सस्सूर, चॉम्स्की, विलियम, लेबाव डेल हाइम्स और एम. ए. होलिडे जैसे पश्चिमी भाषाविदों को जाता है। सस्यूर ने भाषा विज्ञान में प्रतीक सिद्धांत की उद्भावना की। उन्होंने भाषा की प्रकृति को लेकर नए प्रश्न उठाकर भाषा विज्ञान की नई सैद्धांतिक पीठिका तैयार की। सस्यूर का भाषा चिंतन दरअसल उनके दिए गए व्याख्यानों, जिन्हें बाद में 'कोर्स द लिंग्विस्टिक्स जर्नल' नाम से पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित किया गया, में निहित है। सस्यूर ने यूरोपीय भाषाओं की स्वर व्यवस्था से अपने भाषा अध्ययन की शुरुआत की और इसी अध्ययन क्रम के दौरान उन्होंने भाषा में प्रतीकों की व्यवस्था की ओर संकेत किया। उनके समूचे चिंतन का सूत्र था कि भाषा मूलतः प्रतीकों की व्यवस्था है, इसलिए प्रतीकों के रहस्य और अध्ययन के बिना भाषा की मूल प्रकृति को नहीं समझा जा सकता। सस्यूर की सबसे महत्वपूर्ण स्थापना यह थी कि उन्होंने भाषा को व्यवस्था के साथ-साथ व्यवहार माना "भाषा एक मानवीय व्यवहार है। भाषा एक तरफ संस्थागत है तो दूसरी तरफ निरंतर परिवर्तनशील भी।"

सस्यूर को यदि आधुनिक भाषा का जनक कहा जाता है तो चॉम्स्की को भाषा विज्ञान का मास्टर माइंड कहा जाता है। चॉम्स्की ने साफ-साफ शब्दों में कहा कि किसी भाषा विज्ञान की व्याकरणिक संरचना से कहीं महत्वपूर्ण और आवश्यक है सभी भाषाओं की मूल प्रकृति को जानना। उनके अनुसार भाषा अपनी आंतरिक प्रकृति में मानव मन का दर्पण है और इसलिए सार्वभौम व्याकरण का अध्ययन होना चाहिए। इसी प्रकार बोआस ने जिन पुस्तकों का अध्ययन किया वे सर्वथा अज्ञात थीं और लिखित रूप में उपलब्ध नहीं थीं। पहले उनका कोई अध्ययन नहीं हुआ था। बोआस का लक्ष्य था वाक् क्रिया को एकमात्र आधार मानकर उन भाषाओं की संरचना को समझना, इस प्रकार भाषा का संरचनात्मक विवरण प्रस्तुत करना वर्णनात्मक भाषा विज्ञान का महत्वपूर्ण काम हो गया। इसे संरचनात्मक भाषा विज्ञान भी कहा गया है। इसी क्रम में लियोनार्ड ब्लूमफील्ड ने भाषा विज्ञान के क्षेत्र में वर्णनात्मक भाषा विज्ञान अथवा संरचनात्मक भाषा विज्ञान की पुस्तक भाषा (लैंग्वेज) का विशेष योगदान है। ब्लूमफील्ड पर व्यवहारवादी मनोविज्ञान का प्रभाव था। सामाजिक व्यवहार की तरह ही भाषा की उक्तियों को वे वाक् व्यापार (स्पीच इवेंट्स) मानते थे। उनके अनुसार भाषा मूलतः उच्चरित होती है लिखित रूप भाषा नहीं है। उनके भाषिक अध्ययन का क्षेत्र वाक् व्यापार है, अर्थ नहीं। उनका मानना है कि अर्थ मन में होता है उसका भौतिक परीक्षण संभव नहीं।

भाषा विज्ञान में एक और पद्धति का विकास हुआ जिसे 'टैग्मीमिक्स' कहा गया। जिसे अमरीका के महत्वपूर्ण भाषा वैज्ञानिक केनेथ ली पाइक ध्वनि से वाक्य तक के रचनागत अधिक्रम या ऊर्ध्वाधरक्रम (हायररकी) वाले व्याकरणों को टैक्सोनोमिक ग्रामर कहा जाता है। इसी परंपरा में ब्लूमफील्ड के व्याकण में सुधार करते हुए केनेथ पाइक ने अपने ढंग से व्याकरण की रूपरेखा प्रस्तुत की। एडवर्ड सपीर ने भाषा के यांत्रिक और तकनीकी पद्धति से होने वाले अध्ययन को नकार दिया। वे वक्ता की भाषिक चेतना को महत्व देते हैं। इस प्रकार ब्लूमफील्ड की व्यवहारवादी अथवा यांत्रिक पद्धति के विपरीत उन्होंने मेंटिलस्टिक पद्धति अपनाई। यह भाषा और मस्तिष्क के बीच के संबंध को व्याख्यायित करती है।

चॉम्स्की की पुस्तक 'आस्पेक्ट्स ऑफ द थ्योरी ऑफ सिंटेक्स' ने भाषा विज्ञान के क्षेत्र में नई सोच का

सूत्रपात किया। चोम्स्की की मान्यताओं पर प्रश्न भी बहुत उठाए गए किंतु उनका भाषा चिंतन भाषा विज्ञान के क्षेत्र में विचार की नई सरणियों को खोलता है– इसे बिल्कुल भी नकारा नहीं जा सकता। चोम्स्की ने यह स्पष्ट रूप से कहा कि भाषा सिर्फ एक व्यवहार भर नहीं है, बल्कि एक निश्चित व्यवस्था में बंधी हुई भी है। चॉम्स्की का विरोध भी स्वाभाविक है किंतु आज भी भाषा विज्ञान काफी कुछ उनकी मान्याताओं के इर्द-गिर्द ही है।

भाषा विज्ञान के क्षेत्र में चोम्स्की का काफी प्रभाव पड़ा। दूसरी विचारधाराएँ उनके प्रभाव में प्रायः खत्म हो गईं। भाषिक विश्लेषण के क्षेत्र में पूरे विश्व में उनके मॉडल पर काफी काम हुआ। भाषा विज्ञान के क्षेत्र में उनके प्रभाव को देखते हुए साठ के दशक से अब तक के युग को चोम्स्की युग कहें तो अतिश्योक्ति नहीं होगी।

विलियम लेबाव ने प्रायोगिक समाज भाषा विज्ञान की आधारशिला रखी तो हेलिडे ने वाक्भेद (स्पीच वैरायटी) का व्यापक अध्ययन किया। डेल हाइम्स ने भाषा और संस्कृति के बीच गहरा संबंध देखा और इस संबंध को रेखांकित करते हुए यह स्पष्ट किया कि किसी भी भाषा में अंतर्निहित सांस्कृतिक तत्व के कारण ही उस भाषा-भाषी की अलग या विशिष्ट पहचान का कारण बनते हैं। हाइम्स ने भाषा को इसलिए मात्र सामाजिक संप्रेषण न मानते हुए उसे ऐंथ्रोपोलोजी से संबद्ध माना है। डेज हाइम्स की पुस्तक 'लैंग्वेज इन कल्चर एंड सोसायटी: ए रीडर इन लिंग्विस्टिक्स एंड ऐंथ्रोपोलोजी' भाषा और संस्कृति के अंतर्संबंधों को इतनी सूक्ष्मता से रूपायित करती है कि उनसे असहमत होना मुश्किल लगता है। उनकी एकदम स्पष्ट मान्यता रही है कि विश्व के प्रत्येक भाषा समाज की उसके भाषा प्रयोग में सांस्कृतिक विशिष्टता अनिवार्यतः विद्यमान होती है। किसी भी भाषा में साहित्य दर्शन और ज्ञान-विज्ञान का विश्लेषण भाषा के साथ-साथ वहाँ की संस्कृति को जाने बिना नहीं समझा जा सकता।

इन पाश्चात्य भाषाविदों के उल्लेख का तात्पर्य यह कदापि नहीं समझना चाहिए कि भारतीय मेधा भाषा वैज्ञानिक अध्ययन विश्लेषण में एकदम मूक रही है। डॉ. धीरेंद्र वर्मा 1934 में भाषा विज्ञान के अध्ययन के लिए पेरिस गए और सुप्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक ज्यूलव्लॉख के निर्देशन में 'डी. लिट' की उपाधि प्राप्त की। उनकी पुस्तकें 'हिंदी भाषा और लिपि' आज भी अपने क्षेत्र में मानक ग्रंथ के रूप में समादृत हैं।

डॉ. धीरेंद्र वर्मा ने हिंदी की बोलियों और उनके स्वरूप क्षेत्र और विस्तार पर तो अध्ययन किया ही साथ ही उन्होनें देशी शब्दों की स्वीकार्यता पर भी बल दिया। उन्होंने विदेशी शब्दों को अपनी भाषा की ध्वनि व्यवस्था के अनुरूप आवश्यकतानुसार परिवर्तन करके अपनी भाषा में व्यवहार करने की नीति सामने रखी। टेक्नीक और एकेडमिक जैसे शब्द संभवतः इसी सोच के कारण हिंदी में तकनीक और अकादमिक जैसे रूप में अब व्यापक स्वीकृति पा चुके हैं।

रामविलास की ख्याति साहित्येतिहास लेखक और समालोचक के रूप में तो है ही किंतु उनका भाषा चिंतन एकदम मौलिक उद्भावनाओं को उद्घाटित करने वाला है। उनकी पुस्तक 'भाषा और समाज' सन् 1961 में तब आ गई थी, जब तक समाज में भाषा विज्ञान पर ढंग से सोचना भी शुरू नहीं किया था। 'भारत की भाषा समस्या' और 'भारत की प्राचीन भाषा परिवार और हिंदी' ने भारत में भाषा विज्ञान के अध्ययन विश्लेषण के नए वातायन खोल दिए। इसी संदर्भ में आचार्य देवेंद्रनाथ शर्मा की 'भाषा विज्ञान की भूमिका' का नाम भी लिया जाना चाहिए। जिन्होनें भाषा विज्ञान के भारतीय संदर्भ को रेखांकित किया। डॉ. शर्मा ने अपने गंभीर विवचेन से यह प्रमाणित करके दिखाया कि आधुनिक भाषा चिंतन के मूल तत्व समांतर रूप से भारतीय भाषा शास्त्र में उपलब्ध हैं। विद्यानिवास मिश्र सामान्यतः ललित निबंधकार के रूप में माने जाते हैं। उनकी कृति 'रीतिविज्ञान' भाषा अध्ययन के क्षेत्र में एक नया प्रस्थान बिंदु कही जा सकती है। यह पुस्तक इस दृष्टि से भी महत्व रखती है, क्योंकि इससे मिश्र जी ने पाश्चात्य संकल्पना शैली के स्थान पर भारतीय मनीषा की रीति की अवधारणा को अधिक व्यवस्थित, वैज्ञानिक एवं समीचीन प्रमाणित किया। पश्चिम के आधुनिक शैली वैज्ञानिक अध्ययन के भारतीय चिंतन में रीति एवं कृति की व्यापकता का उनका विश्लेषण वास्तव में नया आयाम खोलने वाला है। मिश्र जी की इससे पहले सन् 1966 में ही 'द डिस्क्रिप्टिव टेक्नीक ऑफ पाणिनि : एन ईंट्रोडक्शन' आई थी जो पाणिनि के महत्व को समझने का सबसे गंभीर प्रयास है।

भारतीय भाषा चिंतन में स्फोटवाद के सिद्धांत का महत्व निर्विवाद है। यद्यपि स्फोट सिद्धांत को किंचित आचार्य पाणिनि से भी पहले का मानते हैं। किंतु उसका कोई प्रत्यक्ष प्रमाण उपलब्ध नहीं है, केवल अनुमान के आधार पर किसी मान्यता को मानना समीचीन नहीं है। पतंजलि को ही स्फोट सिद्धांत का उद्भावक मानना चाहिए। हाँ यह ठीक है कि भर्तहरि के वाक्यपदीयम् में यह सिद्धांत पूर्ण स्पष्टता के साथ उपलब्ध होता है। इस तथ्य को स्वीकारने में किसी को लेशमात्र भी हिचक नहीं होनी चाहिए कि आधुनिक भाषा विज्ञान का पाश्चात्य विमर्श भी भारतीय आचार्यों के भाषा चिंतन से स्पष्टत: प्रभावित रहा है। सुविख्यात भाषा वैज्ञानिक रवींद्रनाथ श्रीवास्तव के शब्दों में "आधुनिक भाषा विज्ञान अपने सैद्धांतिक संदर्भ और विश्लेषणात्मक प्रणाली में भारतीय आचार्यों का पूर्णतया ऋणी है। अभी इस दिशा में पूरी तरह शोध नहीं हुआ है पर विद्वानों ने इन तथ्यों की ओर स्पष्ट संकेत दिए हैं। 'भाषा विज्ञान का संक्षिप्त इतिहास' लिखने वाले रॉबिन्स का यह कथन है कि स्वनिम विश्लेषण और स्वनिमीय व्यवस्था तथा व्याकरणिक अध्ययन के अनेक संदर्भों में प्राचीन भारतीय वैयाकरण न केवल समकालीन यूरोप के विद्वानों से अधिक आगे थे, बल्कि प्राचीन भारतीय आचार्यों की वैज्ञानिक दृष्टि ने आधुनिक भाषा विज्ञान को एक ठोस आधार भी प्रदान किया है। प्रसिद्ध भाषाशास्त्री ब्लूमफील्ड ने तो पाणिनि की अष्टाध्यायी को मानव मेधा का अपूर्व दीपस्तम्भ कहा है।"[3]

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. भारतीय भाषा दर्शन की पीठिका – विद्यानिवास मिश्र, भाषा संस्कृति और लोक – पृ. – 20

2. गवेषणा – अंक 93, गिरा अरथ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न – रवींद्र कुमार पाठक – पृ. – 116

3. भाषा संस्कृत और लोक – सं. दयानिधि मिश्र, आधुनिक भाषा विज्ञान और भारतीय भाषा चिंतन – रवींद्रनाथ श्रीवास्तव – पृ. – 31

– एफ–2201, सनशाइन हेलियोस सोसाइटी, सेक्टर–78, नोएडा, उत्तर प्रदेश

❑❑❑

सामाजिक सौहार्द की सुदृढ़ आधार है- हिंदी

डॉ. रामभवन सिंह ठाकुर

भारतीय भाषाओं में अग्रणी, देश के सबसे बड़े भू-भाग में बोली जाने वाली, राष्ट्र की समग्र सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक और वैज्ञानिक चेतना जगाने वाली राष्ट्रभाषा-राजभाषा की गाथा लिए हुए विचारों का उन्मेष और भावनाओं का गुंजन करती हुई अतीत के गरिमामय ज्ञान भंडार को सुरक्षित रखे हुए है। विविध भारतीय भाषा साहित्यों की माला में हिंदी का स्थान, उन्हें जोड़ने वाले सूत्र के सदृश्य है। वह भारतीय साहित्य को एकसूत्र में पिरोने की दिशा में महान योगदान देती आ रही है एवं इसी प्रकार देशीय जीवन और भारतीय संस्कृति का संरक्षण कर रही है। इसी देश की जमीं पर जन्मी, फली-फूली, बढ़ी, जन-जन की कंठहार बनी, सत्यम्-शिवम्-सुंदरम् की अनुपम तस्वीर, सकल ज्ञान की खान, सबकी शान, सामाजिक सौहार्द की सुदृढ़ आधार है हिंदी। समता, ममता की सागर राष्ट्र की पहचान है हिंदी। भारत की अंतरात्मा है हिंदी।

साहित्य, संस्कृति का संवाहक है। राजभाषा हिंदी इस दिशा में जो प्रशंसनीय सेवा कर रही है, वह अतुलनीय है। यह जानकर किसे आश्यर्च नहीं होगा कि असम, केरल और कच्छ जैसे प्रदेशों तथा उत्तर भारत, दक्षिण भारत के संतों, महात्माओं, चिंतकों और कवियों, लेखकों ने अपनी अनुभूतियों को देशव्यापी बनाने की दृष्टि से हिंदी को अथवा हिंदी की बोलियों को ही अपनाया है। इतिहास साक्षी है कि हमारे देश की बाह्य विभिन्नता होते हुए भी यहाँ आंतरिक एकता, सामाजिक सौहार्द स्थापित करने का कार्य हिंदी साहित्य आदिकाल से ही करता आ रहा है। उद्भव काल में हिंदी संपूर्ण राष्ट्र में काम चलाऊ भाषा थी परंतु संतों के देशव्यापी भ्रमण एवं शास्त्रार्थ ने हिंदी को जन-जन की भाषा बना दिया एवं उसके विकास में कवियों, लेखकों, कहानीकारों, उपन्यासकारों, नाटककारों, साहित्यकारों, पत्र-पत्रिकाओं एवं आकाशवाणी, दूरदर्शन आदि संचार माध्यमों का विशेष योगदान रहा है।

हमारी मातृभाषा, राष्ट्रभाषा, राजभाषा हिंदी सभी प्राणियों के सुखी, निरोग एवं कल्याण की भावना से ओत-प्रोत है, वह किसी को भी दुःखी नहीं देखना चाहती है।

सर्वे भवंतु सुखिनः, सर्वे संतु निरामयाः।

सर्वे भद्राणि पश्यंतु, मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत।।

यह उसकी अपनी विशेषता है, जिससे हम आज भी गौरवान्वित हैं। समस्त मानवजाति में समानता, सौहार्द, एकता की गहन अनुभूति से परिपूर्ण हिंदी साहित्य अपने आप में अनूठा है, जो कि भारतीय संस्कृति का सशक्त संवाहक है तथा भारतीय संस्कृति अत्यंत सहिष्णु एवं उदार है। इसने विधर्मी, विदेशियों से भी कभी विद्वेष नहीं किया है और यही कारण है कि आज तक यहाँ कि संस्कृति पर कोई रंग नहीं चढ़ा और अपनी पहचान अक्षुण्ण बनाए हुए है।

ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रमुख कवि संत कबीर ने स्पष्ट रूप से न तो अपने आपको हिंदू होने की घोषणा की और न मुसलमान होने की। वे सांप्रदायिकता एवं जातीय भेद-भाव के प्रबल विरोधी थे। उन्होंने कहा भी है-

जाति न पूछो साधु की, पूछि लीजिए ज्ञान।

मोल करो तलवार का, पड़ी रहन दो म्यान।।

वे राग-द्वेष, ऊँच-नीच जैसे संकीर्ण भावों से परे सबका कल्याण चाहते थे, वे सर्वधर्म समभाव के समर्थक थे-

कबिरा खड़ा बाजार में, चाहे सब की खैर।

न काहू से दोस्ती, ना काहू से बैर।।

सिक्ख संप्रदाय के प्रवर्तक नानक साहब भी हिंदू-मुस्लिम के भेद-भाव को नहीं मानते थे। हिंदू महात्माओं, संतों, विद्वानों एवं मुसलमान मनीषियों ने भी दोनों संप्रदायों में भाई-चारे की भावना उद्भूत करने का भगीरथ प्रयास किया है। अमीर खुसरो, जायसी, रहीम एवं रसखान की रचनाएँ इन सबसे ऊपर हिंदी साहित्य एवं भारतीय संस्कृति के गहन अध्ययन, मनन, चिंतन एवं प्रभाव की अभिव्यंजना करती हैं। जहाँ रसखान की रचनाएँ कर्मयोगी भगवान श्रीकृष्ण के प्रति उनकी अगाध भक्ति-भावना का परिचय देती हैं, वहीं ताजबीबी पर तो कृष्ण भक्ति का इतना रंग चढ़ा कि वे मुगलानी होकर भी हिंदवानी होने की कामना करती हैं-

नंद के कुमार, कुरबान तेरी सूरत पे,

हौं तो मुगलानी, हिंदवानी ही रहूँगी।

हिंदी साहित्य के सूर्य महात्मा सूरदास जी भी ऊँच-नीच के भेद-भाव से ऊपर उठकर पारस्परिक प्रेम, सद्भाव को सर्वोच्च स्थान प्रदान करते हैं-

सबसे सौं ऊँची प्रेम सगाई।

प्रेम के बस पारथ रथ हाँक्यों भूलि गए ठकुराई।

राजसु यज्ञ युधिष्ठिर कीन्हें, तानहुँ जूठ उठाई।।

भक्त शिरोमणि तुलसीदास जी तो संपूर्ण जगत को ही राममय देखते हैं, फिर किसी से विरोध करने का प्रश्न ही नहीं उठता है। वे सभी को सीताराम के रूप में देखकर करबद्ध प्रणाम करते हैं-

सियाराम मय सब जग जानी

करहुँ प्रणाम जोरि जुग पानी।।

आधुनिक हिंदी कविता में भारतेंदु हरिश्चंद्र ने सांप्रदायिक एकता स्थापित करने एवं सामाजिक सौहार्द स्थापित करने का सशक्त प्रयास किया है एवं भारत की दुर्दशा के विरुद्ध आवाज बुलंद की है-

हा! हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।

रोअहुँ सब मिलिके, आवहुँ भारत भाई।

एक भारतीय आत्मा दादा माखन लाल चतुर्वेदी मुसलमानों एवं हिंदुओं में कट्टरता के स्थान पर आपसी सद्भाव, अपनत्व के आकांक्षी थे। उनकी हार्दिक कामना थी सांप्रदायिक उन्माद का परित्याग कर सभी भारतवासी मिलकर गर्व से भारतवर्ष का जयघोष करें-

भारत की सच्ची आत्माएँ, आगे बढ़ें उन्हें क्या भय हो।

भारतवासी मिलकर गाएँ, भारतवर्ष तुम्हारी जय हो।।

भारतीय संस्कृति के आख्याता, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने मनुष्यता के लिए परस्पर सौहार्द एवं एकता को अनिवार्य माना है। गुप्त जी की रचनाएँ 'भारत-भारती' एवं 'जय भारत' का भारत की भावनात्मक एकता तथा सामाजिक सौहार्द में महत्वपूर्ण योगदान है।

छायावाद के प्रवर्तक जयंशकर प्रसाद भारत के अद्वैत दर्शन से समग्र मानवता की विजय और सामाजिक सौहार्द की कामना करते हैं। महाप्राण पं. सूर्यकांत त्रिपाठी निराला भी वर्णाश्रम तथा जाति-पाति के भेद-भावों को भुलाकर मानवमात्र में भावनात्मक एकता, सामाजिक सौहार्द के दर्शन करना चाहते है-

सर्व देश सर्व काल, वर्ग जाति धर्म जाल।

हिलमिल सब हों विशाल, एक हृदय अगणित स्वर।।

हालावाद के प्रवर्तक हरिवंशराय बच्चन मानव से मानव में सद्भाव, सामाजिक सौहार्द स्थापित करने के लिए तो मंदिर, मस्जिद, गिरजाघर इन सभी को ध्वस्त करके सभी ग्रंथ जला देना चाहते हैं। श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' मानव से मानव के बीच की दूरी को समाप्त कर मानव जाति के एकत्व एवं सौहार्द की कामना करते हैं-

एक नर से, एक नर के, बीच का व्यवधान।

तोड़ दे जो, बस वही ज्ञानी, वही विद्वान।।

हिंदी सहज, सरल एवं व्यापक संपूर्ण भाषा है, पर्याप्त शब्दकोश है। इसमें हमारी संवेदनाओं को अभिव्यक्त करने का सामर्थ्य तथा लयबद्धता है, भरपूर साहित्य है, जिसके संवाद अपना एक विशिष्ट स्थान रखते हैं। हिंदी ने अपनी मौलिकता एवं सुबोधता के बल पर ही राष्ट्र की सभ्यता, संस्कृति और साहित्य को जीवंत बनाए रखा है तथा संपूर्ण राष्ट्र को एकसूत्र में बँधा महसूस कराती रहती है एवं अनेकता में एकता के दर्शन कराती है तथा विभिन्न धर्मावलंबियों, संप्रदायों, पंथों में सामंजस्य स्थापित कर सामाजिक सौहार्द बनाए रखने का अभूतपूर्व कार्य करती है। हम जितना अच्छा हिंदी में सोचते-विचारते एवं अभिव्यक्त करते हैं, उतना अच्छा अन्य किसी भाषा में नहीं कर सकते हैं। यह विविध विधाओं की उद्गम एवं अंतरात्मा की सरगम तथा भावों की उर्मिल संप्रेषणी है।

राष्ट्रभाषा, राजभाषा हिंदी हमारे स्वप्नों, कल्पनाओं और आकांक्षाओं की भाषा है, इससे ही हम सुसंस्कृत और सभ्य बन सकते हैं। संस्कार, संस्कृति, आचार-विचार, आचरण, व्यवहार, नैतिकता अपनी भाषा से ही संभव है। इसमें भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता की वह सुगंध समाई हुई है, जिसके आकर्षण में संपूर्ण विश्व सुख-शांति का अनुभव करता है। हमारे वेद-पुराण, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, श्रीमद् भागवतगीता आदि ऐसे समृद्ध ग्रंथ हैं, जो सत्य और ईश्वर का, आत्मा से परमात्मा का साक्षात्कार कराते हैं, मानवता का आभास कराकर मानव को मानव बनाने में सहायक सिद्ध होते हैं, जिससे यदि किसी राहगीर को काँटा भी चुभ जाए तो संवेदना अश्रु बनकर छलक पड़ती है। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम का आदर्श, कुँजबिहारी मुरलीधर कर्मयोगी श्रीकृष्ण की वात्सल्यता, गुरु नानक, महावीर स्वामी, गौतम बुद्ध, स्वामी विवेकानंद, दयानंद सरस्वती, महर्षि अरविंद आदि महापुरुषों, के उपदेश एवं हिंदी के महान कवियों के छंदों में मानव सद्भावना, सांप्रदायिक एकता, सर्वधर्म समभाव, सामाजिक सौहार्द की प्राप्ति होती है तथा मन 'मानव-धर्म' की ओर अग्रसर होता है।

हिंदी आज हमारे वैचारिक धरातल का माध्यम ही नहीं, अपितु स्वाधीन, चेतना की भी प्रतीक है। वह हमारे संपूर्ण अनुभवों, संवेदनात्मक अनुभूतियों और सूचनाओं का भी प्रतिनिधित्व करती है तथा भारतीय संस्कृति का आत्म-बोध कराती है। हिंदी का एक अपना स्वर्णिम इतिहास रहा है, इसका साहित्य भंडार इतना विशाल, विपुल, गहन, सारगर्भित, लोकप्रिय होता जा रहा है कि वह विश्व-भाषाओं की चुनौतियों को स्वीकारने के लिए भी तत्पर है। आज विज्ञापनों, पत्र-पत्रिकाओं, आकाशवाणी एवं दूरदर्शन के प्रायः सभी चैनलों में हिंदी छाई हुई है। हिंदी को स्वावलंबी बनाने और उसे हर प्रकार से सहयोग प्रदान करने में हम भारतीयों को गौरव का अनुभव करना चाहिए, तभी वह व्यावहारिक रूप से राजभाषा, राष्ट्रभाषा के सिंहासन पर विराजमान होकर संविधान के अनुसार अपना वास्तविक दर्जा पा सकेगी। स्वामी दयानंद सरस्वती ने हिंदी के महत्व को प्रतिपादित करते हुए कहा भी है कि- "हिंदी के द्वारा ही सारे देश को एकसूत्र में पिरोया जा सकता है।" इसी प्रकार डॉ. जाकिर हुसैन ने हिंदी को "देश की एकता की कड़ी" कहा है।

हिंदी एक सामंजस्य स्थापित करने वाली भाषा है। यह जैसी बोली जाती है, वैसी ही लिखी भी जाती है, इसमें अन्य भाषाओं के शब्दों को समाहित करने का सामर्थ्य भी है। हमें सामाजिक सौहार्द की सुदृढ़ आधार हिंदी के प्रति अपनी भाषा का भाव, सम्मान और स्वाभिमान रखते हुए, इसे उत्कर्ष पर पहुँचाने का सार्थक प्रयास करना चाहिए, ताकि हमारे राष्ट्र की एक अलग पहचान बनी रहे एवं हिंदी एक विश्व-भाषा के रूप में प्रतिष्ठित होकर गौरवान्वित हो सके।

हिंदी हमें आस्तिक, धर्मानुरागी, सदाचारी, मर्यादानुगामी, शिष्टाचारी, परोपकारी, समाजसेवी, जनसेवी, सहनशील, गंभीर, सहृदयी जैसे दिव्य गुणों की ओर उन्मुख करती है एवं सुसंस्कारों से मंडित होने की प्रेरणा देती है, जिससे त्याग, तपस्या की निश्छल भावना उद्भूत होती है और मानव जीवन को सफल बनाने में सहायक सिद्ध होकर मोक्ष के द्वार खोलने का पावन प्रयास करती है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने भी कहा है कि- "राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र गूंगा है।" हमारी राष्ट्रभाषा ज्ञान-विज्ञान से परिपूर्ण है, इसके अक्षर-अक्षर में भावों का भंडार भरा हुआ है।

अक्षर-अक्षर में लगा, भावों का अंबा।
पूर्ण ज्ञान-विज्ञान से, भरा शब्द भंडार।।

समग्रतः हम यही कह सकते हैं कि आधुनिक भारतीय भाषाओं में केवल हिंदी ही एक ऐसी भाषा है, जो अखिल भारतीय स्तर पर प्रचार-प्रसार पा सकी है। संस्कृत के बाद हिंदी ही एकमात्र ऐसी भाषा है, जो विभिन्न भारतीय भाषाओं से तालमेल बिठाते हुए अपनी अस्मिता की पहचान ही नहीं बना पाई है, बल्कि विश्व स्तर पर भी प्रतिस्थापित होने को आतुर है। इसी से 'वसुधैव कुटुंबकम्' की पावन भावना उद्‌भूत हुई है और इसी ने भारतीय संस्कृति को जन-जन तक पहुँचाया है, हमें एकता के सूत्र में बांधे रखा है। संस्कृत भाषा के साहित्यिक, आध्यात्मिक, नैतिक, सामाजिक ग्रंथों की गाथा को भी जन-गण-मन तक पहुँचाने का, प्रचार-प्रसार का अभीष्ट कार्य हिंदी द्‌वारा ही संभव हो रहा है। श्रीमद्‌भागवत पुराण, देवी पुराण, शिव पुराण, सत्यनारायण व्रत कथा आदि इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। डॉ. किशोरी शरण शर्मा ने कहा भी है-

संतों की जिह्‌वा पर बैठी, गढ़ती अनुपम गाथा।
तुलसी, सूर, कबीर-ग्रंथ पर कौन न टेके माथा।।
नदियाँ, झरनों के कल-कल सम, करती मधुमय गान।
हिंदी भारत माँ की वाणी, भारत की पहचान।।

हमारे देश में जो भी श्रेष्ठ है, उत्तम है, वह सब हमारी राष्ट्रभाषा, राजभाषा हिंदी साहित्य के भंडार में संचित है। आचार्य हज़ारी प्रसाद द्‌विवेदी जी ने कहा है कि- "मैं नहीं जानता कि संसार के किसी दूसरे देश में इतने काल तक, इतनी दूरी तक व्याप्त इतने उत्तम मस्तिष्क में विचरण करने वाली कोई भाषा है या नहीं, शायद नहीं है।" हम भी यही कह सकते हैं-

समता-ममता की सागर, राष्ट्र की पहचान है हिंदी।
सामाजिक सौहार्द की सुदृढ़ आधार है हिंदी।।

– विद्‌यावाचस्पति 'रामाश्रम', महाराज बाग, भैरोगंज, सिवनी, मध्य प्रदेश-480661

❑❑❑

सुश्री सुभाशनी लता कुमार से डॉ. विमलेश कांति वर्मा की बातचीत

डॉ. विमलेश कांति वर्मा

रामायण हमारे परिवार को एक दूसरे के नज़दीक लाने का सेतु भी बनी- सुभाशनी लता

(सुभाषनी लता कुमार की गणना फीजी की उन हिंदी सेवियों में हैं जिन्होंने अपने जीवन का लक्ष्य हिंदी अध्ययन और अनुसंधान को बनाया है। फीजी के शिक्षा मंत्रालय के अधीन संचालित प्राथमिक विद्यालय में प्राध्यापक के रूप में कार्य प्रारंभ कर अब वे फीजी नेशनल यूनिवर्सिटी में एक व्याख्याता के रूप में हिंदी अध्यापन कर रही हैं और साथ ही 'फीजी का प्रवासी हिंदी साहित्य' विषय पर पी.एच.डी. उपाधि के लिए शोधरत हैं।)

विमलेश कांति वर्मा- आज कल आप क्या कर रही हैं? कैसे भारत आना हुआ?

सुभाशनी लता कुमार- मेरी मातृभूमि फीजी द्वीप समूह गणराज्य है। यहाँ मैं अपने सास-ससुर, पति और बेटी के साथ केमोड रोड, लौटोका में रहती हूँ। मेरे माता-पिता, भईया-भाभी व उनके बच्चे नांदी में रहते हैं। लौटोका में स्थित फीजी नेशलन यूनिवर्सिटी में मैं हिंदी भाषा व साहित्य की प्राध्यापिका हूँ।

विमलेश कांति वर्मा- आपके परिवार का फीजी आना कैसे हुआ?

सुभाशनी लता कुमार- मेरी परवरिश नांदी शहर के एक छोटे से गाँव में हुई। मेरे आजा एक गिरमिटिया मजदूर थे जो गिरमिट प्रथा के अंतर्गत फीजी आए थे। मेरे आजा गन्ने के खेत में किसान के रूप में काम करते थे। मेरे दादा, काका और पिता जी के पास भी खेती के लिए जमीन थी पर लीज का नवीकरण न होने के कारण हमें किसानी छोड़ नई जगह आकर बसना पड़ा। फीजी द्वीप समूह पर्यटन और प्राकृतिक खूबसूरती के लिए जाना जाता है। यहाँ टूरिज्म इंडस्ट्री आर्थिक व्यवस्था का प्रमुख आधार स्तंभ है। इसलिए जमीन लीज समाप्त होने पर मेरे पिता जी, काका और भाई टूरिज्म इंडस्ट्री में कार्यरत हुए। लेकिन, खेद की बात है कि नई भूमि पर अपना नया घर-संसार बनाते-बनाते मेरे पिता जी ने हमारे गिरमिटिया पूर्वजों की जड़ों के बारे में ज्यादा जानकारी संजोकर नहीं रखी। फीजी में गिरमिट प्रथा के अंतर्गत आए प्रवासी भारतीयों का इतिहास लगभग 141 वर्ष पुराना है। गिरमिट प्रथा की समाप्ति के पश्चात् 60% गिरमिटिया मजदूर फीजी में ही बस गए और उनके वंशज वहाँ जीवनयापन कर रहे हैं। मैं अपने गिमिटिया पूर्वजों की चौथी पीढ़ी में हूँ। आज फीजी में भारतीय मूल के फीजियन जिनकी जन आबादी 37.5% है, जो मुख्य रूप से हिंदी के एक स्थानीय संस्करण 'फीजी हिंदी' बोलते हैं। घर पर हम सब फीजी हिंदी बोलते हैं और फीजी हिंदी ही हमारी मातृभाषा है।

विमलेश कांति वर्मा- तीन आपका हिंदी से जुड़ाव कैसे हुआ?

सुभाशनी लता कुमार- फीजी हिंदी के जरिए ही मैंने मानक हिंदी सीखी है। मेरी हिंदी भाषा के ज्ञान का विस्तार अनौपचारिक रूप से घर पर माता-पिता, परिवार वालों, रेडियो, रामायण मंडलियों द्वारा प्रारंभ हुआ। भाषा और संस्कृति का गहरा संबंध है। फीजी में हिंदी को विकसित करने में धार्मिक-सांस्कृतिक ग्रंथ जैसे

तुलसी की रामचरितमानस की भूमिका महत्वपूर्ण है। हमारे परिवार की भी एक छोटी सी रामायण मंडली थी, जिसका नाम 'दीपक सत्संग रामायण मंडली' था। हमारा पूरा परिवार, मेरे दादा, काका, पिता, भाई-बहन सक्रिय रूप से इसका संचालन करते थे। नियमित रूप से हर मंगलवार की रात रामायण पाठ और कीर्तन के बाद, दादी के हाथों का हलवा-पंजीरी का प्रसाद सभी को पसंद था। इस प्रकार रामायण हमारे परिवार को एक दूसरे के नज़दीक लाने का सेतु भी बनी। पारिवारिक संगठन, एकता और प्रेम की भावना ने हम प्रवासी भारतीयों को एक दूसरे से जोड़े रखा। आज परिवार के सदस्य एक दूसरे से दूर भले हैं, पर प्यार और सम्मान अभी भी बना हुआ है। गोस्वामी तुलसीदास बालकांड में कहते हैं-

बिनु सतसंग बिबेक न होई। राम कृपा बिनु सुलभ न सोई।। सतसंगत मृदु मंगल मूला। सोई फल सिधि सब साधन फूला।।

मैंने तोगो भारतीय स्कूल में प्राइमरी शिक्षा के अंतर्गत कक्षा एक से आठ तक हिंदी भाषा की शिक्षा अनिवार्य रूप से हासिल की। मुझे हिंदी कहानियाँ और कविता पढ़ना बहुत प्रिय है। सेकेंड्री स्कूल में हिंदी एक वैकल्पिक विषय था पर हिंदी में मेरी रुचि होने के कारण मैंने सेकेंड्री स्कूल में भी बारहवीं कक्षा तक हिंदी भाषा का अध्ययन अपना विषय चुना। उन दिनों सभी सेकेंड्री स्कूलों में तेरहवीं कक्षा तक हिंदी भाषा की शिक्षा उपलब्ध नहीं थी इसलिए तेरहवीं कक्षा में मुझे हिंदी छोड़नी पड़ी। लेकिन लौटोका टीचर्स कॉलेज में प्राइमरी टीचर ट्रेनिंग कोर्स के दौरान मुझे हिंदी अध्ययन का अवसर मिला। सन् 1998 से सन् 2009 तक मैं प्राइमरी स्कूल में अध्यापिका रही। जहाँ मैंने कक्षा एक से लेकर कक्षा आठ के बच्चों को हिंदी पढ़ाया। इस दौरान मैंने सेंट्रल हिंदी डायरेक्टरेट से कोरेसपोंडेस कोर्स के माध्यम से हिंदी एडवांस डिप्लोमा किया। इसके पश्चात् प्राइमरी स्कूल टीचिंग के साथ-साथ मैं पार्टटाइम यूनिवर्सिटी ऑफ फीजी से बी. ए. हिंदी की पढ़ाई भी करती रही। यूनिवर्सिटी ऑफ फीजी में आदरणीय गुरुमाता सुक्लेश बली ने मुझे साहित्य की ओर प्रेरित किया। उनके सानिध्य में मुझे बी.ए हिंदी में विशेष पुरस्कार भी प्राप्त हुआ और इस तरह हिंदी में मेरा रुझान और बढ़ता चला गया।

सन् 2010 में मैं फीजी नेशनल यूनिवर्सिटी में हिंदी भाषा और साहित्य के प्राध्यापक के पद पर नियुक्त हुई। मैंने एजुकेशन में पोस्ट ग्रेजुएशन कर लिया था मगर उस समय हिंदी में उच्च स्तरीय शिक्षा जैसे पोस्ट ग्रेजुएशन डिग्री, एम. ए. फीजी के तीनों विश्वविद्यालयों में उपलब्ध नहीं थी। हिंदी में अपनी विशेषज्ञा बढ़ाने का मेरे पास भारतीय विश्वविद्यालय ही एक मात्र साधन था। सन् 2013 से 2015 में मैंने आई.सी.सी.आर की छात्रवृति पर मैसूर विश्वविद्यालय से हिंदी में एम. ए. किया। मेरे जीवन का बहुत ही सुनहरा अविस्मरणीय अवसर रहा जब मुझे मैसूर विश्वविद्यालय के स्नातक समारोह में एम.ए. हिंदी के लिए तीन स्वर्ण पदक प्राप्त हुए। एक बार फिर वर्ष 2018 में मुझे हिंदी में आई.सी.सी.आर की ओर से पी. एच.डी करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। अभी मैं मैंसूर विश्वविद्यालय से हिंदी में पी.एच.डी. कर रही हूँ। मेरे शोध अध्ययन का विषय 'फीजी के हिंदी प्रवासी साहित्य का अनुशीलन' है।

सन् 2019 में मेरी पुस्तक 'फीजी में हिंदी भाषा और संस्कृति', ए.बी.एस पब्लिकेशन, वाराणसी द्वारा प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में फीजी में हिंदी का कारवां: संस्थाएँ एवं प्रचार-प्रसार, हिंदी भाषा तथा भारतीय संस्कृति के संवाहक, हिंदी भाषा शिक्षण: दशा-दिशा, जोगिंद्र सिंह कंवल की कविताओं में लोकचेतना के स्वर, 'डउका पुरान' उपन्यास में चित्रित समस्याएँ, हिंदी कविताओं में अभिव्यक्त प्रवासी संवेदना, फीजी में हिंदी पत्रकारिता के बदलते तेवर 'शांति दूत' के परिप्रेक्ष्य में आदि विषय अंकित हैं। मेरी रुचि कहानी और कविता लेखन में रही है। डॉ. मुकेश मिश्र के सह-संपादन में मैंने फीजी के बारह कवियों की कविताओं को संकलित व संपादित किया है। और 'फीजी हिंदी काव्य साहित्य' नाम से प्रकाशित किया, जिसका लोकार्पण फीजी में स्थित भारतीय उच्चायुक्त आदरणीया सुश्री पद्मजा द्वारा लौटोका में हुआ। सन् 2018 में मेरी फीजी कहानी 'फंदा' का प्रकाशन हुआ। इसके अतिरिक्त हिंदी साहित्यिक पत्रिकाओं में एक दर्जन से अधिक शोध-पत्र प्रकाशित को चुकें हैं और अनेक हिंदी और अंग्रेजी में राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठियों की विभिन्न गतिविधियों में हिस्सा लेकर शोध-पत्र प्रस्तुत किए हैं। मैं हिंदी परिषद्

फीजी और हिंदी अध्यापक संघ फीजी की सक्रिय सदस्य रह चुकी हूँ। जो फीजी में हिंदी भाषा, साहित्य और भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार में अपना योगदान दे रही हैं।

विमलेश कांति वर्मा- फीजी में हिंदी शिक्षण की वर्तमान स्थिति क्या है?

सुभाशनी लता कुमार- मैं फीजी में हिंदी की प्राध्यापिका हूँ और पिछले 20 सालों से हिंदी की सेवा में कार्यरत हूँ। लौटोका टीचर्स कॉलेज में वरिष्ठ व्याख्याता के रूप में शामिल होने से पहले, 12 सालों तक मैंने प्राइमरी स्कूलों में पढ़ाया है। सन् 2010 में मैंने फीजी नेशनल यूनिवर्सिटी में हिंदी भाषा के व्याख्याता के रूप में प्रवेश लिया और अब वहीं कार्यरत हूँ। यहाँ प्राइमरी और सेकेंड्री स्कूल टीचर्स की ट्रेनिंग होती है। मैं बी.एड प्राइमरी और बी.एड सेकेंड्री टीचर ट्रेनीज़ को हिंदी पढ़ाती हूँ।

मूलभूत राष्ट्रीय जरूरतों और आकांक्षाओं की पूर्ति हेतु फीजी नेशनल यूनिवर्सिटी (एफएनयू) प्रासंगिक हिंदी शिक्षा प्रदान करती है। फीजी नेशनल यूनिवर्सिटी में बी.एड (सेकेंड्री), बी.एड (प्राइमरी) तथा बी.ए (लैंग्वेजेज) पाठ्यक्रम के अंतर्गत हिंदी भाषा और साहित्य की शिक्षा उपलब्ध है। इन पाठ्यक्रमों के माध्यम से प्राइमरी तथा सेकेंड्री स्कूलों में हिंदी भाषा का अध्यापन, प्रशिक्षण, ज्ञान की वृद्धि और समाज में हिंदी के प्रचार-प्रसार को भी बढ़ावा मिलता है। इन पूर्णसत्रीय पाठ्यक्रमों द्वारा प्रशिक्षणार्थियों को भाषा शिक्षण, भाषा विज्ञान, अनुवाद सिद्धांत और व्यवहार, शिक्षण सामग्री निर्माण, हिंदी साहित्य, भारतीय संस्कृति आदि विषयों का समुचित ज्ञान कराया जाता है। इसके साथ-साथ फीजी जैसे बहुजातीय देश में एकता लाने के लिए वार्तालाप की हिंदी भाषा गैर-भारतीय विद्यार्थियों को भी पढ़ाई जाती है तथा भारतीय बच्चों को आइ-तऊकेई भाषा की शिक्षा प्रदान की जाती है। यहाँ गैर-भारतीय विद्यार्थी रोमन लिपि के माध्यम से फीजी हिंदी सीखते हैं।

हिंदी भाषा संरक्षण व परंपरा को कायम रखने के लिए एफएनयू में हर वर्ष हिंदी दिवस समारोह बड़े उत्साह के साथ मनाया जाता है। विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों द्वारा मंगलवार शाम को भाषा और भारतीय संस्कृति के प्रोत्साहन व मूल्य संरक्षण हेतु रामायण पाठ, भजन, कीर्तन का आयोजन होता हैं। इसके अलावा वहाँ सम्मलित रूप से होली, राम नवमी, दीपावली आदि प्रमुख त्योहारों को हर्ष के साथ मनाया जाता है। इस तरह फीजी नेशनल यूनिवर्सिटी हिंदी भाषा पाठ्यक्रम द्वारा भाषीय छात्रों को केंद्रीत करते हुए, उन्हें हिंदी भाषा को सुरक्षित रखने, सांस्कृतिक प्रचार-प्रसार, साहित्य सृजन एवं उनके ज्ञान, कौशल और सकारात्मक भावों को विकसित करने में सक्षम है। मेरे साथ श्रीमती सरिता चंद, श्रीमती विद्या सिंह और श्रीमान नरेश चंद जी हिंदी अध्यापन और सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

फीजी के तीनों विश्वविद्यालय- 'यूनिवर्सिटी ऑफ दा साउथ पैसिफिक', 'फीजी नेशनल यूनिवर्सिटी' तथा 'यूनिवर्सिटी ऑफ फीजी' में हिंदी भाषा, साहित्य और संस्कृति संबंधी प्रोग्राम उपलब्ध हैं। किंतु खेद का विषय यह है कि यहाँ हिंदी पढ़ने वाले विद्यार्थियों की संख्या कम हो रही है। यूनिवर्सिटी ऑफ द साउथ पैसिफिक में डॉ. इंदू चंद्रा जी हिंदी भाषा प्रमुख और विभाग अध्यक्ष हैं तथा यूनिवर्सिटी ऑफ फीजी में सुश्री मनीषा रामरक्खा जी हिंदी प्रोफेसर एवं विभाग अध्यक्ष के पद पर नियुक्त हैं। तीनों विश्वविद्यालयों में हिंदी भाषा पाठ्यक्रम के अतिरिक्त हिंदी भाषा के प्रसार-प्रचार और शिक्षण को सबल आधार देने के उद्देश्य से हर वर्ष युवाओं के लिए कविता प्रस्तुति, भाषण प्रतियोगिता, निबंध लेखन प्रतियोगिता आदि आयोजित किए जाते हैं। इस कार्यक्रम द्वारा प्राइमरी स्कूल, सेकेंड्री स्कूल और विश्वविद्यालय के छात्र भरपूर लाभ उठाते हैं। इस अवसर पर हिंदी के उत्कृष्ट छात्रों को हिंदी पाठ्यक्रम विभाग द्वारा छात्रवृत्ति से पुरस्कृत किया जाता है।

विमलेश कांति वर्मा- आपकी रुचि क्या रचनात्मक लेखन में है?

सुभाशनी लता कुमार- मैं कविता, कहानी निबंध लिखती हूँ। मुझे फीजी हिंदी में कहानी लिखना पसंद है और कविता व निबंध मानक हिंदी में लिखना पसंद है। इन रचनाओं का प्रकाशन मुख्यतः भारत में ही होता है क्योंकि फीजी में प्रकाशन की कम सुविधाएँ उपलब्ध हैं।

मेरी दो छोटी कविताएँ आपके लिए प्रस्तुत हैं-

रिश्ते
रिश्ते रिस्ते-रिस्ते
घिस से गए हैं
फेसबुक व व्हाट्सऐप तक
सिमट गए हैं
आज की दौड़ में
संबंध मतलब भर
रह गए हैं
कभी बनते-बिगड़ते
क्षणिक लगते हैं
स्वतंत्रता की चाह में
अपने दूर हो रहे हैं
अपनापन, प्यार व खुशी
चहेरे से लुप्त हो रहे हैं
एकाकी के तनाव में
रिश्ते भार बन गए हैं।।

* * *

हाशिए पर खड़ा जीवन
सुना था
बचपन में मैंने
आजा के मुख से
समय के साथ जीना सीखो
भगवान भी कहते हैं
परिवर्तन है विधि का विधान
देखा है मैंने
प्रकृति को बदलते
घरों को बदलते
गाड़ियों को बदलते
और लहराते झंडों को बदलते,
पर जात-पात का भेद-भाव नहीं बदला तो
जमीनों का अधिकार
पराएपन का एहसास
देश-स्वदेश का द्वंद्व
और
हाशिए पर खड़ा जीवन...।

फीजी हिंदी के रचनात्मक लेखन में प्रो. सुब्रमनी और श्री रेमंड पिल्लई का नाम प्रमुख है। प्रो. सुब्रमनी ने गिरमिटियों की भाषा, जीवन शैली, संस्कृति, परंपरा, अनुभव आदि का यथार्थ चित्रण 'डउका पुरान' (2001) और 'फीजी माँ'(2018) जैसी औपन्यासिक कृतियों में लिपिबद्ध किया है। उन्होंने अपने पूर्वजों के इतिहास तथा अपने समूह के अस्तित्व को बनाए रखने के लिए फीजी हिंदी के प्राचीन शब्दों को लिपिबद्ध एवं संरक्षित करने का महत्वपूर्ण कार्य किया है।

श्री रेमंड पिल्लई भी फीजी के प्रसिद्ध लेखकों में से एक हैं। उन्हें केवल फीजी में ही नहीं बल्कि दक्षिण प्रशांत के साहित्यिक क्षेत्र में भी अग्रणी कलाकार माना जाता है। उनकी कृति 'अधूरा सपना', फीजी हिंदी में लिखी प्रसिद्ध साहित्यिक कृति है। 'अधूरा सपना' पर वर्ष 2007 में विमल रेड्डी के निर्देशन में फीजी हिंदी फिल्म बनी। इस प्रकार रेमंड पिल्लई ने पहली फीजी हिंदी फिल्म 'अधूरा सपना' के लिए पटकथा लिखकर अपना नाम फीजी हिंदी साहित्य के इतिहास में दर्ज करा लिया।

इस समय फीजी हिंदी में रचनात्मक लेखन कार्यक्रम हो रहा है। सन् 2018 में फीजी हिंदी की प्रथम कहानी संग्रह 'कोई किस्सा बताव' का संपादन श्री प्रवीण चंद्रा द्वारा किया गया। इस कहानी संग्रह में फीजी के वरिष्ठ साहित्यकारों; प्रो. सुब्रमनी, प्रो. सतेंद्र नंदन, डॉ. ब्रिज लाल, डॉ. रामलखन प्रसाद, श्रीमान खेमेंद्रा कुमार, श्रीमती सरिता चंद, श्रीमान नरेश चंद आदि लेखकों ने फीजी हिंदी भाषा में अपनी कृतियों को संकलित किया है। इसी संग्रह में मेरी कहानी 'फंदा' का प्रकाशन हुआ। 'कोई किस्सा बताव' कहानी संग्रह एक ऐसी कलाकृति है जिसमें फीजी के प्रवासी भारतीयों की जीवन शैली को कहानी की विधा में बांधा गया है। वहीं 'फीजी हिंदी' में काव्य लेखन मैंगनिया, नांदी के मोहम्मद यूसुफ 'साहेब' जी करते हैं। उनकी काव्य रचनाएँ

फीजी हिंदी और मानक हिंदी में शांति दूत में प्रकाशित होती रहती हैं। इसके अतिरिक्त श्री खेमेंद्रा कुमार और श्री नरेश चंद जी भी फीजी हिंदी में लिखने में रुचि रखते हैं।

पीएच.डी. के बाद 'फीजी हिंदी' में कहानी लिखने की मेरी योजनाएँ हैं। बचपन की यादों से जुड़ी कहानी संग्रह पर काम करने का मेरा विचार है। अभी मैं अपने रिसर्च पर काम कर रही हूँ। इसलिए सृजनात्मक लेखन पर कम ध्यान दे पा रही हूँ।

विमलेश कांति वर्मा- फीजी हिंदी और जनसंचार।

सुभाशनी लता कुमार- फीजी में हिंदी के एक मात्र साप्ताहिक समाचार पत्र 'शांतिदूत' में फीजी हिंदी के मनोरंजन स्तंभ 'बैठकी' प्रकाशित होती है। यह स्तंभ बा के श्री राकेश नंद उर्फ पप्पू द्वारा लिखा जाता है। यह फीजी हिंदी स्तंभ लेखकों के प्रोत्साहन के अतिरिक्त पाठकों के मनोरंजन के उद्देश्य से प्रकाशित किए जा रहे हैं। शांतिदूत के अलावा 'फीजी ब्रॉड कास्टिंग कमीशन' फीजी हिंदी में कार्यक्रम प्रसारित कर रही है। कुछ लोग रेडियो फीजी पर मानक हिंदी में कार्यक्रम सुनना पसंद करते हैं तो वहीं कुछ लोगों को फीजी हिंदी के कार्यक्रम ज्यादा दिलचस्प लगते हैं। जहाँ शैक्षणिक, धार्मिक, स्वास्थ्य, राजनैतिक, शोक समाचार जैसे विषयों की अभिव्यक्ति का माध्यम मानक हिंदी ही है। वहीं खेल-कूद, मनोरंजन, विज्ञापन, सामाजिक गतिविधियों आदि का प्रसारण फीजी हिंदी में होता है।

मुझे विषय के अनुरूप कार्यक्रम की भाषा पसंद है। फीजी में विज्ञापन, गप-शप, घरेलू, खेलकूद, ललित विषय पसंद हैं तो मानक हिंदी में औपचारिक विषय ज्यादा उपयुक्त लगते हैं। मानक हिंदी और फीजी हिंदी हमारे जीवन में ऐसे रच-बस गए हैं कि इन दोनों में किसी एक के बिना हमारा संप्रेषण अधूरा माना जाएगा।

विमलेश कांति वर्मा- फीजी हिंदी और मानक हिंदी के प्रयोगगत अंतर को आप कैसे देखती हैं?

सुभाशनी लता कुमार- फीजी में हिंदी भाषा के दो रूप देखने को मिलते है। 'फीजी हिंदी' बोलचाल और साहित्य की भाषा है तो दूसरी 'मानक हिंदी' प्रशासन, साहित्य, धर्म अध्ययन और अध्यापन की भाषा है।

पहला, बोल-चाल की भाषा फीजी हिंदी है जिसका प्रयोग भारतीयों के साथ-साथ गैर-भारतीय भी दैनिक व्यवहार के लिए काम में लाते हैं। व्यावहारिक भाषा के रूप में फीजी हिंदी का प्रयोग होता आ रहा है। फीजी हिंदी यहाँ की बोलचाल की भाषा है और जात-पात, धर्म, वर्ग के भेदभाव मिटाती हुई एकता और प्रेम के सूत्र में फीजी वासियों को बांधती है। भारतीय मूल के फीजियनस अपने घरों में फीजी हिंदी और अंग्रेजी भाषा का प्रयोग करते हैं। हालांकि स्कूलों में विषय-वस्तु के अंतर्गत शिक्षकों और विद्यार्थियों द्वारा मानक हिंदी का प्रयोग होता है। फीजी हिंदी जन्मत: सभी को आती है जबकि मानक हिंदी बिना सीखे नहीं आती। फीजी हिंदी को व्याकरणिक दृष्टि से अपूर्ण शिक्षा के क्षेत्र में खड़ी बोली हिंदी की साक्षरता पर बल दिया गया और मानक हिंदी की तुलना में फीजी हिंदी को कम महत्वपूर्ण समझा जाता है।

दूसरा, मानक हिंदी जो शिक्षा मंत्रालय द्वारा निर्धारित हिंदी पाठ्यक्रम के अंतर्गत स्कूलों में पढ़ाई जाती है। कक्षा एक से आठ तक भारतीयों को अनिवार्य रूप से पढ़ाई जाती है और सेकेंड्री स्कूल में वैकल्पिक विषय के रूप में है। मानक हिंदी का प्रयोग औपचारिक स्थलों जैसे शिक्षण, राजनीति, पत्रकारिता, धार्मिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक स्थलों पर प्रतिष्ठित है।

फीजी एक बहुभाषीय देश है जहाँ अंग्रजी भाषा के साथ-साथ फीजियन और हिंदोस्तानी को अधिकारिक भाषाओं का सम्मान प्राप्त है। फीजी जैसे बहुजातीय देश में एकता लाने के लिए बहुभाषिक होना बहुत जरूरी है। इस देश में सभी को तीन भाषाओं (अंग्रेजी, आइ-तऊकेड़ तथा फीजी हिंदी) का ज्ञान होना चाहिए। इसलिए शिक्षा मंत्रालय द्वारा वार्तालाप की भाषा अनिवार्य रूप से पढ़ाने का प्रावधान है। इस प्रावधान के तहत फीजी हिंदी भाषा गैर-भारतीय बच्चों को वर्ष एक से लेकर वर्ष दस तक पढ़ाई जाती है तथा भारतीय बच्चों को आइ-तऊकेई भाषा की शिक्षा दी जाती है। गैर-भारतीय विद्यार्थी रोमन लिपि के माध्यम से फीजी हिंदी सीखते हैं।

विमलेश कांति वर्मा- फीजी हिंदी और देवनागरी लिपि।

सुभाशनी लता कुमार- फीजी हिंदी देवनागरी और रोमन लिपि में लिखी जाती है। श्री रैमंड पिल्लड़ जी

का 'अधूरा सपना' रोमन लिपि में है पर वहीं सुब्रमनी का 'डउका पुराण' और 'फीजी माँ' देवनागरी में हैं। मुझे लगता है देवनागरी में लिखे होने के कारण इन कृतियों को आसानी से सही उच्चारण के साथ पढ़ा जा सकता है। देवनागरी की तुलना में मुझे खुद रोमन लिपि में हिंदी के शब्दों को लिखने व पढ़ने में मुश्किलें आती हैं। लिपि भाषा के कपड़े हैं और कपड़े बदलने से व्यक्ति नहीं बदलता लेकिन संस्कार जरूर बदल जाते हैं। फीजी हिंदी को देवनागरी लिपि द्वारा उचित वर्तनी और सही उच्चारण मिलता है।

फीजी हिंदी को देवनागरी लिपि में आसानी से लिखा जा सकता है मगर इसके लिए देवनागरी लिपि की साक्षरता की आवश्यकता है। हिंदी भाषा पाठ्यक्रम के छात्र, हिंदी भाषा को सुरक्षित, सांस्कृतिक प्रचार-प्रसार, साहित्य से संघटित करते हुए, उनके ज्ञान, कौशल और सकारात्मक भावों को विकसित करने के प्रयास में कार्यरत हैं। हिंदी भाषा पाठ्यक्रम में देवनागरी लिपि की साक्षरता पर बल दिया जाता है पर कुछ लोग अपनी भाषिक परंपरा को कायम रखने में रुचि नहीं ले रहे हैं। उनका कहना है कि हिंदी पढ़ने से उन्हें कुछ फायदा नहीं होगा। वे हिंदी बोलते और समझते हैं, यही उनके लिए पर्याप्त है। माता-पिता भी हिंदी को लाभ-हीन बतलाकर तिरस्कृत करते हैं। किंतु, शैक्षणिक व धार्मिक संस्थाएँ और हिंदी परिषद् फीजी के सहयोग से आयोजित कार्यशालाओं में देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता और देवनागरी में लिखने पर बल दिया जा रहा है।

विमलेश कांति वर्मा- 'फीजी हिंदी' आंदोलन/मानक हिंदी।

सुभाशनी लता कुमार- फीजी के प्रवासी भारतीय जहाँ मौखिक संप्रेषण के लिए 'फीजी हिंदी' का अधिक प्रयोग करते हैं वहीं जब लिखित हिंदी की बात आती है तब वे 'मानक हिंदी' को उपयोगी मानते हैं। हिंदुस्तानियों की तरह मूल फीजियन भी फीजी हिंदी बोलते हैं। फीजी के भारतीयों के लिए 'मानक हिंदी' यत्न से सीखी गई भाषा है और 'फीजी हिंदी' उनकी अपनी मातृभाषा है जिस पर उनका अच्छा अधिकार है। फीजी हिंदी में वे सरलता से अपने भावों की अभिव्यक्ति कर लेते हैं। सृजनात्मक उच्चस्तरीय साहित्य व्यक्ति अपनी मातृभाषा में ही लिख सकता है। इससे मैं सहमत हूँ। हालांकि 'फीजी हिंदी' फीजी के लगभग सभी भारतवंशियों की मातृभाषा है लेकिन अंग्रेजी और खड़ी बोली हिंदी की तुलना में इसे निम्नकोटि की भाषा समझा जाता है। जहाँ शिक्षण और औपचारिक स्थलों पर मानक हिंदी को मान्यता दी जा रही है वहीं अनौपचारिक स्थलों पर फीजी हिंदी अभिव्यक्ति का माध्यम बनी हुई है। फीजी हिंदी भाषा के साथ अक्सर यह संदेह रहा है कि वह एक अपूर्ण टूटी-फूटी, व्याकरण-हीन भाषा है, और इसका प्रयोग सिर्फ बोल-चाल के लिए उपयुक्त है। इस वजह से इसके लेखन पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया।

मुझे लगता है कि फीजी में 'फीजी हिंदी' के विरोध का मुख्य कारण यह है कि इसे अपनाने से भारतीय समुदाय को लगता है कि 'मानक हिंदी' का स्तर कम हो जाएगा और मानक हिंदी की साक्षरता न होने से वे अपने धार्मिक, सांस्कृतिक ग्रंथों के पठन-पाठन से वंचित हो जाएँगे। धार्मिक संस्थाएँ जैसे सनातम धर्म प्रतिनिधि सभा ऑफ फीजी, आर्य समाज, संगम सोसाइटी, हिंदी लेखक संघ, हिंदी परिषद् फीजी आदि संस्थाओं ने मिलकर आवाज उठाई कि फीजी हिंदी का प्रयोग हिंदी शिक्षण पाठ्यक्रम व जनसंचार में न किया जाए। इस आंदोलन का मुख्य उद्देश्य 'मानक हिंदी' को संरक्षित और प्रतिष्ठित करना है।

मेरा विचार है कि फीजी हिंदी के माध्यम से मानक हिंदी की पकड़ और भी मजबूत हो सकती है। 'फीजी हिंदी' का समर्थन 'मानक हिंदी' का विरोध नहीं है बल्कि दोनों की अपनी-अपनी भूमिका है जबकि काईबीती समुदाय 'फीजी हिंदी' के पक्षधर हैं।

मुझे लगता है कि आधुनिकता की इस दौड़ में और अंग्रेजी भाषा की बढ़ती लोकप्रियता के कारण 'फीजी हिंदी' आज लुप्त होने के कगार पर खड़ी है। एक भाषा का लुप्त हो जाना उस समुदाय की भाव राशि और विचार राशि का और उसकी संस्कृति का लुप्त हो जाना है। किसी भी समाज की भाषा उस अंचल की रीढ़ होती है और उसके खत्म होने का सवाल सिर्फ भाषाई नहीं है बल्कि, बोली के नष्ट होने के साथ ही जनजातीय संस्कृति, तकनीक और उसमें अर्जित बेशकीमती परंपरागत ज्ञान भी तहस-नहस हो जाता है। फीजी हिंदी में बड़ी संख्या में ऐसे अनूठे शब्द हैं, जो गिरमिट काल के दौरान कृषि जीवन और नए माहौल में ढलने के लिए

जरूरी थे। ये पुराने शब्द हमारे पूर्वजों के इतिहास से जुड़े हैं। अगर हमारी भाषा और इतिहास ही नहीं होगा तो हम लोग एक बिना पेंदी के लौटे की तरह हो जाएँगे। इसलिए 'फीजी हिंदी' भाषा से जुड़े हमें अपने इतिहास को बचाएँ रखने के लिए अपने पूर्वजों की भाषा को संजोकर रखना है। एक भाषा जब विलुप्त हो जाती है, तो उसके साथ ही उससे जुड़ा मानवीय इतिहास और सांस्कृतिक विरासत भी लुप्त हो जाते हैं।

प्रो. सुब्रमनी जी ने 'डउका पुरान' और 'फीजी माँ' में फीजी हिंदी के ऐसे अनूठे शब्दों को संग्रहीत किया है जो आधुनिक भाषाओं के मोह में लुप्त हो रहे हैं जैसे 'मनहई', 'छीछर लेदर', 'बजर भट्टू'', 'टिर्राई' 'नारियल के बूलू', 'टिबोली', 'झाप', 'निपोरिस', 'ठिनकही', 'गोदना' 'झाप' आदि फीजी हिंदी शब्दों का पुरालेख है। उन्होंने अपने उपन्यासों के माध्यम से फीजी हिंदी भाषा और प्रवासी साहित्य सृजन को नई दिशा प्रदान की है जिसके लिए उनके काम को सराहना मिलनी चाहिए न की निंदा।

विमलेश कांति वर्मा- फीजी में हिंदी का विकास और भारत सरकार की भूमिका।

सुभाशनी लता कुमार- फीजी में हिंदी का पठन-पाठन चिंताजनक है तथा हिंदी साहित्य सृजन की स्थिति संतोषजनक नहीं दिख रही है। हिंदी कभी बहुत बहिष्कृत हुई थी, लगता है आज परिक्रमा के बाद हिंदी का चक्र वहीं लौट-सा आया प्रतीत हो रहा है। जहाँ तक सृजनात्मक साहित्य के प्रकाशन की स्थिति है, वह प्रकाशन की असुविधा के कारण निराशाजनक है। फीजी में हिंदी न केवल अभिव्यक्ति का माध्यम है बल्कि प्रवासी भारतीयों की अस्मिता का प्रतीक है जिसको बरकरार रखना जरूरी है। आज जरूरी है कि हम एक बार फिर सामूहिक रूप से हिंदी की पढ़ाई का जबरदस्त आह्वान करें। इसके लिए शुरुआत से यानी फीजी में हिंदी के पाठक, लेखक, अध्यापक, माता-पिता व संस्थाओं को संगठित होकर हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए आंदोलन करना होगा।

विमलेश कांति वर्मा- आपकी राय में हिंदी के विकास के लिए भारत से क्या सहयोग अपेक्षित है?

सुभाशनी लता कुमार- भारत सरकार फीजी में हिंदी के विकास और विस्तार के लिए निम्नलिखित कदम उठा सकती हैं- हिंदी की गतिविधियों को बढ़ाने के लिए मॉरीशस की तरह हिंदी सेक्रेटेरियट की एक शाखा फीजी में भी खोली जा सकती है। फीजी हिंदी की शब्दावली तैयार करने के लिए एक कमेटी का गठन किया जाए। उदीयमान लेखकों को हिंदी में साहित्य सृजन और प्रकाशन के लिए कार्यशालाओं का आयोजन एवं लेखन के लिए प्रोत्साहित भी किया जाए। हिंदी कार्यक्रम आयोजन के लिए विशेषज्ञता के साथ-साथ आर्थिक सहयोग उपलब्ध कराया जाए।

साक्षात्कार कर्ता डॉ. विमलेश कांति वर्मा देश के लब्धप्रतिष्ठ भाषा वैज्ञानिक हैं और प्रवासी भारतीय हिंदी साहित्य के विशेषज्ञ के रूप में भी जाने जाते हैं। 'फीजी में हिंदी-स्वरूप और विकास', 'फीजी का सृजनात्मक हिंदी साहित्य', 'सूरीनाम का सृजनात्मक हिंदी साहित्य', 'मॉरीशस का सृजनात्मक हिंदी साहित्य' और 'प्रवासी भारतीय हिंदी साहित्य' उनके प्रकाशित शोधपरक ग्रंथ हैं। उन्होंने फीजी के भारतीय उच्चायोग में वरिष्ठ राजनयिक के रूप में प्रथम सचिव (हिंदी और शिक्षा) के पद पर हिंदी की सेवा भी की है।

– 73 वैशाली, पीतमपुरा, दिल्ली-110034

❑❑❑

वह सिंदूरी शाम

राम कुमार कृषक

मनभावन, आकर्षक रंगवाले कुर्तीनुमा ब्लाउज और घाघरे को एक साथ आलोकित करती चुनरी में सजी-सँवरी गुड़ियों जैसी किशोरियाँ। एक, उषा-उषा कुमारी पी.। दूसरी, पुष्पा या पुष्पवल्ली और तीसरी, राधा या राधिका। तीनों जैसे एकमेक-त्रिवेणी। कच्ची-कजरारी आँखों से झाँकता निर्मल जिज्ञासु मन।

कक्षा में एक साथ आतीं। एक साथ बैठतीं। एक साथ उठतीं। हम, यानी केंद्रीय विश्वविद्यालय, हैदराबाद के प्राध्यापक डॉ. सुवास कुमार, कथाकार बल्लभ डोभाल, प्राध्यापक कवि डॉ. बलदेव वंशी और मैं चाहते थे कि अन्य शिविरार्थियों की तरह पय्यनूर की ये छात्राएँ भी कक्षा में मुखर हों।

अंततः शिविर का पाँचवाँ या छठा दिन। पहला सत्र समाप्त हुआ तो 'घेर' लिया हमने उन्हें। कुछ भी कहें, कुछ भी सुनाएँ। याददाश्त या पुस्तक से। अपना लिखा हो या दूसरे का। हिंदी में हो या मलयालम में। कंठ-स्वर सुनना चाहते हैं हम। आशंका होती है कि कहीं गूँगी तो नहीं है आप! लड़कियों के चुप बने रहने का समय नहीं रहा अब। दूसरे सत्र में सिर्फ आप तीनों को सुना जाएगा।

विभिन्न भाषा-भाषी शिविरार्थियों ने हमारी बात का समर्थन किया। खासकर पुणे से आई शिक्षिका शिविरार्थी डॉ. पद्मजा घोरपडे ने। कक्षा में उपस्थित हिंदी विद्यापीठ, पय्यनूर की तीनों अध्यापिकाएँ- श्रीदेवी के.सी., गीताश्री और रत्नामणि भी गुपचुप मुस्कुराते हुए हमारा समर्थन कर रही थीं; और केंद्रीय हिंदी निदेशालय की ओर से भेजे गए हम चारों 'पथ-प्रदर्शकों' के इस कठोर रूख से प्रसन्न वे तीनों छात्राएँ भी मुस्कुरा रही थीं।

अपराह्न तीन बजे। दूसरा सत्र आरंभ होते ही वे तीनों आ पहुँची। अपने में ही सिमटी, सकुचाई, छुई-मुई सी। बीच की पंक्ति की ओर बढ़ी ही थीं कि मैंने उन्हें अगली बेंच पर जाने के लिए कहा। कहा कि यह सत्र आप तीनों का है और कोई कुछ नहीं सुनाएगा, न पढ़ेगा। अब तक वे तीनों प्रायः परस्पर सटकर बेंच पर बैठ चुकी थीं और एक-दूसरे को कह रही थीं- पहले तू... पहले तू... यह देखकर डोभाल जी ने एक-एक को पुकारा, लेकिन पुष्पा और राधिका संकोच नहीं छोड़ पाईं। साहस दिखाया सिर्फ उषा कुमारी ने। कहा- मैं एक कविता सुनाऊँगी, अपनी। त्रुटियों को क्षमा कर दीजिएगा।

पहले उसने अपनी मातृभाषा में लिखी कविता सुनाई। सुरीला, लरजता-सा कंठ-स्वर। श्यामल चेहरे से छलकता हुआ लावण्य। हम, उसके अध्यापक... अर्थ नहीं समझ रहे थे उसका... इसकी हिंदी करो बिटिया। बड़े संकोच से उषा ने उसका उल्था करने का प्रयास किया। भावार्थ कुछ यों था- माँ क्या तुम लड़की नहीं हो सकोगी कभी? खेलना चाहती हूँ तुम्हारे साथ...

फिर एक हिंदी-कविता पढ़ी-
वह खड़ी है पेड़ के नीचे
दलित स्मृतियों के सम्मुख
तपोकन्या-सी
और एक शकुंतला...

भाषा ISSN 0523-1418

आते-जाते लोग
और उनकी व्यंग्य-ध्वनियाँ
मारे डालती हैं उसे
विधि के कठोर कोड़ों से...
हे कालिदास
आपके भाव से बनी एक कहानी
अब भी यहाँ जीवित है
और वह कहानी
यही है!

पूरी कविता नहीं है यह। उसके कुछ अंश हैं। कालिदास की शकुंतला को दलित-प्रताड़ित युवती के रूप में महसूस करना, हर जगह मौजूद है। ऐसी शकुंतलाएँ-सदियों से अनुत्तरित प्रश्नचिह्न के समान!... गदगद थे मैं और सुवास जी। घर में कौन-कोन हैं? कितने भाई-बहन? पिता क्या करते हैं? पता चला, घर में बड़ी बेटी है वह। पिता खादी बोर्ड कार्यालय, करुवायच्चेरि में 'पियन' हैं। अब वह काफी हद तक मुखर थी। हिंदी और मलयालम की कई पुस्तकें उसके पास थीं, कुछ पत्रिकाएँ भी। उनमें शायद 'मातृभूमि' का भी कोई अंक था। उसने उसमें छपे अपने लेखकों के बारे में हमें बताया। उनके चित्र दिखाए। कमलादास का चित्र दिखाते हुए कहा कि वे यहीं उत्तरी केरल से हैं! उषा कुमारी द्वितीय वर्ष की छात्रा थी- एक गरीब परिवार से आई, लेकिन किस कदर समृद्ध थी उसकी वह साहित्यिक संस्कृति!...

नई दिल्ली से हम 5 फरवरी को पय्यनूर के लिए चले थे, मैं और बड़ी बेटी अर्चना। यह हमारी यात्रा का दूसरा दिन था, यानी 6 फरवरी 1991। दोपहर ढल रही थी और गाड़ी अभी आंध्र के किसी कस्बाई स्टेशन पर खड़ी थी। पहली सूचना यह थी कि कोयंबतूर से आ रही कोई सवारी गाड़ी पटरी से उतर गई है। दूसरी यह कि करुणानिधि सरकार को बर्खास्त किए जाने के विरोध में तमिलनाडु बंद है और तमिल प्रदेश से होकर गुजरने वाली गाड़ियों को आगे नहीं जाने दिया जा रहा। जो हो, हमारी केरल-मंगला एक अमंगल का शिकार थी और दो-ढाई घंटे पूरी तरह गतिहीन। गतिशील थे तो अपनी-अपनी सीटें छोड़कर प्लेटफार्म पर उतर आए लोग। गतिशील और उद्विग्न। चतुर्थ श्रेणी का एक स्थानीय रेल-कर्मचारी शायद किसी सहकर्मी से हालात पर बहस करता हुआ हमारी बोगी के सामने आ पहुँचा था। बेहद उत्तेजित। चंद्रशेखर की बजाय राजीव गांधी को कोस रहा था और शायद सुनाने के लिए टूटी-फूटी हिंदी में!

लेकिन मेरे हिंदी लेखक शिविर का क्या होगा? मेरा अंदाज था कि लेट होने के बावजूद गाड़ी 6 की शाम को पय्यनूर पहुँच जाएगी, पर पता चला कि वह तो अभी 24 घंटे दूर है, बशर्ते गाड़ी और अधिक लेट न हो। यानी गाड़ी 7 को शाम 6-7 बजे से पहले पय्यनूर नहीं पहुँचा सकती, जबकि मुझे उसी दिन सुबह 9 बजे शिविर के उद्घाटन-सत्र में उपस्थित होना था।

खैर, जाने दीजिए अभी पय्यनूर; पहले एक और प्रसंग।

मेरे सामने वाली सीट एक अशोभनीयता का शिकार हो गई थी। सामने की सीट पर आगरा मेडिकल कॉलेज में नर्सिंग का कोर्स कर रही एक लड़की भी यात्रा कर रही थी। आगरा से चढ़ी थी वह। सुंदर, शालीन श्यामा। रात को, शायद इटारसी से एक मलयाली सज्जन भी हमारे कूपे में आ गए थे। उनकी बर्थ पर कोई और पसरा हुआ था। इसे लेकर उससे उनकी थोड़ी झौं-झौं भी हुई थी। बावजूद इसके कि बर्थ उनकी थी, अरुचिकर ही लगे थे वे मुझे। अच्छी मजबूत कद-काठी, बड़ी-बड़ी सूर्ख आँखें और चौड़े-चेहरे को घेरती हुई लंकेशकट मूछें! लेकिन स्वभाषा-भाषी जानकर जब उस केरलीय बाला ने उनके प्रति सद्भावना व्यक्त की तो मैं भी थोड़ा सहज हो आया। आखिर मेरी बेटी से भी तो उस लड़की की कुछ आत्मीयता हो गई थी। 6 को भी प्रायः पूरे दिन हम बंद को झेलते-झेलते एक साथ सफर कर रहे थे। अर्चना ने अब तक तक़षी का 'मछुवारे' करीब-करीब पूरा पढ़ लिया था और मैंने कुसुम कुमार का 'हीरामन हाईस्कूल'। हालांकि रेल-यात्राओं में कुछ पढ़ते हुए मैं इस द्वंद्व का शिकार हो जाता हूँ कि किताब में निहित रचनात्मक सौंदर्य में गोते लगाऊँ या बाहर के विस्तृत प्राकृतिक परिवेश में विचरता रहूँ। पढ़ना तो घर में भी होता रहता है, लेकिन खेत-मैदान और दूर-दूर तक फैली हरियाली को पढ़ना तो वहाँ संभव नहीं!... खैर, इस बीच हमने उन दोनों से मलयालम

के बहुत-से शब्दों की जानकारी भी प्राप्त की थी। उपकारम् (नमस्कार), आहारम्(भोजन), चोर (भात), वैल्लम(पानी), वारू इरिक्यू (आइए बैठिए), तांगण के सुखमाणौ (आप कैसे हैं), येनिक्के सुखमाणौ (अच्छा हूँ), पत्रम् (अखबार), अनुवादम् (आज्ञा), प्रसंगम (भाषण) आदि। संभव है, बहुत है, बहुत-से शब्द इनमें तद्भव हों, फिर भी इनमें से अधिसंख्य के संस्कृत-रूप बहुत स्पष्ट हैं, बावजूद इसके कि अनुवादम् या प्रसंगम् में अर्थ-वैभिन्य हैं बहरहाल, जिस प्रसंग की ओर मैंने ऊपर संकेत किया है, उसे उन सज्जन के शब्द-गुरुत्व में नहीं भुलाया जा सकता।

दिखाई देने वाले अपने बाह्य व्यक्तित्व के अनुरूप स्वभाव से वे ठीक-ठाक ही थे। हँसोड़ और मस्त। बातचीत में बेबाक। अच्छी-खासी हिंदी बोल लेते थे। पता चला, सेना से रिटायर हो चुके हैं। ग्वालियर में बहन के यहाँ गए थे इटारसी होते हुए लौट रहे हैं और इन दिनों सेना कोवलम् के किसी होटल या लॉज में सुरक्षा गार्ड हैं।

लेकिन ये कैसे सुरक्षा-गार्ड हैं, जो संध्या होते न होते उस लड़की की सम्मान-सुरक्षा के प्रति तटस्थ हो चले हैं। जबकि फिल्मी लंपटता में सराबोर कुछ मलयाली युवक उससे छेड़छाड़ पर उतर आए हैं। अंततः जब मुझे लगा कि ये सज्जन भी कहीं न कहीं उन्हीं लंपटों के साथ हैं तो मैंने उनसे कहा कि आप इन लड़कों को अपने कूपे में जाने को कहें या आप भी इनके साथ वहीं जा बैठें। इस पर उन सज्जन ने खीसें निपोर दीं, शर्मिंदा-से हुए और कुछ देर बाद उन लड़कों के साथ उनके कंपार्टमेंट में चले गए।

जब हम पय्यनूर रेलवे स्टेशन पर उतरे तो रात के करीब साढ़े ग्यारह बजे थे, यानी गाड़ी पूरे साढ़े आठ घंटे लेट चल रही थी!

छोटा, कस्बाई स्टेशन। चारों ओर प्रायः घुप्प अंधकार। स्टेशन के बाहर आए तो कुछ ऑटो मौजूद। कुल दस-बारह लोग उतरे थे। एक ऑटो वाले से पूछा-हिंदी विद्यापीठ? भाषा की दिक्कत। और कुछ नहीं कह सकता था। ऑटो वाला अनभिज्ञ था। हिंदी विद्यापीठ का नाम लेकर उसने दूसरे ऑटो चालक से जानना चाहा। तभी अंधेरे में लिपटी एक पुरुषाकृति हमारे पास आई और पूछा-सर, हिंदी विद्यापीठ जा रहे हैं आप? मैं चकित! इतनी अच्छी हिंदी! मैंने कहा-जी हाँ। क्या आप वहाँ काम करते हैं? जवाब आया- जी नहीं, मुझे भी वहाँ जाना है। मैं शिविरार्थी हूँ। आप? मैं मार्गदर्शक हूँ दिल्ली से। और यह मेरी बेटी।... इसी समय वह ऑटो वाला हमारे पास आया और उसने ऑटो में बैठने का इशारा किया। हमने अपने-अपने सूटकेस उसमें लादे और बैठ गए।

अब हम तीन जन थे। शिविरार्थी युवक बीच के किसी स्टेशन से इस गाड़ी में चढ़े थे और हमारी तरह कल से ही तमिलनाडु बंद को झेल रहे थे। भुवनेश्वर से, नाम था शंकर नायक। बेहद विनम्र और शिष्ट।

बिस्तरों पर आराम करते शहर से गुजरता हुआ ऑटो करीब दस-पंद्रह मिनट बाद जिस जगह जाकर रुका, वह प्रायः बाजार ही था दोनों ओर दुकानें। खंभों पर टंगी रोशनियाँ। पढ़े जाने योग्य दुकानों के नामपट्ट। हम ऑटों से उतरे। ऑटोचालक ने सामने ऊपर की ओर संकेत किया। हिंदी विद्यापीठ, पय्यनूर! नामपट्ट पढ़ते ही सारी दुःशंकाएँ उड़न-छू!... लेकिन यह कैसी विद्यापीठ है? तीन-चार दुकानों के ऊपर ध्वस्त प्रायः छज्जा और उसी की रेलिंग से झूलता पुराना-सा नामपट्ट!....

मैंने ऑटोचालक को दस का नोट दिया। नोट लेकर उसने दो रुपए वापस लौटाए और स्वयं भी वापस लौट गया। बगल ही में जीना था। अँधेरे में डूबा। माचिस की तीली जलाकर मैं ऊपर चढ़ा। अनुमान यह था कि ऊपर कोई चौकीदार होगा, संभव है बाहर से आए लोग भी हों। लेकिन नहीं, ऊपर दाएँ कमरे का जो दरवाजा था, उस पर ताला पड़ा था, और जीने से और ऊपर जाने का साहस नहीं था। नीचे दुकानों में से एक जो हेयर कटिंग सैलून थी, उसका द्वार एक साथ खड़े किए गए तख्तों से बंद था और कुछ रोशनी भी थी। झिर्रियों से भीतर झाँका तो देखा, उसमें एक व्यक्ति सोया हुआ है। शंकर नायक ने फट्टों को थपथपाया। कई बार की थपथपाहट के बाद उस व्यक्ति ने एक तख्ते को हटाकर बाहर झाँका। मैंने हाथ जोड़कर कहा- उपकारम्... और बाहर आने का संकेत किया। अब वह आदमी बाहर आ गया। उसने सिर्फ कच्छा पहन रखा था। उम्र करीब साठ-पैंसठ। दुबला-पतला। कमर जरा झुकी हुई। पास

आया तो लगा, कुछ पिए हुए है। मैंने ऊपर की ओर संकेत करते हुए हिंदी विद्यापीठ का नाम लिया। इशारे से कहा कि ताला खोल सकेंगे क्या? इशारा समझकर वह दुकान में गया और दो-तीन चाबियों का गुच्छा उठा लाया। हम खुश। जीना चढ़ने लगा तो शंकर नायक भी उसके पीछे चले। ताला खोलने की उसने कई बार कोशिश की, लेकिन व्यर्थ। दरअसल वह अपनी दुकान की चाबियों से ही विद्यापीठ का ताला खोलने का उद्यम कर रहा था, जबकि हम यह समझ रहे थे कि विद्यापीठ की चाबियाँ भी उसी के पास हैं।

आखिर ताला न खुलना था, न खुला। अब क्या करें, कहाँ जाएँ? रात करीब साढ़े बारह का समय और एक अनजाने शहर में हम तीन लोग। अब फिर इधर-उधर किसी को तलाशने की कोशिश की। देखा तो पाँच-सात सौ गज दूर एक दुकान के फुटपाथ पर बीड़ी जलाते दो आदमी नजर आए। आगे बढ़कर मैंने उन्हें पुकारा। उठकर उनमें से एक हमारी ओर आया। मैंने विद्यापीठ की ओर इशारा करते हुए अपनी परेशानी व्यक्त करने या उसे समझाने की कोशिश की। आश्चर्य कि वह सबकुछ समझ गया और अपने पीछे आने का इशारा कर आगे-आगे चल दिया। करीब एक फर्लांग तक मेन रोड पर हम भी उसके पीछे चले, और कुछ ही देर में जहाँ पहुँचे, वह था 'बाम्बे होटल'। मेन रोड से थोड़ा ही अंदर, एक गली में। होटल का बड़ा-सा चैनल गेट बंद था, लेकिन भीतर रोशनी थी; और उसमें हम उसके रिशेप्सन को साफ-साफ देख रहे थे।

अब उस भले मानुष ने होटल का चैनल गेट खटखटाया। कुछ कहकर पुकारा भी। तभी देखा कि 14-15 साल का एक लड़का रिशेप्सन के पीछे से आँखें मलते हुए उठ रहा है। शरीर पर बनियान और निकर। वह गेट तक आया और बाहर के हल्के-उजाले में हमें खड़े देखा। फिर उस सज्जन ने हिंदी विद्यापीठ का नाम लेते हुए लड़के से कुछ कहा। लड़के ने रिशेप्सन-काउंटर की एक दराज से चाबियों का गुच्छा निकाला और गेट का ताला खोल दिया।

अब हम अंदर थे; और मन ही मन उस व्यक्ति का आभार व्यक्त कर रहे थे, जो अपरिचित होकर भी हमें सही जगह ले आया था।

यह लड़का जिसे बाद में हमने बिजू के नाम से जाना, हिंदी समझता था; कुछ-कुछ बोल भी लेता था। हमने उसे बताया कि हम कहाँ से आए हैं। यह वह पहले ही समझ गया था कि हम हिंदी विद्यापीठ के मेहमान हैं। फिर भी उसने होटल-मैनेजर को फोन मिलाया और मलयालम में बात करने के बाद चोगा मुझे थमा दिया।... शुभ रात्रि।... उधर से मैनेजर का स्वर था। उत्तर में मैंने भी 'शुभ रात्रि' कहा और इतनी रात गए जगाने के लिए खेद भी प्रकट किया। उन्होंने कहा कि नहीं-नहीं, ऐसा क्या है आप लोग हमारे मेहमान हैं। अपना कमरा आप ले लें और अराम करें। वे अच्छी-खासी हिंदी बोल रहे थे।

जीना चढ़कर हम पहली मंजिल पर पहुँचे। बिजू ने हमें पाँच नंबर कमरे तक पहुँचाया; और अभी वह ताला खोल ही रहा था कि बाईं ओर, बरामदे के प्रायः एक छोर से एक सज्जन हमारी ओर आए। पूछा तो परिचय दिया। उन्होंने हाथ मिलाते, वैलकम कहते हुए कहा- ऑय यॅम इंदुभूषण! फ्रॉम हिंदी डॉयरेक्ट्रेट!

मैंने कहा- 'ओह! अच्छा-अच्छा! जाग रहे हैं। अभी आप लोग!'

उन्होनें कहा- 'हाँ, आइए! इंट्रोडक्शन हो जाए सबसे।'

'बस, अभी आया। सामान रख दें ज़रा। हाथ-मुँह धोकर पहुँचता हूँ।' मैंने कहा।

'बच्चे रख लेंगे सामान, आप आइए।' उन्होंने कहा तो मैं उनके साथ हो लिया।

कक्ष हॉलनुमा था। कई लोग थे उसमें। बेहद अनौपचारिक माहौल। दो और मित्रों को देखा तो मैं भी एकदम सहज-सामान्य हो गया। डोभाल जी ने देखते ही कहा- अरे, आओ कृषक! हम तो चिंता कर रहे थे यार, पता नहीं कहाँ फँसे होंगे बंद में!

मैंने भी कहा-पहुँच ही गए बस किसी तरह। पर अब ठीक है।

बलदेव वंशी से भी हाथ मिलाया। भव्य लग रहे थे। बेहद सरल, सौम्य, मासूम-से लग रहे थे। एक और सज्जन से परिचय हुआ- डॉ. सुवास कुमार। केंद्रीय

विश्वविद्यालय, हैदराबाद। अपार खुशी हुई। उनकी कुछ कविताएँ और आलोचनाएँ मैंने पढ़ रखी थीं। मैंने यह जताया तो संकोच से सिमटते हुए उन्होंने बताया कि 'नीम की पत्तियाँ' का स्वाद वे भी जानते हैं!

तभी बातचीत के दौरान इंदुभूषण जी को पता चला कि मेरे साथ मेरी बेटी है, बेटा नहीं; और साथ में जो वह युवक है, शिविरार्थी है, तो उन्हें जैसे करेंट छू गया! बोले- शिविरार्थियों को अलग एक स्कूल में ठहराया गया है। यहाँ वह कैसे रुक सकता है?

जाहिर है, अफसर थे वे। अपनी ही अफसरी से बुरी तरह परेशान! इसी झोंक में दूसरों को भी परेशान करते रहते थे। उन्होंने नायक को अपने पास बुलाया और उसकी अच्छी-खासी क्लास ले डाली। अंत में एक राह निकालते हुए बोले-अच्छा तो तुम बरामदे में सो सकते हो, रूम में नहीं!

मैंने कहा- इंदुभूषण जी, आप सुबह तक के लिए इन्हें मेरा बेटा ही मानें। ये मेरे ही कमरे में सो लेंगे। बरामदे में गर्मी है, और मच्छर भी।

तीनों शिक्षक मित्रों ने भी मेरा समर्थन किया। आखिर वे मान गए, पर भारी अहसान-सा जताते हुए।

शिविर का समापन तेरह फरवरी को होना था। उद्घाटन सत्र में मैं अनुपस्थित रहा था पर अगले ही दिन तमाम छात्रों और विद्यापीठ के पदाधिकारियों से जो आत्मीयता बनी, वह अंत तक बनी रही।

अंजु (अर्चना) बहुत खुश थी। इतनी लंबी यात्रा कर उत्तरी केरल के इस कस्बे ने उसका मन मोह लिया था। श्रीदेवी, गीताश्री, रत्नमणि और खासकर पूना से आईं डॉ. पद्मजा तो उसकी दोस्त ही बन गई थीं।

केरल के नक्शे पर पय्यूनर को बिंदुवत् देखते हुए लगा था कि सागर-तट पर तो वह है ही, इसलिए पांडिचेरी की तरह रोज सुबह-शाम सागर-दर्शन हुआ करेंगे। अर्चना भी समुद्र देखने के लिए लालायित थी, पर वह तो कस्बे से करीब पैंतीस किलोमीटर दूर लहरा रहा था।

फिर भी एक दिन, पर्यटन-सत्र के दौरान, शाम चार बजे हम तमाम साथी, शिविरार्थी सागर-तट पर जा पहुँचे। नाश्ता कर सुबह ही एक मिनी बस से निकले थे हम। डोभाल जी नहीं थे साथ। उनकी तबीयत खराब थी। वे वहीं होटल में रुक गए थे।

इस आउटिंग का पहला पड़ाव था स्नेक गार्डन। रास्ते में एक और दृश्य भी देखा। सड़क पर जाम जैसी स्थिति। दोनों ओर लोगों के झुंड। पेड़ों तक पर लोगों का बसेरा। पता चला किसी फिल्म की शूटिंग चल रही है। हीरो हैं मम्मुट्टी। मम्मुट्टी, माने मोहम्मद कुट्टी। असली नाम। लेकिन फिल्मी दुनिया में आजकल असल का क्या काम। खैर, हमारे साथ हिंदी विद्यापीठ के जो संचालक थे, उन्होंने कहा कि मम्मुट्टी साहब से आप लोगों की भेंट करा देता हूँ। मलयाली फिल्मों के अमिताभ बच्चन हैं ये! फिर आगे बढ़कर वे यूनिट मैनेजर के पास गए। मुलाकात के लिए बात की। यह जानकर कि हम लेखक हैं, और साथ में हिंदीतर क्षेत्रों से भी कुछ छात्र-छात्राएँ हैं, यूनिट मैनेजर ने मम्मुट्टी से पूछकर मिलने की बात स्वीकार कर ली।

मम्मुट्टी से हम अध्यापकों ने हाथ मिलाया और मुस्कुराहटों का आदान-प्रदान भी हुआ। कुछ फोटो-वोटो भी खींचे गए। लेकिन मम्मुट्टी कार के दरवाजे पर अपना पैर टिकाए जिस फिल्मी स्टाइल में पहले से खड़े थे, वैसे ही खड़े रहे। वैसे भी पुलिसिया रोल में थे वे। यह देखकर, कम से कम मुझे तो अच्छा नहीं लगा। जानता हूँ, हीरोइज़्म का नशा कम नहीं होता, पर कलाकार के मनुष्य को छोटा वह जरूर कर देता है। वह दृश्य मेरे स्मृति-पटल पर आज भी नक्श है।

बहरहाल, आगे बढ़े तो सीधे स्नेक गार्डन। ऐसे गार्डन या कहिए पार्क में मैं पहली बार गया था। जगह-जगह बने बाड़ों में साँप ही साँप। रंग-ढंग सबका अलग-अलग। एक हौज जैसे पक्के कुएँ में तो वे रस्सियों की तरह परस्पर उलझे हुए थे। एक अन्य कुएँ में जो विशालकाय हल्दिया साँप था, उसे उसका रखवाला हाथों में उठा लेता था, और दर्शकों से यह आग्रह करता था कि इसे आप लोग भी संभाल सकते हैं। यह काटता नहीं है। फिर भी था तो वह साँप ही। अँधेरे में पड़ी रस्सी भी अगर दिख जाए, तो धड़कने बढ़ जाएँ। तो भी कई शिविरार्थियों को पीछे छोड़ते हुए अर्चना ने उस नाग को अपने दोनों हाथों में किसी नवजात की तरह संभाल लिया और हँसती रही। कौन जाने, अपनी बहादुरी पर

भाषा ISSN 0523-1418

या हम सब पर। उसके उस साहस को मैं भी पहली बार देख रहा था।

और जब हम आगे बढ़े तो अंजु और हम सबके स्वागत के लिए समुद्र का अछोर विस्तार दोलायमान था। अंजु उसे पहली बार देख रही थी। मैं दूसरी बार। पद्मजा भी उसे देखकर बेहद रोमांचित थीं। दूर तक फैली हुई रेत। रेत की प्यास बुझाती हुई लहरें। दूर-दूर तक तैरती हुई डोंगियाँ। तट पथरीला था और समुद्र गहरा। नीचे उसकी तटवर्ती रेत तक पहुँचने से पूर्व हम किनारे की चट्टानों पर सन्नद्ध लाइट हाउस तक भी गए। उसकी गैलरीनुमा पहली मंजिल तक चढ़े भी। समुद्र वहाँ से और अधिक विस्तृत और गहरा लग रहा था, और अधिक शांत भी। अट्टहास करती हुई लहरें भी समतल होने का भान करा रही थीं, और तैरती हुई नावें बेहद छोटी दिखती थीं, जैसी बरसात के दिनों में गली-गलियारों में कागजी नावें तैराई जाती हैं।

उतरे तो लाइट हाउस की बगल से बाँस के दरवाजों से निकलते हुए हम सब समुद्री लहरों तक जा पहुँचे। सूखे और गीले समुद्र तट पर हर तरफ सीपियाँ, शंख और घोंघे फैले हुए थे; और जैसे समुद्री लहरों की ही तरह बिखरी हुई दौलत समेटने की उमंग मन में उठे, उसी तरह हम सभी छोटे-बड़े उन्हें बटोरने लगे। डॉ. पदमजा और अंजु बिटिया को तो जैसे पर लग गए हों। उन्होंने अपनी ओढ़नियों में ढेरों सीपियाँ सँभाल लीं। हँस रही थीं, खिलखिला रही थीं दोनों। अन्य युवक-युवतियों का भी यही हाल था। कभी मैं उन्हें देखता, कभी उछलती-खेलती समुद्री लहरों को। लहरों का पाँवों के नीचे से रेत को खींचना हमें अद्भुत अहसास से भर जाता था, और हम बार-बार हँसती-खेलती उन लहरों के आने की राह देखते थे। लगता था, जैसे हम उनका भेद जानते हों, और वे हमारा। याद आई मुझे वह ग़ज़ल, जो मैंने पांडिच्चेरी में पहली बार समुद्र को देखते हुए कही थी। यहाँ उसके सिर्फ दो शेर-

क्या जानूँ क्यूँ उमड़ा होगा पहली-पहली बार समंदर
बूँद बराबर रह जाता हूँ देख तेरा विस्तार समंदर

अपने मन-अनुकूल सदा ही शायद मैंने तुझको जाना
सुख में अट्टहास लगता है दुख में हाहाकार समंदर

पर वहाँ हर तरफ अट्टहास ही अट्टहास था। उसके और हमारे दोनों के भीतर। या कहिए कि हमारा और उसका हृदय एकमेक हो गया था।

दूर क्षितिज को छूता हुआ सूरज समुद्र की अथाह जलराशि को रंग-रंजित कर रहा था, और हमारी आँखें चाहती थीं कि वह सिंदूरी शाम सदा-सदा के लिए वैसी ही बनी रहे।

– सी-3/59, नागार्जुन नगर, सादतपुर विस्तार, दिल्ली-110090

❑❑❑

सब कुछ पाकर-सब कुछ खोकर

पवन कुमार खरे

सुबह से शाम तक कमरे में घुसे-घुसे मन व्याकुल हो उठा। कमरे का ताला लगाकर बाहर जाने के लिए निकल पड़ा हूँ। शाम के 6 बज चुके हैं। तारे निकल रहे हैं पर कृष्ण पक्ष का चाँद गंगा के उस पार पहाड़ की चट्टानों में छिपा है। अँधेरा आसमान से उतरकर गाँव की सँकरी गलियों में पसरता चला जा रहा है। रास्ते में सुभाष जी का घर पड़ता है। दरवाजे पर खड़े होकर तेज आवाज लगाकर उन्हें बुलाता हूँ। वे दौड़ते हुए आते हैं। मैं उनसे ईवनिंग वॉक के लिए साथ चलने के लिए कहता हूँ। मेरे दाएँ-बाएँ राजपूत घरानों की हवेलियाँ हैं। कुछ कच्चे घर हैं। कच्चे घरों और हवेलियों में खंभे के तारों से सीधा कनेक्शन लगा है। बाहर किसी तरह का मीटर नहीं है। शराब की दुकान से शराब पीकर कुछ लोग गाली-गलौज करते लड़खड़ाते लोट रहे हैं। एक आवारा शराबी शराब के नशे में नाली के किनारे लेटा हुआ कलिया को काँपती लड़खड़ाती आवाज में भद्दी गाली देता हुआ चिल्ला रहा है। तभी मैंने सुभाष से पूछ लिया-सुभाष! ये कलिया कौन है?

सुभाष- सर! इसकी कहानी बड़ी अजीबो-गरीब सुख-दुख से भरी है। ये हमारे यहाँ के दाऊसाहब दातरसिंह की इकलौती बेटी है। गाँव के सभी लोग इसे राजकुमारी कहकर बुलाते थे। इसकी शादी पास ही राजोरा गाँव के जागीरदार के बेटे प्रीतमसिंह से हुई थी। कुछ ही वर्ष बाद दाऊसाहब दातरसिंह की मृत्यु हो गई। माँ भी अपने पति के बिना ज्यादा दिनों तक नहीं रह पाई। चल बसी। दातरसिंह अपनी सारी वसीयत अपनी इकलौती बेटी कलिया के नाम कर गए थे। पचास एकड़ की अच्छी खेती भूमि, दो हवेलियाँ वसीयत में प्रीतमसिंह को मिल गई। प्रीतमसिंह अपना गाँव छोड़कर मेरे गाँव में ही बस गए।

चार पाँच वर्ष गुजर गए। दोनों पुत्र होने की गहरी लालसा में व्याकुल होने लगे। दांपत्य जिंदगी खिन्न भाव से भरती चली गई, हवेली सूनी पड़ी निराश भाव में डूबती चली गई। प्रीतमसिंह सुबह होते ही खेत पर चले जाते। राजकुमारी को हवेली का खालीपन विशेष तौर पर अहाते का खालीपन कचोटता रहता।

पूस का महीना। आसमान में गहरे काले बादल गर्जना कर रहे थे पर यह गर्जना अच्छी लग रही थी। सरसों अपने पीलेपन की आशा में खिल रही थी। दोनों जलती अँगीठी में कड़ाके की ठंड से बचने के लिए शरीर को गर्म कर रहे थे। थोड़ी ही देर में काले बादल गर्जन करते हुए बरस पड़े। कमरे की बंद खिड़कियों एवं दरवाजे की साँको से आती ठंडी हवा से कमरा ठंडा होने लगा। तभी राजकुमारी के चेहरे पर एक आशा भरी हल्की सी मुस्कुराहट दिखी। आँखे कुछ-कुछ भीगापन लिए लालिमा बिखेरने लगीं। उसे कुछ ऐसा अनुभव हुआ कि गर्भ में मन की आकुलता को शांत करने वाला जीव अपनी दस्तक दे रहा है। राजकुमारी इस आनंद में खुद को संभाल नहीं पा रही थी पर खुशियों ने उसके चेहरे पर खेतों में खिली पीली सरसों जैसी आभा भर दी। प्रीतमसिंह भी समझ गए कि राजकुमारी के खिलते चहरे का राज क्या है। तभी राजकुमारी ने अपने अनुभव की बात भीगी-भीगी आँखों

भाषा ISSN 0523-1418

से कुछ-कुछ डर, उत्सुकता, आशा भरे लहजे में कह डाली। थोड़ी ही देर में दोनों बेडरूम में जाकर लेट गए। देर रात तक नींद आई। खुशी-खुशी सो गए। आज निराशामय हवेली सुखद लगने लगी।

पाँच महीने खुशी-खुशी निकल गए। सावन का महीना आ गया। हवेली के सामने एक विशाल नीम का वृक्ष जिसकी एक बड़ी डाली हवेली की अटारी के बगल से होती हुई आधे बेडरूम को घेरती हुई हवा से झूलती रहती थी। उसी बड़ी मोटी डाली में एक बड़ा झूला प्रीतमसिंह ने डाल रखा था, जिसमें वे हर दिन झूला करते थे।

भीमसेन एकादशी का दिन। आज झूला झूलते हुए अचानक उन्हें तेज ठंड लगने लगी। शरीर काँपने लगा। काँपते हुए झूले से उतरकर वे सीधे कमरे में जाकर पलंग पर लेट गए। उन्हें मलेरिया हो गया। शाम होते होते मलेरिया मस्तिष्क की कोशिकाओं में चला गया। उनकी खराब हालात देख गाँव के सभी लोगों ने मिलकर उन्हें पास ही अस्पताल में भर्ती करवा दिया।

ज्यादा हालत खराब देख डॉक्टरों ने उन्हें आई.सी.यू. में ले जाकर उनको पलंग पर लिटाया। गहन चिकित्सा कक्ष में थोड़े ही समय में उनमें सुधार आने लगा। राजकुमारी पास ही बैठी थी। उसने सोचा घर से सारा सामान ले आया जाए। वह अस्पताल से घर आ गई। गाँव वाले देखभाल में लगे थे। सारा जरूरी सामान रखा लेकिन उसे नींद आ गई। रात्रि में करीब दो बजे वह उठी। उठकर चौंक कर चिल्लाने लगी। वह साड़ी भी नहीं पहन पाई थी कि दरवाजा खोलकर अस्पताल की तरफ भागी। घर के सामने नीम के पेड़ के चबूतरे से टकरा गई। सिर फट गया। खून निकलने लगा फिर भी अस्पताल को भागी। तभी बगल के बूढ़े दादाजी उठे। पूछा-क्यों बेटी। क्या हो गया। क्यों चिल्ला रही हो?

चाचा ये नहीं रहे। ऐसा कहते हुए वह अस्पताल की तरफ भागी। गाँव के कुछ लोग पीछे-पीछे दौड़ते चले गए। अस्पताल पहुँचते ही देखा कि आई.सी.यू. के पलंग पर पति पड़ा है। चारों नर्से खड़ी हैं। इंजेक्शन की बोतल लटकी है। उसकी नली निकाली जा रही है। गतप्राण हो चुके शरीर को उठाकर स्ट्रेचर पर रखा जा रहा है। गाँव के सभी लोग दुखी हैं। पति के गतप्राण शरीर को देखते ही राजकुमारी पछाड़ खाकर पति पर गिर पड़ी और लिपट गई। सुबह हो चुकी थी। गाँव के सभी लोग जैसे-तैसे प्रीतमसिंह के शव को घर लाए। शव को हवेली के सामने रख दिया। राजकुमारी शव के ऊपर ही लेट गई। उसने पति के साथ अपनी अंतिम यात्रा पर जाने की ठान ली। गाँव के सभी लोग इस दृश्य को देख दहल गए। उस समय राजकुमारी गर्भवती थी। पति के शव पर लिपटी-लिपटी सभी लोगों के सामने उसने अपना अंतिम निर्णय आँख फाड़ते हुए सुना दिया। कुछ कंजरवेटिव रूढ़िवादी गाँव वाले इसे उचित मान रहे थे, लेकिन जब शवयात्रा शुरू हुई तब गाँव के बुद्धिमान ब्राह्मण पंडित रामाधार जी ने कहा- बेटी! तुम ये क्या कर रही हो इनको जाने दो। भगवान की इच्छा को स्वीकारो। तुम यदि अकेली होती तो तुम्हें जाने की इजाजत जरूर दे देता। तुम्हारे अंदर भगवान का भेजा इन्हीं का अंश पल रहा है। यह तो निर्दोष है। तुम्हारे साथ यह भी जिंदा जल जाएगा। क्या ये पाप नहीं है, राजकुमारी। तुम्हें इसके प्रति माँ का फर्ज निभाना पड़ेगा। नहीं तो इनकी आत्मा को शांति नहीं मिलेगी। तुम इन्हें इनकी अंतिम यात्रा में अकेले जाने दो। सबको अकेले ही जाना पड़ता है। यदि तुम इनके साथ जलोगी तो भगवान के भेजे इनके ही पवित्र अंश की हत्यारी मानी जाओगी।

पंडित रामाधार की गहराई तक ठेस पहुँचाती बात सुन राजकुमारी बेसुध से सुध हो गई। वह उठ खड़ी हुई। पति के पार्थिव शरीर की परिक्रमा लगाकर उनके चरणों में शीष रखकर फूलमाला चढ़ा तन कर खड़ी हो गई। लाल-लाल भीगी फटी आँखों से उसने चारों तरफ देखा। बोली-ले जाओ इन्हें।

गाँव वाले जब प्रीतमसिंह का दाह संस्कार कर हवेली में लौटे तब राजकुमारी महिलाओं के साथ गंगा घाट स्नान करने जा रही थी।

हवेली में राजकुमारी अकेली रह गई। सूनी हवेली डरावनी दिखने लगी। हवेली की हर वस्तु जो प्रीतमसिंह के रहते सुखद लगती थी। अब उसकी याद में दुखदायी दिखने लगी। जिंदगी में कितने दिन आते हैं जो सुखद होते हुए बीतते चले जाते हैं। पर उनके चले जाने का

हमें दर्द इसलिए होता है कि हम उन्हें पुनः बुलाना चाहते हैं। उनके आने की गहरी प्रतीक्षा में बैठे रहते हैं। पर कुछ हादसे भरे दुखद दिन हम भूल नहीं पाते। उनके दोबारा आने की आशंका हमें डराती रहती है। पर जब कोई हादसा होता है तो जाते वक्त अपने पीछे कोई न कोई खुशी अवश्य छोड़ जाता है। जिसको हम या तो जान नहीं पाते या नजरअंदाज करते रहते हैं। यही हुआ राजकुमारी के साथ। 4 महीने पश्चात् एक बच्ची ने जन्म लिया। राजकुमारी के मन में छिपा बैठा गहरा अवसाद यह विचार आते ही चला गया कि पति का अंश नया जन्म, नया मेहमान बनकर आ गया। अब हवेली की हर वस्तु जो दुखदायी लगती थी अच्छी लगने लगी। पर विधाता की क्रूर इच्छा को कौन जानता है। वह जो करवाना चाहता है करवा लेता है। उसके पीछे हर इंसान मजबूर हो जाता है। राजकुमारी अभी 20 वर्ष की ही थी। बेटी के आने की खुशी, संपन्नता ने उसके चेहरे में छिपे अनिंद्य सौंदर्य जिससे वह अभी तक बेखबर थी। अपना रोकटोक प्रभाव दिखलाना शुरू कर दिया। अंदर छिपा गहरा खालीपन उसे चारों तरफ के परिवेश में भी दिखने लगा। खुद की सुंदरता से बेखबर राजकुमारी बेटी की परवरिश कर रही थी और घर, खेती की रखवाली भी।

हवेली के ठीक सामने आधा फर्लांग की दूरी पर एक मंदिर था उसके पास ही एक विशाल तालाब था। इस तालाब से गाँव वालों ने नहर निकालकर गंगा से जोड़ रखा था जिससे तालाब वर्षभर पानी से लबालब भरा रहता था। गंगा का पवित्र जल होने से गाँव वाले इसे गंगा तालाब के नाम से पुकारा करते थे। मंदिर का पुजारी हरिनारायण तिलकधारी ब्राह्मण सुबह शाम राजकुमारी को खेत जाते हुए ललचाई नजरों से देखता। लगातार एक महीने तक वह सुबह-शाम अपनी ललचाई नजरों के कारण यही हरकत करता रहा। शाम को लौटते वक्त राजकुमारी को ढेर सारा प्रसाद देता। राजकुमारी उसकी हरकतों से वाकिफ थी पर हरिनारायण के गोरे चिट्टे जवानी भरे सौंदर्य के आकर्षण में बंधती चली जा रही थी। हरिनारायण भी राजकुमारी के अनिंद्य सौंदर्य में डूब चुका था। आकर्षण का रोमांस दोनों तरफ से था।

एक दिन रात्रि को खेत से लौटते वक्त राजकुमारी देर रात तक रुकी रही। रात्रि के करीब बारह बजे जब वह खेत से लौटी हरिनारायण शाम से ही उसकी प्रतीक्षा में मंदिर के दरवाजे पर बैठा था। अंदर की तड़पन, व्याकुलता के दुष्प्रभाव से उसने काफी मात्रा में दारू पी ली। रात्रि के सुनसान अंधेरे में मंदिर के सामने राजकुमारी के गुजरते ही वह अपने को रोक नहीं सका। जवानी के जिस्म का शारीरिक आकर्षण जब परवान चढ़ता है तब सभी मान मर्यादाएँ घुटने लगती हैं और हुआ भी यही। राजकुमारी को देखते ही उसकी बेहद सुंदरता के वशीभूत हो वह उससे लिपट पड़ा। वह भी यही चाहती थी। राजकुमारी को मंदिर के पिछवाड़े में जहाँ वह सोया करता था ले गया।

इधर राजकुमारी की बेटी माँ की प्रतिक्षा में रो-रो कर चिल्ला-चिल्ला कर माँ को बुलाने लगी। उसका रोना सुन पड़ोस के चंदनसिंह उठे, उसे प्यार से समझाने लगे। बच्ची माँ-माँ चिल्लाती व्याकुल हो रही थी उसका रोना बंद नहीं हो पा रहा था। रात्रि के करीब दो बज गए। जब राजकुमारी नहीं आई तब वे बेटी को लेकर ढूँढ़ने के लिए निकले। मंदिर के पास से गुजरते ही चंदनसिंह ने देखा राजकुमारी धीरे-धीरे मंदिर की सीढ़ियों से उतरती चली आ रही है। हरिनारायण लड़खड़ाता हुआ पीछे चला आ रहा है। राजकुमारी की साड़ी अस्त-व्यस्त, फटी हुई, बाल बिखरे हुए, चेहरा कुछ-कुछ बिगड़ा-सा दिख रहा है। चंदनसिंह को देखते ही हरिनारायण डर गया। लड़खड़ाता, भागता हुआ मंदिर के पीछे तालाब के घाट पर छिपकर बैठ गया। चंदनसिंह ने उसका पीछा किया। गुस्से में आकर उसको दो चाँटे लगा दिए। भद्दी-भद्दी गालियाँ देते हुए अपमानजनक शब्द कहे। ब्राह्मण नौजवान, कर्मकांडी मंदिर का पुजारी शराब के नशे में चंदनसिंह की मार और अपमानजनक गंदी-गंदी गालियाँ सहन न कर सका। तालाब में कूद गया। घाट के निकट ज्यादा गहराई होने पर पानी में डूब गया। उसे तैरना नहीं आता था। हाथ-पैर पटकता हुआ बचाओ-बचाओ चिल्लाता हुआ गोता खाने लगा। चंदनसिंह को भी तैरना नहीं आता था। वे अपनी जान जोखिम में डाल पानी में कूदकर उसे बचा नहीं सकते थे। वह दौड़ते हुए मंदिर से बाहर निकले और चिल्ला-चिल्ला कर गाँव वालों को बुलाने लगे। गाँव के कुछ लोग सोकर उठे दौड़ते हुए आए और तालाब में बचाने हेतु कूद पड़े। तब तक देर हो चुकी थी। हरिनारायण के

तड़पते शरीर से उसके प्राण निकल चुके थे। जैसे-तैसे उसको बाहर निकाला। उसकी नाक से खून की धार बह निकली। पेट फूल गया। वह अपनी घृणित वासना की पाप भरी कायरता के कारण संसार से कूच कर गया।

गाँव वालों ने यही समझा कि अभागा जवान ब्राह्मण शराब के नशे में पानी में डूब कर मरा है। उसकी मौत के रहस्य को न चंदनसिंह ने किसी को बताया न ही राजकुमारी ने। अभागा ब्राह्मण हरिनारायण अपने पापकर्मों का फल भोगता हुआ दुनिया से कूच कर गया पर अपना प्रतिरूप राजकुमारी के जिस्म में जरूर छोड़ गया। जब तब समाज का दबाव हर किसी पर होता है तब तक वह गोपन व्यवहार करता है लेकिन जब कोई समाज के दबाव को फाड़कर पाथब्रेकर बन जाता है। तब समाज गोपन व्यवहार करता हुआ छी-छी करता फब्तियाँ कसना शुरू कर देता है।

तीन महीने में ही राजकुमारी पेट से हो गई। पेट बढ़ता चला गया। उरोज बड़े-बड़े हो गए। शरीर भले बेढंगा हो गया पर जिस्म के निखार और सौंदर्य में कमी नहीं आई। प्रीतमसिंह की मृत्यु के पश्चात् उसका विधवापन गाँव वालों की नजरों में निष्कलंक था पर हरिनारायण की मौत के बाद विधवापन पर कलंक का दाग लगने लगा। सुबह-सुबह जब वह अपनी बेटी के साथ खेत की ओर निकलती चंदनसिंह उसे अपने घर की खिड़की से झाँक-झाँक कर देखते। उनके चेहरे का गहरापन, बड़प्पन मान मर्यादा सब कुछ राजकुमारी को देखते देखते गायब होता चला गया। जिस पाप की इतनी बड़ी कीमत हरिनारायण को चंदनसिंह के कारण चुकानी पड़ी उसी पाप के घेरे में खुद को पाकर चंदनसिंह की आत्मा बिल्कुल नहीं कचोटी।

राजकुमारी का आठवाँ महीना चल रहा था। नौदुर्गा शुरू हो चुकी थी। अष्टभुजा देवी की मूर्ति के सामने शाम के वक्त पूजा करने का नाटक करती हुई वह गंगा तट पर देवी मंदिर जाती। चंदनसिंह भी राजकुमारी के पीछे देवी दर्शन का बहाना बनाकर मंदिर जाने लगे। दोनों नौ दिनों तक नौदुर्गा पूजन के बहाने मंदिर के पिछवाड़े बैठे रहते। देर रात घर लौट आते। अंत में जब इश्क का परवान दोनों पर हावी हो गया तब चंदनसिंह ने राजकुमारी को घर रख लिया। राजकुमारी के आते ही घर में कोहराम मच गया। चंदनसिंह की पत्नी और बड़ी बेटी ने इसका विरोध किया। हर दिन सावित्री और राजकुमारी के बीच लड़ाई झगड़ा कलह होता। चंदनसिंह राजकुमारी का पक्ष लेते हुए सावित्री को लातों से मारते, अपशब्द कहते हुए उसका दिल दुखाते। सावित्री इस गहरे संताप, प्रताड़ना, दारुण, दुख अपमान को ज्यादा दिनों तक सहन नहीं कर पाई। शरीर टूटता चला गया। दिल दारुण दुखों से भरता चला गया। उन्होंने आत्महत्या कर ली। उस समय चंदनसिंह राजकुमारी के साथ देवी दर्शन के बहाने मंदिर गए थे। वह जब वापस आए तो पत्नी के मृतप्राण शरीर को देख डर गए। बेटी शमिष्ठा भी उस समय घर में नहीं थी। अपनी सहेली के घर गई थी। जब वह लौटकर आई तो माँ के गतप्राण शरीर को देख लिपटकर दहाड़ मारकर रोने लगी। काफी देर लिपट-लिपट रो लेने के पश्चात् उठी। लाल-लाल भीगी तड़पती आँखों से राजकुमारी को अपशब्द कहते हुए बोली डायन चुड़ैल। तेरे ही कारण मेरी माँ ने आत्महत्या की है। तू ही मेरे घर को उजाड़ने वाली कुलटा नारी है। जब से तू आई तब से मेरी माँ कितनी तड़पी, कितनी व्याकुल हुई, इसको मेरी आत्मा ही जानती है। तू ही मेरे घर के सारे दुखों की जड़ है। आज मैं तुझे जिंदा नहीं छोडूंगी। ऐसे कहते हुए उसने दीवार में टंगी तलवार उठाई। राजकुमारी को मारने के लिए दौड़ी। चंदनसिंह ने रोते हुए बीच में तलवार छुड़ाते हुए कहा-बेटी शमिष्ठा। ज्यादा दुखी मत हो। इसमें राजकुमारी का कोई हाथ नहीं है। वह निर्दोष है। ज्यादा विलाप मत कर। माँ को खुशी-खुशी बिदा कर। जो कुछ होता है भगवान की इच्छा से ही होता है। इनका इतने दिनों का ही जीवन था। अब राजकुमारी तेरी माँ बनकर तेरी देखभाल करेगी। तुझे कोई कष्ट नहीं होने देगी बेटी।

पिता की सांत्वना सुन बेटी की दुखी आत्मा दहल उठी। गहरे संताप भरे भाव में आकर बोली पापा-अब भी आप इस कुलटा स्त्री का पक्ष ले रहे हो। इसी कारण आपने मेरी माँ को कितना मारा-पीटा। कितनी आत्मा तड़पाई मेरी माँ की। कितने दुख दिए। अब जब माँ मर गई तब भी आपकी आत्मा नहीं जाग रही। ये कुलटा क्या मेरी माँ की जिम्मेदारी निभाएगी। सारा घर नाश कर दिया इसने। पापा मेरी माँ तो वास्तव में सती सावित्री ही थी पर आप में सत्यवान बनने का एक भी संस्कार नहीं था।

फिर माँ को देखकर बोली- हे मेरी माता! मैं तुझको अकेले नहीं जाने दूँगी। मैं भी साथ चलूंगी। भगवान के घर दोनों साथ-साथ चलेंगे माँ। तू अकेली मत जा।

अपने आँसू पोछकर लाल आँखों से सल्फास की शीशी की तरफ देखकर बोली- हे मेरी माँ की प्राणघातिनी। तुझे खाकर मेरी माँ भगवान के पास जा रही है। मैं भी तुझे खाकर माँ के साथ जाऊँगी। माँ को अकेला नहीं छोड़ूँगी। ऐसे आत्मघाती शब्दों के साथ उसने भी तत्काल सल्फास की शीशी की सभी गोलियाँ गटक ली। बेहोश होकर गिर गई। चंदनसिंह और राजकुमारी इस भयानक दृश्य को देखते ही दहल गए। बेटी शमिष्ठा भी दुनिया से कूच कर गई।

रात का घना अंधकार और कृष्णपक्ष। आज चंदनसिंह और राजकुमारी को रातभर नींद नहीं आई। सुबह-सुबह पता चलते ही गाँव के लोग इकट्ठे हो गए। चंदनसिंह की हवेली के सामने भारी भीड़ जमा हो गई। पत्नी और शमिष्ठा की मौत के रहस्य का किसी को भी पता नहीं था। पत्नी और बेटी का एक साथ क्रिया कर्म कर दिया गया।

थोड़े ही दिनों बाद राजकुमारी ने एक बच्ची को जन्म दिया। चंदनसिंह ने उसे अपनी बच्ची स्वीकारते हुए समाज के सभी लोगों का मुँह बंद कर दिया कि बच्ची मेरी है पर राजकुमारी और चंदन दोनों जानते थे कि बच्ची हरिनारायण का ही प्रतिरूप है। इसमें हरिनारायण का ही अंश है। राजपूत समाज के सभी लोग राजकुमारी और चंदनसिंह के इस कृत्य से जलने-भुनने लगे। विशेष रूप से राजकुमारी के चाचा जो कि इस गाँव के थे बेहद दुखी थे पर ये राज वे नहीं जानते थे। चंदनसिंह की पत्नी सावित्री पुराने सड़े-गले संस्कारों में पली पुसी होने के कारण अपने जीतेजी कभी भी पति के पापकर्मों के खिलाफ बाहर समाज में अपनी आवाज नहीं उठा पाई। घर में ही कोहराम मचाती-मचाती दुनिया से कूच करके चली गई। पति को परमेश्वर मानने वाली धारणा उसकी आत्मा में रची बसी थी जिसे वह चाहकर भी मन से हटा नहीं सकती थी।

चंदनसिंह भले ही अपनी पत्नी और इकलौती बेटी को खो बैठा पर राजकुमारी का जज्बाती जिस्मी आकर्षण अभी उसकी जान पर सवार था। जिसे वह दिल से निकाल नहीं पा रहा था। राजपूत समाज के लोगों ने गंगा किनारे बने महाराणा सांगा भवन में अपनी एक सभा आयोजित की। सभी वृद्धजनों, महिलाओं एंव पुरुषों ने सर्वनिर्णय लेकर चंदनसिंह और राजकुमारी को समाज से बहिष्कृत कर दिया। पर इस जाति अपमान का चंदनसिंह एंव राजकुमारी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। राजपूत समाज कोई प्रभाव न पड़ने पर भड़क उठा।

एक दिन रात्रि के समय जब दोनों अपने घर में सो रहे थे। सारा गाँव सो रहा था, तब गाँव के कुछ युवा राजपूतों ने जमकर पत्थरबाजी करना शुरू कर दी। खिड़की के काँच तोड़ डाले। पत्थरों की आवाज से चंदनसिंह जागा। राजकुमारी डर गई। पत्थरबाजों ने घर को अस्त-व्यस्त कर, दरवाजा खिड़की तोड़कर घर में घुसना शुरू किया। राजकुमारी एंव चंदनसिंह दोनों बेटियों को लेकर पिछवाड़े से भाग खड़े हुए। राजकुमारी अपनी पुरानी हवेली में बेटियों को लेकर काँपती घबराती दुबक गई। चंदनसिंह गंगा के ब्रिज को पार करता हुआ भाग खड़ा हुआ।

दो दिनों तक चंदनसिंह गंगा के उस पार एक किसान की झोपड़ी में छिपा रहा। रात के समय राजकुमारी की हवेली में गया और बोला- राजकुमारी! वंश-बिरादरी के लोग अब हम दोनों को यहाँ रहने नहीं देंगे। चलो दोनों गाँव से बाहर किसी दूसरे गाँव में चलें। मैं अपना घर बेच देता हूँ तुम भी अपना घर बेच दो। बाहर शांति से तो रहेंगे। मैं अब तुम्हें छोड़ नहीं सकता। तुम्हारी और दोनों बेटियों की परवरिश की जिम्मेदारी अब मेरी है।

राजकुमारी के अंदर राजपूत समाज के लोगों का डर समा गया। सोशल स्टिगमा, जाति अपमान का डर ऐसा डर था जिससे राजकुमारी को जान से हाथ धोना पड़ सकता था। वह मरना नहीं चाहती थी क्योंकि अब वह दो बेटयों की माँ बन चुकी थी। जज्बाती भाव अब उसके अंदर समाप्त होता चला जा रहा था। आँखों से जिस्मानी आकर्षण की छाया नष्ट होती चली जा रही थी। आँखे अब दो बेटियों की ममता में भीग चुकी थीं।

राजकुमारी ने कहा- चंदन! मैं अब तुम्हारे साथ नहीं रहना चाहती। मुझे अपनी बेटियों की परवरिश करनी है। अपना अलग घर बसा लो।

राजकुमारी की मनाही सुन चंदनसिंह अवाक रह गया। दिल दहल उठा। जो उसने अभी तक सोचा तक नहीं था, उसके सामने घटित हो गया। अंतर्मन में बसे विश्वास को भाँपते हुए बोला-राजकुमारी। तुम ये क्या कर रही हो? आँखे फटी की फटी रह गई। फटी आँखों में दया, विषाद भाव झलकने लगा। माथे पर हाथ रखकर आँख बंद कर, खड़ा का खड़ा रह गया।

चंदनसिंह को व्याकुल होते देख राजकुमारी ने डरी हुई आँखों से दृढ़ता भाव से कहा- चंदन! जो मैं कह रही हूँ यही सच है। अब मैं तुम्हारे साथ नहीं रहने वाली। बहुत बदनामी करवाई है तुमने मेरी। अब हमारा तुम्हारा रास्ता अलग-अलग हो चुका है। यहाँ से चले जाओ।

राजकुमारी की पत्थर दिल भरी, हृदय फाड़ती आवाज सुन चंदनसिंह का दिल टूक-टूक हो गया। अंतरात्मा इतनी आहत हुई कि उठा और घर की ओर चल दिया। उस समय भी उसको दो बेटियों की माँ बेहद सुंदर आकर्षक दिख रही थी पर छलावा का भाव भी झलक रहा था।

घर आते वक्त उसका मुख सूख गया। आँखों में आँसू भर गए। अंदर उठे गहरे विषाद, हताशा ने ऐसा धावा बोला कि खुद को संभाल नहीं पाया। राजकुमारी के अनिंद्य सौंदर्य की मृगमरीचिका ने कितने पाप करवाए यही सोच-सोच आँखे आँसुओं से भरती गईं। उस रात हरिनारायण को इतना लज्जित किया कि गंगा तालाब में कूद अपनी जान गंवा बैठा। कितना बड़ा पाप किया इसी छलना के पीछे। सावित्री को कितना मारा-पीटा। वह आत्महत्या कर संसार छोड़कर चली गई। बेटी मेरे ही सामने जहर खाकर मर गई। सब कुछ खो दिया इस पापिन के पीछे। कितने पाप किए। मुझे इतना अंधा क्यों बना दिया प्रभु। ऐसा सोच-सोच कर वह घर जाकर दरवाजा खोलते ही चक्कर खाकर गिर पड़ा। बेहोश हो गया। कोई भी उसको पूछने नहीं आया।

अपने ही पापकर्मों के अपराध बोध से घिरा चंदन सिंह घर में बेहोश पड़ा है। अभागा-पापी अब अपनी गलती का अहसास कर रहा है जब सिर से पानी निकल चुका है। रात भर अपनी ही पत्नी-बेटी विहीन सूनी हवेली में मदहोश पड़ा रहा। विमूढ़ यही चंदनसिंह तभी से शराब के नशे में नालियों में लोटता हुआ कलिया को गाली देता चला आ रहा है।

सुभाष की कहानी सुनते-सुनते ही रात्रि के बारह बज गए। अब हम दोनों अपने-अपने घर को चल दिए।

– 196, शिवाजी पार्क कॉलोनी, उज्जैन

❑❑❑

सारागढ़ी

सुशील सरित

सितंबर का महीना था। धूप हालाँकि अब भी गुनगुनी थी लेकिन हवाओं ने नमी पकड़ना शुरू कर दिया था। जाँबाज सिंह ने खिड़की से बाहर झाँका। बाहर आकाश में हल्के-हल्के बादल थे। तभी बाहर दरवाजे पर किसी के कदमों की आहट ने जाँबाज सिंह को एहसास करा दिया कि दरवाजे पर कोई है। 'अरे वीरे तुम' जाँबाज ने दरवाजा खोलते हुए वीरे को बाँहों में भर लिया क्यों क्या मेरे आने का विश्वास नहीं था। 'नहीं-नहीं ऐसी बात नहीं लेकिन मैं सोच रहा था कि अब तेरी शादी हो गई है पता नहीं परजाई तुझे आने भी देगी या' जाँबाज के होठों पर मुस्कुराहट खेल गई। 'परजाई भी साथ ही आई है जाँबाज भाई साहब', कहते-कहते वीरे के पीछे से एक मुस्कुराता चेहरा चमका।

'अरे वीरे तूने बताया नहीं कि', जाँबाज सचमुच चौंका।

भाई साहब दो हफ्ते से यह कह रहे थे कि 12 सितंबर को भाई साहब के यहाँ पहुँचना है और वह भी सवेरे ही सवेरे तो मैंने सोचा कि मैं भी साथ चलूँ और देखूँ कि 12 सितंबर में ऐसी क्या खास बात है कि ये भाई साहब के पास जाने के लिए इतने उतावले हैं। मानिंदर ने अंदर आकर बैग एक तरफ रखते हुए कहा 'परजाई 12 सितंबर मेरे लिए दुनिया का सबसे बड़ा त्योहार है। ये तस्वीर देख रही हो', कहते-कहते जाँबाज सिंह ने एक आदमकद तस्वीर की तरफ इशारा किया, जिसमें 55-60 साल का कद्दावर सिख नंगी तलवार लिए खड़ा हुआ था 'ये मेरे परदादा की तस्वीर है। गुरुमुख सिंह जी' कहते-कहते जाँबाज ने ताजा लाल गुलाब के फूलों की माला उस तस्वीर पर चढ़ा दी और उसके सामने फौजी अंदाज में सैल्यूट किया। वीरे ने भी जाँबाज की तरह सैल्यूट कर माला चढ़ाई।

'परजाई जी! तुम सोच रही होंगी कि 12 सिंतबर और गुरुमुख सिंह का क्या संबंध है। वीरे मेरे बचपन का दोस्त है। आज से 25 साल पहले मेरे दादा जी जिंदा थे और उन्होंने हम दोनों को एक कहानी सुनाई थी जिसने वीरे को 12 सिंतबर और मेरे परिवार से ऐसा जोड़ दिया कि वह कहीं हो 12 सितंबर को मेरे पास आना और गुरुमुख सिंह को सैल्यूट करना नहीं भूलता।'

'ऐसा क्या हुआ था 12 सितंबर को' मानिंदर का प्रश्न स्वाभाविक था।

'बैठो परजाई जी आज तुम्हें भी वह कहानी सुनाऊँगा जो मेरे दादा जी ने मुझे सुनाई थी और उन्हें उनकी माँ यानी गुरुमुख सिंह जी की घरवाली ने।

ये 1857 की बात है। आज के पाकिस्तान के खैबर-पखतुंखवा प्रांत में अजीब सा माहौल था। यह अंग्रेजों का शासनकाल था हालाँकि 1857 का स्वतंत्रता संग्राम हो चुका था। नाना साहब, लक्ष्मीबाई जैसे स्वतंत्रता आंदोलन के योद्धा अंग्रेजों को नाको चने चबाने पर मजबूर कर चुके थे, लेकिन अंग्रेज अब भी अपना राज्य कायम रखने में न केवल कामयाब थे वरन् उनका दबदबा बढ़ता ही जा रहा था। वे भारत के सीमावर्ती इलाकों पर भी अपना राज कायम करने की योजना पर निरंतर कार्यरत थे। अफगानियों पर हमले उनकी इसी

भाषा ISSN 0523-1418

योजना के अंग थे। भारत अफगान सीमा रेखा के छोर पर उन दिनों दो किले बेहद महत्वपूर्ण थे। गुलिस्तान का किला और लाकहार्ट का किला। लाकहार्ट के किले में ब्रिटिश सेना रहती थी और गुलिस्तान का किला ब्रिटिश सेना के संचार का प्रमुख केंद्र था। गुलिस्तान किले से सटी हुई थी सारागढ़ी। सारागढ़ी भी किसी किले से कम मजबूत नहीं थी। सारागढ़ी की रक्षा के लिए 21 सिख सैनिकों की एक टुकड़ी तैनात थी। ये 10 सितंबर की बात है अफगानी क्षेत्र में अपने खेमे में अफगान सेनानायक गुल बादशाह इधर से उधर चहलकदमी कर रहा था। तभी उसके खेमे में सलाम करते हुए उसके खास सिपहसालार राशिद ने खेमे का परदा उठाकर प्रवेश किया। 'कहो राशिद क्या खबर लाए हो', गुल बादशाह ने अपनी तीखी नजरें राशिद पर जमा दीं।

'हुजूर सारागढ़ी को फतह करना आपके लिए बच्चों के खेल से ज्यादा नहीं है।' राशिद की आँखों में चूहे पर झपटने के लिए तैयार बिल्ली जैसी चमक थी।

'मतलब', गुल बादशाह की तीखी निगाहें राशिद पर टिक गई "मतलब ये हुजूर कि उस गढ़ी में कुल 21 सिख सैनिक हैं। गढ़ी भी कोई बहुत ज्यादा मजबूत नजर नहीं आती। हमारे पास तो खुदा के फ़जल से न फौज की कमी है और न ही फौज में शामिल जाँबाजों की। पहले ही हमले में उनकी शिकस्त होना तय है और इस गढ़ी के हाथ में आते ही गुलिस्तान किले पर कब्जा करना मुश्किल न होगा। मेरी राय में तो तुरंत हमला बोल देना ही ठीक रहेगा।" राशिद ने एक साँस में ही न केवल मुकम्मल रिपोर्ट दी वरन् अपनी सलाह भी दे डाली।

क्या कह रहे हो? सियासती नजर से इस किले की क्या अहमियत है इसे ये गोरे न समझते हों ऐसा नहीं हो सकता। फिर केवल 21 सिख सैनिकों की तैनाती का भला क्या मतलब हो सकता है। उस पर भी तब जब उन्हें ये तो अंदेशा होगा ही कि हम अफगान उस किले पर कभी भी हमला कर सकते हैं।

अब हुजूर इसके पीछे इन गोरों की क्या मंशा है ये तो आप ही बेहतर समझ सकते हैं, लेकिन यह खबर पक्की है कि उस गढ़ी में केवल 21 सिख सिपाही मौजूद हैं।

राशिद की खबर पर शक करने की कोई गुंजाइश ही नहीं थी, क्योंकि एक तो राशिद अपने काम में पूरी तरह माहिर था, दूसरे अगर 21 की जगह 2100 सिपाही भी होते तो गुल पर कोई फर्क नहीं पड़ने वाला था, क्योंकि उसके पास दस हजार सिपाहियों का पूरा लश्कर था अब दस हजार सिपाही तो बड़ी से बड़ी फौज के लिए काफी थे, तो इन 21 सिखों की उनके सामने भला चींटी से ज्यादा क्या औकात थी। गुल ने सोचने में ज्यादा वक्त न लगाते हुए तुरंत अपनी फौज को हमले का हुक्म सुना डाला। फौज तो पहले से ही तैयार थी। बस हुक्म मिलने की देर थी कि बात ही बात में सिपाही कूच के लिए तैयार हो गए। तय हुआ कि 12 सितंबर को कल सुबह ही हमला होगा।

12 सितंबर 1897 की सुबह बस हो ही रही थी अभी सूरज ने आसमान पर पहला कदम भी नहीं रखा था कि अफगानों की सेना ने टिड्डी दल की तरह सारागढ़ी को चारों तरफ से घेरना शुरू कर दिया।

गढ़ी में सिख सैनिक अभी सुबह की नर्म हवाओं की गोद में ही सोए पड़े थे कि अचानक गुरुमुख सिंह के कान सजग हुए वैसे भी कहावत थी कि गुरुमुख सिंह कुत्ते की नींद सोते थे। आँख खुलते ही जब उनकी नजर दूर से आते हजारों सिपाहियों की एक साथ बढ़ती टुकड़ी पर पड़ी तो एक बारगी तो उनकी समझ में ही नहीं आया कि माजरा क्या है लेकिन दो-चार पल बाद ही उन्हें उस भयानक खतरे का एहसास हो गया जो बड़ी तेजी से गढ़ी की ओर बढ़ा आ रहा था। बात ही बात में गुरुमुख सिंह ने पहले हवलदार ईश्वर सिंह को फिर ईश्वर सिंह के आदेश पर लाल सिंह, जिवा सिंह और भगवान सिंह को आने वाले खतरे से आगाह किया और फिर कुछ ही पलों में इक्कीस के इक्कीस सिख सैनिक ईश्वर सिंह के पास जमा हो गए।

इधर अफगानी सैनिक धीरे-धीरे गढ़ी के नजदीक से नजदीकतर होते जा रहे थे। सिख सैनिकों को समझ में नहीं आ रहा था कि आखिर इन हजारों सैनिकों का सामना कैसे किया जाए। 21 सैनिकों द्वारा हजारों की फौज को रोक पाना एक ऐसी चुनौती थी जिसको पूरा करने का एक ही मतलब था जान से हाथ धोना।

'हमारे पास बंदूके तो हैं लेकिन इतनी बड़ी फौज का मुकाबला करने के लिए ये नाकाफी साबित होंगी', लालसिंह ने अपनी चिंता जाहिर की।

'मैं लाकहार्ट किले को संदेश भेजता हूँ। वहाँ अंग्रेजों की बड़ी फौज तैनात है उम्मीद है कि जल्दी ही मदद मिल जाएगी', भगवान सिंह ने अपनी तजवीज पेश की।

'हाँ, सुना है वहाँ कर्नल हॉथसन मौजूद है। वह फौजी मामलों में बड़ी जल्दी और सही फैसला लेता है' कहते हुए गुरुमुख सिंह ने कर्नल हॉथसन को अफगानी सेना के हमले और गढ़ी की हालत के बारे में संदेश भेज दिया लेकिन उम्मीद विपरीत हॉथसन ने जवाब दिया कि तुरंत सहायता भेज पाना मुश्किल है। तुम लोग मुकाबला करो और तब तक करो जब तक कि हमारी फौज वहाँ न पहुँच जाए।

अब तो करो या मरो के अलावा कोई रास्ता नहीं था। ईश्वर सिंह ने एक बार सबसे पूछा कि अगर सब लोगों की राय हो आत्मसमर्पण कर जान बचाई जा सकती है।

'लेकिन, 'गुरु गोविंद के नाम पर हम धब्बा नहीं लगने देंगे। गुरुजी ने कहा था सवा लाख से एक लड़ाऊँ तब गोविंद सिंह नाम कहाऊँ तो हम तो 21 हैं लड़ते-लड़ते जान भले ही चली जाए लेकिन जंग में पीठ दिखाकर भागना हमें मंजूर नहीं।' कहते हुए गुरुमुख सिंह ने तलवार हाथ में उठा ली और गढ़ी में 21 कंठों से गूँज उठा 'जो बोले सो निहाल' बदले में जैसे गढ़ी की हर ईंट बोल उठी 'सत श्री अकाल'

सूरज धीरे-धीरे सर पर चढ़ रहा था। अफगान सेना अब बिलकुल सामने ही नजर आ रही थी। सभी सिख सिपाही ईश्वर सिंह के आदेशानुसार अपने-अपने मोर्चे पर किले के ऊपरी हिस्से पर डट गए। हर ओर सन्नाटा छाया हुआ था लेकिन सिख सैनिकों के चेहरे कसे हुए थे। आँखो में दृढ़ निश्चय और जेहन में बस एक ही ख्याल 'जब तक जिस्म में रक्त की एक बूँद भी बाकी रहेगी हम दुश्मन को गढ़ी में कदम नहीं रखने देंगे'। अफगानियों के घोड़ों की टापों के स्वर इस फैले हुए सन्नाटे में ऐसे महसूस हो रहे थे जैसे जेहन पर हथौड़े चल रहे हों। अचानक एक गोली की आवाज गूँजी ये जैसे जंग शुरू होने का ऐलान था। इसके बाद दोनों ओर से गोलियों की बौछार शुरू हो गई। गुल बादशाह ने एक बड़ी सी टुकड़ी को संकेत से गढ़ी के दरवाजे को तोड़ने की कोशिश की लेकिन इस बार भी असफलता ही हाथ लगी।

गुल बादशाह के लिए इससे ज्यादा तौहीन की बात क्या हो सकती थी कि मुट्ठी भर सिख सिपाही उसकी उस विशाल फौज को सफल नहीं होने दे रहे थे, जिसने बड़े-बड़े मोर्चे पलक झपकते ही फतह कर लिए थे। गुल बादशाह ने तुरंत निर्णय लिया और दूसरी टुकड़ी को गढ़ी की दीवार तोड़ने का हुक्म दिया। इधर भगवान सिंह और लाल सिंह गंभीर रूप से घायल हो चुके थे लेकिन घायल होते हुए भी लाल सिंह और जीवा सिंह भगवान सिंह के शरीर को अंदर ले गए। अब केवल अठारह सैनिक ही प्राणपण से मोर्चा संभाल रहे थे। अफगानों की रणनीति सफल रही आखिर वो दीवार भी कितनी देर टिकी रह सकती थी। दीवार के टूटते ही अफगानी सैनिक गढ़ी के अंदर घुस पड़े। गुल बादशाह ने विजय की मुस्कान के साथ बुलंद स्वर में सिखों को आत्मसमर्पण के लिए ललकारा। लेकिन बदलें में ईश्वर सिंह के आदेश पर सिख पीछे हटते हुए मोर्चा संभाले रहे। इन अठारह सैनिकों में सभी पूर्ण सैनिक नहीं थे। इनमें से कुछ रसोइए कुछ सिग्नलमैन भी थे।

एक बारगी तो लगा कि सिखों का मनोबल टूटने को है। उनके हाथों की तलवारें ढीली पड़ती जा रही थीं। तभी गुरुमुख सिंह जी का स्वर वातावरण में गूँज उठा 'जो बोले सो निहाल' स्वर में ऐसा जोश और जादू था कि सारे सिख 'सत श्री अकाल' कहते हुए नए जोश के साथ अफगानियों पर टूट पड़े। ये लड़ाई तीन घंटे से भी अधिक समय तक जारी रही। एक-एक सिख शहीद हो रहे थे, लेकिन उनका जोश बढ़ता जा रहा था। आमने-सामने की इस भयंकर लड़ाई में 600 से अधिक अफगान सैनिकों को धूल चटाते हुए सभी 20 सिख सैनिक शहीद हो गए। गुरुमुख सिंह युद्ध के समाचारों से कर्नल हॉथसन को बराबर अवगत करा रहे थे। वो 20 अफगान सिपाहियों को मौत के घाट उतार कर

इक्कीसवें सिख के रूप में अपना फर्ज बराबर निभा रहे थे कि अफगान सिपाहियों ने उन पर आग के गोले बरसाने शुरू किए और वह भी सत श्री अकाल कहते गुरु की अखंड ज्योति में समा गए।

सारागढ़ी हालाँकि तबाह हो गई लेकिन 21 सैनिकों ने वीरता के इतिहास का ऐसा पृष्ठ अपने खून की बूँदों से लिख दिया जिसका लोहा आज तक ब्रिटिश कौम भी मानती है। अफगानों ने गुलिस्तां किले को कब्जा करने का मंसूबा बांधा लेकिन 13-14 सितंबर की रात में ही अंग्रेज फौजों ने आकर पुनः सारागढ़ी पर कब्जा कर लिया। निश्चित रूप से ये माना जाता है अगर इन 21 वीरों ने असाधारण हौसले के साथ सारगढ़ी का मोर्चा न संभाला होता तो अफगानियों ने गुलिस्तान को हथिया लिया होता। उन 21 सिखों ने दिखा दिया कि गुरु गोविंद सिंह जी का कथन 'सवा लाख से एक लड़ाऊँ' झूठा नहीं हो सकता।

– 36, अयोध्या कुंज ए, आगरा-282001

❑❑❑

उठो, जागो और महान बनो के उद्घोषक : 'स्वामी विवेकानंद'

नरेश कुमार

शत्-शत् नमन नमस्कार वंदनीय तेजस्वी को,
तेज ज्ञान, वेदांत के जीवंत प्रतीक को,
नमन स्वदेश-प्रेमी, राष्ट्रमंत्र के उद्घोषक को,
दुखियों की ममता से पूरित था।
भारत-भूमि को तीर्थ-स्थल माना,
धूलिकण को स्वर्ण-सा मान दिया।
नमन करते हम तपस्वी आध्यात्मिक पुरुष को,
बचाया जिसने डूबती भारतीय संस्कृति को,
रोगी, भूखे, अपाहिज-सेवा को,
अपने जीवन का लक्ष्य बनाया।
नमन करते क्रांतिकारी संत को,
गरीबी, पतन देख जिसका मन रोया।
धर्म, संस्कृति के प्रति भाव जगाया,
जन-जन का मन सबल बनाया।
नतमस्तक हम आध्यात्मिक महापुरुष को,
जिसने विदेश में अमृत बरसाया।
बनाया लक्ष्य प्राणिमात्र कल्याण को,
आध्यात्मिक सुख में आनंद पाया।

नमन भारतीय संस्कृति-उन्नायक को,
समझा कर्म को ही पूजा पाठ।
निष्कर्मण्यता को महा पाप बताया,
'दरिद्र देवो भवः' का संदेश सुनाया।
माना हीनता को पतन का कारण,
भारतीय अस्मिता को झकझोर दिया।
'निकालो फिलहाल देवी-देवताओं को मन से',
दें हम उनके उस कथन पर ध्यान।
'जागृत देवता हैं दीन-दुखी प्राणी',
'करो पहले उनका पूजन-अर्चन'।
साधना से यदि न हो उपकार,
छोड़ो तुम उसे बार-बार।
करो दूसरों के लिए सेवा-कर्म,
समझो उनका यह जीवन-कर्म।
सभी धर्म है पौधे समान,
जिन्हें जन-विश्वास ने बढ़ाया।
न समझो किसी धर्म को हीन,
धर्मांतरण से उपेक्षित जन बचाया।

– जे 235, पटेल नगर-I, गाजियाबाद

❑❑❑

कमरे में टंगा लालटेन

सत्यनारायण भटनागर

बैठक घर में टंगा लालटेन
फैशन है। शोभा की वस्तु है
वह विस्मृतियों की स्मृति दिला रहा था
कभी लालटेन दीपक का सहधर्मी बन
प्रकाश का दूत बन जाता था।
घर-घर की शोभा था
साँझ होते ही याद आती थी उसकी
सफाई होती थी ध्यानपूर्वक
वह टेबल से लेकर जमीन पर भी शोभा देता था
प्रकाशपुंज बनकर
उसकी छोटी बहन चिमनी जलती रहती थी कहीं पास
सब कुछ यादों में सिमट कर रह गया है अब
उसका साम्राज्य सिमट कर रह गया विद्युत के प्रकाश में
चकाचौंध करती मचलती बिजली आ गई घर-घर में
एक बटन दबाने का सवाल था लो बिजली आ गई।
लो आ गया प्रकाश, फैल गया घर भर में
लालटेन गायब हो गया घर से
अब वह लटका है निःशब्द
अब वह प्रकाश का वाहक नहीं है।
अब बहुत याद आती है उसकी
जब चली जाती है बिजली अनायास
लालटेन का युग चला गया
हर एक का समय आता है जाता है
यादों की बारात में रह गया है लालटेन
मैं भी सोचता हूँ कि कहीं मैं लालटेन तो नहीं हूँ
कल तक जो मेरे साथी थे- हँसते गाते थे
आज नहीं है मेरे साथ
उनकी भी फोटो टंगी है दीवाल पर
याद दिलाता है- हम भी थे कभी
यह लालटेन भी यही तो कह रहा है।
मैं भी आने वाले कल में कभी
फोटो बनकर टंग जाऊँगा दीवाल पर
सबको टंगना है एक दिन स्मृति बनकर
स्मृतियाँ भी कितनी?
बस विस्मृतियों का यही अट्टहास है।

– 68, कालिंदी कुंज, पिपल्याहाना, इंदौर, मध्य प्रदेश-452001

❑❑❑

सच की दुकान

देवेंद्र कुमार मिश्रा

आइए जनाब
इस बाजार में एक दुकान अपनी भी है
यहाँ बिकते हैं वे आइने
जिससे सूरत नहीं
सीरत नजर आती हैं
यहाँ मिलती है सच्चाई
सच्चा धर्म और मनुष्य की मनुष्यताई
यहाँ वादे, दावे, झूठ नहीं बिकता
यहाँ मिलती है
नैतिकता, वफा, ईमानदारी
एक बार आइए
और खुद कहाँ हो पाइए
मगर अफसोस कि इस
दुकान में कोई नहीं आता
यहाँ रामायण नहीं राम मिलते हैं
यहाँ गीता नहीं कृष्ण दिखते हैं।
यहाँ अंधविश्वास नहीं विश्वास मिलते हैं
मगर दुख के साथ कहना पड़ रहा है
रोज की तरह आज भी दुकान
खाली है। लोग जाते हैं
जहाँ झूठ, अधर्म, जिहाद
अंधविश्वास, जन्नत के सपने बिकते हैं
लोग झूठ में जीना पसंद करते हैं
लोग झूठे हैं। ये कहना पड़ता है
खुद से भागकर पता नहीं किसको
तलाश रहे हैं लोग
भागने वालों को भगवान तो क्या
वे खुद को भी नहीं मिलते
इसलिए मधुर झूठे विज्ञापनों
पर छिपकर जाते हैं लोग
पता नहीं कहाँ से लग जाता है
दूसरे को भगवान मानने का रोग
बाजार में भगवान तलाशने वाले
जब लुटते हैं
तो समझते नहीं
किसी दूसरे बाजार में चले जाते हैं
आइना दिखाओं तो डर जाते हैं।
मैं तो बैठा हूँ सच की दुकान लगाकर
पत्थर ही खाए हैं प्यार की दुकान लगाकर
न जाने क्या होगा संसार का
जो भगवान से भीख
झूठों से भीख
और बैनर के बाबाओं के पास
जाकर लुटते हैं
और आते-जाते हमारी दुकान पर
पत्थर, जूते बरसा जाते हैं।

– पाटनी कॉलोनी, भरत नगर, चंदनगाँव, छिंदवाड़ा, मध्य प्रदेश-480001

❑❑❑

भाषा ISSN 0523-1418

बचपन

सुशांत सुप्रिय

दशकों पहले एक बचपन था
बचपन उल्लसित, किलकता हुआ
सूरज, चाँद और सितारों के नीचे
एक मासूम उपस्थिति

बचपन चिड़िया का पंख था
बचपन आकाश में शान से उड़ती
रंगीन पतंगें थीं
बचपन माँ का दुलार था
बचपन पिता की गोद का प्यार था

समय के साथ
चिड़ियों के पंख कहीं खो गए
सभी पतंगें कट-फट गईं
माँ सितारों में जा छिपी
पिता सूर्य में समा गए

बचपन अब एक लुप्त प्रायः जीव है
जो केवल स्मृति के अजायबघर में
पाया जाता है
वह एक खो गई उम्र है
जब क्षितिज संभावनाओं
से भरा था

– ए-5001, गौड़ ग्रीन सिटी, वैभव खंड, इंदिरापुरम्, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश-201014

❑❑❑

फैसला

कृष्ण शर्मा

त्रिकुटा पर्वत के शिखरों पर अभी थोड़ी-बहुत धूप थी, जब चंद्रकांत बस से उतरे। देखते ही देखते बस कठूआ और पठानकोट की ओर आगे बढ़ गई।

उनके अलावा चंद गिने-चुने लोग ही वहाँ उतरे-एक बक्करवाल, उसकी घरवाली और उनका सात-आठ वर्षीय बेटा। एक बुजुर्ग भी अपने युवा बेटे के साथ गाड़ी से उतरे। चलने से पूर्व बाप ने कंधे पर लटकते उपरने को फैलाकर दो बार झाड़ा। सर्दी के मौसम में भी बाप ने खद्दर की कमीज़-पतलून मात्र पहन रखी थी। ये दोनों बाप-बेटा किसी गहरी सोच में गुम थे।

राष्ट्रीय राजमार्ग और चंद्रकांत के गाँव के मध्य केवल चार किलोमीटर का फासला है। इस चार किलोमीटर में कहीं-कहीं बियाबान है तो कहीं-कहीं लोगों ने घर-ठिकाने बना रखे हैं। जहाँ उनकी छोटी-मोटी दुकानें भी चल रही हैं। रास्ते में फुलाही, बेर, सरींह और बबूल के ऊँचे-ऊँचे अनेक वृक्ष हैं।

'टंकी मोड़' के निकट पहुँचे तो चंद्रकांत ने हाथ-मुँह धोने का मन बनाया। कुछ अन्य लोगों ने भी वहाँ रुक कर आवश्यकतानुसार टंकी के पानी का इस्तेमाल किया और आगे बढ़ गए।

चंद्रकांत को कोई जल्दी नहीं थी। टंकी के साथ सटे सीमेंट के बेंच पर उन्होंने हाथ में पकड़ा अखबार बिछाया और बैठ गए। वे जानते थे कि 'टंकी मोड़' से श्री माता वैष्णो देवी की गुफ़ा वाले त्रिकुटा पर्वत के तीनों शिखर स्पष्ट दिखते हैं। हाथ जोड़ कर मन ही मन उन्होंने माँ की वंदना की। दिसंबर में दिन जल्दी ढल जाने के कारण अब धूप इन शिखरों पर से भी लुप्त होने लगी थी।

बक्करवाल का लड़का टंकी का नल अध-खुला छोड़ गया था। उन्होंने उठकर टोंटी को अच्छी तरह से बंद कर दिया और टंकी पर जड़े 'स्मृति-पत्थर' पर खुदी इबारत को ध्यानपूर्वक पढ़ने लगे।

लगभग पंद्रह वर्ष पहले यह 'स्मृति-पत्थर' स्वयं चंद्रकांत ने ही सूबेदार भद्रसेन को शहर की एक मशहूर दुकान से बनवाकर दिया था। पत्थर पर खुदी इबारत उन्होंने अपने हाथों लिखकर दी थी।

दरअसल रिटायर होने से पूर्व ही सूबेदार भद्रसेन यह निश्चय कर चुके थे कि नौकरी से फारिग होकर जब वे गाँव जाएँगे तो सबसे पहले अपने स्वर्गवासी माता-पिता की स्मृति में एक छबील बनवाएँगे....गाँव लौटने के उपरांत एक रोज़ उन्होंने शहर में चंद्रकांत से विचार-विमर्श किया था और इस प्रकार यह टंकी और दो बेंच वजूद में आए। टंकी भले ही गाँव से दूर थी, लेकिन उपयुक्त स्थान पर होने के कारण इसके पानी का उपयोग आते-जाते राहगीर अथवा दूसरे ग़रीब-गुरबे लोग बड़ी सहजता से कर सकते थे। टंकी के कारण ही यह स्थान 'टंकी मोड़' कहलवाने लगा।

सूबेदार द्वारा बनवाई टंकी आज भी सही सलामत थी, लेकिन सूबेदार भद्रसेन आज संसार में मौजूद नहीं थे। रिटायरमेंट के दो वर्ष बाद ही उनका देहांत हो गया। उन्हें फेफड़ों का कैंसर था....

भाषा ISSN 0523-1418

चंद्रकांत का गाँव जम्मू नगर से केवल पैंतीस किलोमीटर दूर है, फिर भी वे आज पूरे चार वर्ष बाद गाँव जा रहे थे। उनके हिसाब से, बैंक की नौकरी के कारण उन्हें समय की हमेशा तंगी रहती थी। समय की यह तंगी उन्हें सचमुच रहती थी या वे बहाना किया करते थे, इस बारे में यही कहा जा सकता है कि उनके कहने में आधी सच्चाई थी और आधा झूठ।

वैसे चार वर्ष के अंतराल में गाँव से उनके पिता जी पाँच-सात बार एकाध दिन के लिए शहर उनके पास आए थे। लेकिन उनके आने के पीछे बेटे और उसके परिवार से मिलने की आकांक्षा कम ही होती थी और आने का प्रमुख कारण यही रहता था कि वे थोड़ी-बहुत मात्रा में अपने खेतों में उपजा दाना-अनाज बेटे को समय-समय पर पहुँचा सकें, बस!

गाँव में खेत-खलिहान, घर-द्वार और कुछ ढोर-डंगर थे। ये सब कुछ पिता जी की देख-रेख में था। चंद्रकांत उनकी इकलौती संतान थे और पिछले पच्चीस वर्षों से शहर में रह रहे थे।

जीवन में हर व्यकित को थोड़ा-बहुत स्वार्थी अवश्य होना पड़ता है। अपनी आवश्यकता के अंतर्गत उसे अपने कार्यक्रम तय करने पड़ते हैं। ग़रज़ की पूर्ति हेतु समय न होते हुए भी समय निकालना पड़ता है। ठीक ऐसा ही चंद्रकांत को भी करना पड़ा। उन्होंने भी आज समय निकाल ही लिया और गाँव के लिए निकल पड़े थे।

शहर में पच्चीस वर्षों से किराए के मकानों में रहते-रहते चंद्रकांत और उनका परिवार तंग आ चुका है। कारण अनेक थे। एक तो किराया भरते-भरते वे उकता चुके थे, ऊपर से मकान मालिकों के नखरे कभी-कभी बरदाश्त से बाहर हो जाते थे। बैंक से ऋण लेकर उन्होंने शक्तिनगर क्षेत्र में एक भूखंड कब का खरीद तो लिया था, लेकिन उस पर घर बना पाने का कोई जुगाड़ बैठा नहीं पा रहे थे। घूम फिर कर उनका विचार गाँव की जायदाद बेच कर रकम इकट्ठी करने का बनता था। लेकिन, इस विचार को वास्तविक रूप दे पाने में सबसे बड़ी अड़चन यह थी पिता जी उम्र के अख़ीरले आखिरी पड़ाव में गाँव छोड़ कर शहर 'भटकना' नहीं चाहते थे। पिता जी की नज़र में शहरी लोग एक तरह से भटकाव भरा जीवन जी रहे थे।

बिरादरी में चंद्रकांत को एक संपन्न व्यक्ति माना जाता है, क्योंकि शहर में उनके पास मोटर, ए.सी., फ्रिज, टी.वी. और बैंक की अच्छी-खासी नौकरी थी। लेकिन, असल में हालत उनकी पतली थी। 'दूर के ढोल सुहावने.....' वाली ही बात थी।

गाँव में चंद्रकांत और हरबंस चौधरी के खेत साथ-साथ जुड़े हुए हैं। हरबंस चौधरी गाँव के एक खाते-पीते और खुशहाल व्यक्ति हैं। जीप-ट्रैक्टर, खेत-खलिहान, पंप-पानी, ढोर-डंगर आदि सब कुछ घर में है। वे प्रायः सोचते थे कि यदि चंद्रकांत का घर और खेत-खलिहान भी उन्हें हासिल हो जाएँ तो वे और भी अधिक खुशहाल हो सकते हैं... और चंद्रकांत को उनकी इस मंशा को लेकर कोई आपत्ति नहीं थी, क्योंकि हरबंस चौधरी मुनासिब मूल्य से अधिक ही दे रहे थे.....

पिछले दिनों चंद्रकांत की घरवाली रानी ने उन्हें कुछ ज्यादा ही मजबूर कर दिया कि उन्हें पिता जी को दो-चार संदेश भिजवाने पड़े कि वे किसी दिन हरबंस चौधरी के साथ शहर आ जाएँ, ताकि आमने-सामने बैठ कर सारी बात तय की जा सके। लेकिन, पिता जी नहीं आए। उधर, दूसरी ओर हरबंस चौधरी शायद आठ बार शहर आ कर चंद्रकांत को मिल गए थे।

आखिर चंद्रकांत को स्वयं गाँव आना ही पड़ा। उन्हें इस बात का मलाल ज़रूर था कि पिता जी बार-बार बुलाने पर शहर नहीं आए। लेकिन, वे जानते थे कि पिता जी जीते-जी न तो गाँव छोड़ना चाहते थे और न ही अपने खेत-खलिहान।

रेलवे-फाटक के निकट पहुँचे तो अंधेरा घिर आया था। जम्मू से चलकर पंजाब-दिल्ली की ओर जाने वाली कोई रेलगाड़ी आ रही थी। पता नहीं क्यों इसकी रफ्तार बहुत धीमी थी। डिब्बों के भीतर रोशनीं जगमगा रही थीं और कुछ यात्री खाने-पीने में व्यस्त दिखे। गाड़ी गुज़र गई तो दो शराबी ज़ोर-ज़ोर से झगड़ते हुए उनके निकट से गुज़रे। कोई अनजान व्यक्ति लगते थे।

रेलवे-फाटक से थोड़ी दूर, अंधेरी सुनसान पटरी के किनारे कुछ इसी प्रकार के लोग शायद 'पीने' के लिए जा बैठे थे।

गाँव की सरहद में प्रविष्ट हुए तो चंद्रकांत ने तालाब वाले पीपल के नीचे कुछ लोगों को ऊँचे सुर में

बहस करते सुना। निकट पहुँचे तो देखा गाँव के ही कुछ निवासी 'गाँव सुधार समिति' की मीटिंग हेतु जमा थे। किसी मसले को लेकर गंभीर बहस चल रही थी। बीस के लगभग लोग थे, जिनमें ताया हरिराम, मास्टर ताराचंद और हरबंस चौधरी जैसे नामचीन लोग भी शामिल थे। अन्य अधिकतर युवा वय के लोग थे। ये लोग ज़रा झगड़ालू, उतावले और घाघ वृत्ति वाले थे। चंद्रकांत प्रायः इन्हें शहर में अदालत-कचहरी में बड़ी शान से घूमते देख चुके थे। शग़ूफ़े छोड़ने में इन लोगों का कोई सानी नहीं था। इनके तर्क भी अपने ही गढ़े हुए हुआ करते थे। ये लोग मुँहफट थे, इसलिए किसी की हिम्मत नहीं पड़ती थी कि इनसे उलझे। अपने से उम्र में बड़ों को ये लोग 'भाई साहेब, भाई साहेब' कहते हुए उनकी खूब लानत-मलानत कर दिया करते थे।

चंद्रकांत की यहाँ रुकने की इच्छा नहीं थी, लेकिन ताया हरिराम और हरबंस चौधरी के कारण उन्हें वहाँ रुकना पड़ा।

चौधरी हरबंस की निगाह उन पर पड़ी तो वे धीरे से उठ कर एक ओर आ गए। उन्होंने चंद्रकांत को अपनी ओर आने का संकेत किया। निकट पहुँचने पर वे बोले- 'बहुत अच्छा किया चंद्रकांत भाई' आप आ गए। अब काम सिरे चढ़ा कर ही जाना... कल इतवार है, दोपहर को सारी बातें तय कर लेंगे। यहाँ इस समय पानी की बाँट पर बात चल रही है, 'आओ थोड़ी देर आप भी बैठ जाओ....'

घर पहुँचते-पहुँचते रात हो चुकी थी। सारा गाँव अंधेरे में डूबा था। गाँव में कहीं-कहीं खंभे तो थे, लेकिन उन पर बल्ब कहीं नहीं थे।

आँगन में छोटे बल्ब की धुंधली-सी रोशनी बिखरी हुई थी। पिता जी चारपाई पर बैठे हुक्का पी रहे थे। पगड़ी अभी तक उनके सिर पर टिकी थी। शायद कहीं बाहर से अभी-अभी लौटे थे और चंद्रकांत की ही प्रतीक्षा में थे। उनके आने की खबर शायद पिता जी को मिल चुकी थी 'पैरी-पौन्ना' के प्रत्युत्तर में चंद्रकांत को न तो कोई स्वागत दिखा और न ही कोई गरमाहट। प्रत्युत्तर ठंडा-सा था। चंद्रकांत सामने वाली चारपाई पर बैठ गए।

हुक्का एक ओर टिकाते हुए पिता जी ने कहा-

"संदेश तो मुझे मिले थे, और मैंने शहर जाने की कोशिश भी की थी, लेकिन जा नहीं पाया.... मेरा स्वास्थ्य आजकल ठीक नहीं रहता।"

पिता जी सचमुच बीमार-बीमार दिखे। शायद भविष्य की चिंता उन्हें लगातार सता रही थी। उम्र भर वे कभी किसी के मोहताज नहीं हुए। अब जीवन के आखिरी हिस्से में उन्हें यह कतई मंजूर नहीं था कि उन्हें पराए-बस हो कर जीवन गुजारना पड़े। सामने बैठे विचारों में गुम पिता जी बड़े उदास और लाचार भी लगे। चार वर्ष बाद बेटे के सहसा गाँव आने का मकसद तो उन्हें भली-भाँति ज्ञात था, लेकिन सच्चाई का सामना करने की मुश्किल घड़ी का सामना करते हुए शायद उन्हें घबराहट महसूस हो रही थी।

हालाँकि पिछली बार जब पिता जी शहर आए थे तो चंद्रकांत ने खुल कर उनसे इस बारे में बात की थी और एक तरह से उनसे 'हाँ' भी कहलवा ली थी। चंद्रकांत ने पहले उन से अपनी मजबूरियाँ बयान की थीं, फिर उन्हें कहा था कि गाँव में उनकी अच्छी देख-भाल करने वाला कोई नहीं है..... शहर में रहते हुए उन्हें कोई तकलीफ नहीं होगी, क्योंकि वे पूरे परिवार के साथ रहेंगे.... लेकिन, सबसे आवश्यक यह है कि शहर में अपना घर-ठिकाना तो हो....आदि-आदि। असल में, पिताजी को अपनी जन्म और कर्मभूमि से कुछ अधिक ही मोह था शायद, और जीते-जी यह मोह छूटने वाला नहीं था। शहर वे जब कभी भी आए, फौरन गाँव लौटने की जल्दबाजी में दिखे।

चंद्रकांत के साथ-साथ पिता जी ने भी खाना आँगन में बैठे-बैठे ही खा लिया। इस दौरान कोई बातचीत नहीं हुई। खाने से निपटे तो कुछ सोचते हुए चंद्रकांत रसोई की दाहिनी ओर वाले कमरे में चले गए। जानते थे कि जब कभी वे गाँव आते हैं तो उनका बिस्तर इसी कमरे में लगता हैं पैदल चलने के कारण उन्हें काफ़ी थकावट हो चली थी सैकड़ों बार वे पैदल इसी रास्ते से आए-गए थे, लेकिन कभी भी इस प्रकार से थके नहीं थे। शायद यह मन का मलाल ही था जिसके कारण चार किलोमीटर का रास्ता आज उन्हें काफी लंबा और थकाऊ लगा।

थकान नींद को अपनी ओर खींच रही थी। कमरे की रोशनी उन्होंने बुझा दी, तब भी आँगन वाले बल्ब के कारण कमरे में टिकी सभी चीज़ें स्पष्ट दिख रही

भाषा ISSN 0523-1418

थीं। दरवाज़े के ऊपर बने ताक में किताबों की दो गठरियाँ रखी नज़र आ रही थीं। इनमें उनकी प्राथमिक कक्षाओं से लेकर एम.कॉम तक की अनेक पुस्तकें बंद थीं।

उन्हें सहसा ख्याल आया कि इन गठरियों में अवश्य कुछ ऐसी पुस्तकें होंगी जो उनके बच्चों के काम आ सकती हैं, जैसे–अंग्रेजी की ग्रामर, कंपोजीशन, कोई छोटा–बड़ा शब्दकोश या और कोई ऐसी ही पुस्तक। उन्होंने कुछ पुस्तकें छाँट कर शहर ले जाने का निश्चय किया।

कुछ समय पहले जो नींद उन्हें अपने आगोश में खींच रही थी, उसका अब कहीं नामोनिशान तक न था। गहरी सोच ने उन्हें अपने घेरे में ले लिया था, इसलिए रात बिना सोए निकली जा रही थी। दो बार उठकर वे निकट रखा पानी पी चुके थे, और अब एक बार फिर उन्होंने पानी के दो घूंट भरे। कई प्रकार की आहटों से आसानी से यह क्याफा लगाया जा सकता था कि साथ वाले कमरे में लेटे पिता जी को भी नींद नहीं आ रही है। शायद उन्हें भी गहन सोच–विचार ने घेर रखा था।

चंद्रकांत प्रायः महसूस किया करते थे कि रानी कुछ ज्यादा ही उतावली है कि कब गाँव का घर–ज़मीन बिके और कब शहर में उनका घर बने। दूसरी ओर शायद पिता जी को यह चिंता थी कि घर–द्वार बिकने के उपरांत उनका क्या होगा? इस प्रकार से चंद्रकांत जैसे चक्की के दो पाटों के बीच पिसते रहा करते थे।

विचारों में घिरे चंद्रकांत ने अपने को टटोला। रानी के स्थान पर उन्होंने स्वयं को रख कर सोचा, फिर स्वयं को पिता जी के स्थान पर रख कर सोचा, लेकिन निर्णय नहीं कर पाए कि कौन सही है और कौन ग़लत। लेकिन, जाने क्यों मन के किसी एक कोने में उन्हें महसूस हुआ कि रानी ही थोड़ा गलत है। हर बात में उसका उतावलापन उन्हें जरा नहीं भाता। आज सुबह भी वह उन्हें खाने का डिब्बा पकड़ाते हुए जाने क्या–क्या कहती रही थी। वे चुपचाप दफ़्तर की तैयारी में लगे रहे थे। उन्होंने रानी की बातें सुनी भी, और नहीं भी सुनी। रोजाना ऐसा ही होता था।

रानी कुछ अजीब स्वभाव वाली प्राणी थी। वह उन लोगों में से एक थी जो घर में सुख–सुविधा की कुछ चीज़ें इकट्ठी कर लेने के बाद सोचते हैं कि वे दूसरों से ऊँचे हो गए हैं..... उसका ख्याल था कि उसका परिवार पड़ोस में रहने वालों से ऊँचे–स्तर का है, इसलिए उन्हें अपने और दूसरों के बीच अंतर रखना चाहिए। वैसे, जब विवाह हुआ था तो शुरू–शुरू में रानी को सादा जीवन गुजारने में विश्वास था। एम.ए. पास थी, फिर भी बहुत सीधी–सादी थी। किसी बात को लेकर उसने कभी कोई शिकायत नहीं की थी। धीरे–धीरे शायद उसे शहर की हवा लगती गई, उसके विचार बदलने लगे थे। शहर के एक ऊँचे–प्राइवेट स्कूल में जब से उसने पढ़ाना आरंभ किया था तो घर को सजाने–सँवारने में वह कुछ अधिक ही दिलचस्पी लेने लगी। शहरी रंग में वह इतनी रंग जाएगी– चंद्रकांत को आशा नहीं थी। उन्हें इस बात को लेकर भी हैरत होती कि गाँव की जायदाद को लेकर वह प्रायः आवेश में आ कर ज़ोर–ज़ोर से बोलने लगती थी.... शहर में अपना घर बनाने के लिए रानी को हमेशा गाँव की जायदाद का ख़्याल आता, लेकिन बुजुर्ग ससुर की सेवा–सुश्रुषा की उसे कभी चिंता नहीं होती थी..... कभी–कभार जब भी पिता जी उनके पास शहर आते तो चंद्रकांत ने रानी को हमेशा नाक–मुँह मरोड़ते देखा था। पिता जी जब पक्के तौर पर उनके पास शहर आ जाएँगे तो.....?

चंद्रकांत ने फिर पानी का घूँट भरा। हर ओर सन्नाटा और अंधेरा पसरा था। बहुत देर बाद किसी रेलगाड़ी की लंबी कूक सुनाई दी कोई लेट हो चुकी बे–मौकी गाड़ी थी शायद। चारपाई पर लगातार औंधे पड़े चंद्रकांत सोने का यत्न करते रहे, लेकिन आँखों के समक्ष बच्चों के चेहरे घूम रहे थे। विशेष कर रानी का चेहरा बार–बार आने लगता। रानी की अलग–अलग मुद्राएँ उन्हें दिखने लगतीं–कहीं रानी की सूरत खीझ और गुस्से वाली थी, तो कहीं शिकवा–शिकायत वाली. .....

रात भर चंदकांत विचारों में घिरे रहे। हाँ, प्रातः कुछ समय के लिए उनकी आँख अवश्य लग गई।

सुबह धूप जरा धुंधलाई हुई–सी थी, लेकिन शीघ्र ही मौसम साफ हो जाने के आसार भी दिखे। आँगन में कीकर के विशाल वृक्ष पर बैठे कुछ पक्षियों ने शोर मचा रखा था। चंद्रकांत का मन अभी भी रानी के

तकाज़ों और पिताजी की लाचारी के बीच कहीं उलझा हुआ था।

बरामदे में एक ओर कबाड़ जैसी चीज़ों का ढेर था– टूटी चारपाइयाँ, खाली टीन-डिब्बे या खाली बोतलों जैसी अनेक बेकार चीज़ें वहाँ बे-तरतीब बिखरी पड़ी थीं। नल के नीचे जूठे बर्तन रखे थे। टोंटी से निकलती पानी की बूंदे 'टप-टप' की आवाज़ के साथ बर्तनों पर पड़ रही थीं। इस सबकी अनदेखी करते हुए उन्होंने अपना मुख दूसरी ओर घुमा लिया। पिता जी का अकेले गाँव में रहना किसी भी तरह से उन्हें उचित महसूस नहीं हो रहा था।

पिता जी हाथ में छड़ी लिए बाहर से लौटे। शायद सुबह की सैर करने गए थे। छड़ी को मुंडेर के साथ टिका कर वे पीछे मुड़े और खूँटे से बंधी बछिया के निकट चले गए। बछिया की पीठ पर हाथ फेरते हुए वे चंद्रकांत को अजीब सहमी-सहमी निगाहों से देखने लगे, जैसे जबरन कोई उन्हें बछिया से अलग कर रहा हो!

आँगन में धीमे-धीमे कदम बढ़ाते एक नई नवेली दुल्हननुमा लड़की ने रसोई में प्रवेश किया। उसने लंबा घूंघट निकाल रखा था। टिन में से आटा निकालकर उसने परात में रखा और गूँधने लगी। बिरादरी में रिश्ते के हिसाब से यह लड़की शायद चंद्रकांत की पौत्र-बहू और पिता जी की प्रपौत्र-बहू भी थी। पिता जी का रोटी-पानी इसी प्रकार से चल रहा था।

सुबह के नौ बजकर पैंतीस मिनट हो चुके थे। आकाश अब साफ हो गया था। सर्दियों में धूप में बैठने का आनंद चंद्रकांत को कई दिनों बाद आज ही आया था। शहर में धूप का भी घाटा है। धूप ही क्या, वहाँ, बिजली-पानी, ताजी हवा जैसी हर चीज़ की तंगी थी। यही नहीं, वहाँ प्यार-सौहार्द और भाईचारे की भी कमी रहती है।

किसी ने धीमे-से ड्योढ़ी वाले दरवाज़े को थपथपाया। देखा, ताया हरिराम थे। वे आकर चारपाई पर पिता जी के पास बैठ गए। चंद्रकांत को लगा जैसे ताया जी उन्हें कुछ कहना चाहते हैं, लेकिन झिझक रहे हैं। वे जानते थे कि सुबह-सुबह ताया जी और पिता जी एक साथ सैर करने जाते हैं और वहाँ अवश्य ही पिता जी ने उनके समक्ष अपनी चिंता जताई होगी। अब पिता जी के पक्ष में शायद ताया जी चंद्रकांत से बात करने आए थे। जो कुछ ताया जी कहना चाहते थे वो सब कुछ चंद्रकांत से ढका-छुपा नहीं था।

सरसरी एकाध बात के उपरांत ताया जी लगातार चुप रहे तो चंद्रकांत को उकताहट-सी महसूस होने लगी। शायद पिता जी भी कुछ ऐसा ही महसूस कर रहे थे।

'और सुनाओ चंद्रकांत, बच्चे कुशल हैं न? अभी पढ़ाई ही कर रहे हैं शायद.....?' आखिर ताया जी ने चुप्पी तोड़ी।

चंद्रकांत को ताया जी का प्रश्न बड़ा अनुकूल लगा। प्रत्युत्तर में जो कुछ उन्होंने घुमा-फिरा कर कहा, वो सब कहने का अर्थ यही था कि उनकी आमदनी में उनका गुजारा सहजता से नहीं चलता.... महीने के अंतिम दिन बड़ी मुश्किल से निकलते हैं। सादा दाल-फुल्का भी जैसे-तैसे ही चलता है.... घर, बिजली, पानी और अन्य किराए-भाड़े भरते हवा निकल जाती है, अतः शहर में अपना घर होना बहुत ज़रूरी है.... बच्चे बड़े हो रहे हैं और कल को उनके शादी-ब्याह होने हैं. ...

जान-बूझकर चंद्रकांत ने ये सब कुछ जरा ऊँची आवाज में इसलिए कहा, ताकि कुछ ही दूरी पर बैठे पिता जी ठीक तरह से सुन लें। पिता जी को गाँव की जायदाद रजामंदी से बेच देने के लिए दिमागी तौर पर तैयार करने की यह चंद्रकांत की अपने ढंग की एक युक्ति थी।

ताया जी ठगे-से वहाँ बैठे कुछ पल सोचते रहे, लेकिन बोले कुछ नहीं। चंद्रकांत मुगालते में थे ताया जी ने उनकी बातें सुनी भी हैं या नहीं। ताया जी की आँखें खाली-खाली थीं। उधर, पिता जी की घनी भौंहें सिकुडने लगी थीं चाय का गिलास पड़ा-पड़ा ठंडा हो रहा था, लेकिन चाय की तरफ पिता जी का ध्यान नहीं था। उनका चश्मा चारपाई के एक कोने में पड़ा था।

ताया जी चाय कभी की पी चुके थे, लेकिन गिलास अभी भी उनके हाथ में था। कुछ देर बाद वे उठे और गली की राह निकल गए।

तीन बजे के आस-पास चंद्रकांत घर से निकले। आज चार वर्ष बाद भी उन्हें गाँव में कोई बदलाव नहीं दिखा। गाँव में जितनी उन्नति होनी चाहिए थी, नहीं हो

सकी थी। इतवार होने के कारण चौगान में बहुत सारे लोग बैठे-खड़े थे चंद्रकांत को आभास हुआ जैसे सभी उन्हींके बारे में बातें कर रहे थे और उनके निकट पहुँचने पर सभी चुप हो गए हैं। जाने यह उनके मन का वहम था या वास्तविकता कि उन्हें लगा कि सबकी सहानुभूति पिता जी के साथ है और चंद्रकांत को जैसे वे लोग पिता जी के प्रति अकृतज्ञ मानने लगे थे।

गाँव वालों को वैसे इस बात पर आश्चर्य तो हो ही रहा होगा कि चार वर्षों के उपरांत वे सहसा इधर कैसे आ निकले? कई तो शायद टोह ले भी चुके होंगे कि वे गाँव की जायदाद ठिकाने लगाने आए हैं।

चौगान से आगे उन्होंने रेलवे-पटरी को पार किया और हरबंस चौधरी के घर जा पहुँचे। चौधरी घर पर नहीं थे। पता चला कि सुबह-सुबह ही उन्हें सांबा कस्बे की ओर जाना पड़ गया था और बस अब लौटने ही वाले हैं। घर के लोगों ने चंद्रकांत को बैठक में बैठने के लिए कहा, लेकिन चंद्रकांत उन्हें शाम को शहर लौटने से पहले मिल लेने की बात कह कर बाहर निकल आए।

बहुत समय बाद जब वे घर लौटे तो पिता जी घर में नहीं थे। शायद खेतों की ओर गए थे। चंद्रकांत चारपाई पर लेटे तो आँख लग गई।

आँख खुली तो उन्होंने ड्योढ़ी के पार गली में पिता जी को किसी से बातें करते सुना। वो कह रहे थे- 'भई, मेरी सारी उम्मीद अब तुम दोनों पर ही टिकी है। चंद्रकांत को तुम लोग ज़ोर दे कर समझाओ कि बस थोड़े ही दिनों की बात है... मैंने अब कौन-सा मुद्दतों जीना है। मेरे चले जाने के बाद भले ही वो सब कुछ बेच डाले, किसने रोकना है तब उसे। शाम को हरबंस चौधरी से मिलने के बाद चंद्रकांत ने अंतिम बस द्वारा शहर लौटना है, तुम दोनों उसे बस-अड्डे पर मिलकर समझाने का यत्न करना....'

पिता जी के स्वर में मिन्नत का भाव था। वह शख्स जिसने उम्र भर दिया ही दिया था, आज जैसे झोली फैलाकर अपनी ही कोई चीज़ दूसरों से मांग रहा था। चाहते हुए भी चंद्रकांत ड्योढ़ी पार करके सबके सामने नहीं जा सके और आँगन से सीधे अपने कमरे में चले गए। जाने से पहले उन्होंने चारदीवारी की दूसरी ओर झाँका- पिता जी ताया हरिराम और चाचा जोधमल से बातें कर रहे थे। जाने क्यों चंद्रकांत को महसूस होने लगा कि अब तक वे राख की एक ऊँची टेकरी पर बैठे हुए थे, लेकिन नीचे दबती जा रही राख के साथ-साथ जैसे वे भी अब नीचे की ओर धंसते जा रहे हैं।

चंद्रकांत गहरी दुविधा में थे। फैसला लेना चाहते थे कि क्या करें और क्या न करें। कमरे में चारपाई पर लेटे तो उठने की इच्छा नहीं हुई। गाँव से अंतिम बस छूटने में अब मात्र एक घंटे का समय शेष था। उन्हें सूझ नहीं रहा था कि वे पिता जी की बसी-बसाई दुनिया उजाड़ दें या रानी की दुनिया बसने से पहले ही मिटा दें.... समुद्र की लहरों की तरह यही दो बातें उनके दिमाग में लगातार आ-जा रही थीं।

कमरे की खिड़की खुली हुई थी। अंबर फिर थोड़ा-थोड़ा धुँधलाने लगा था। आहट होने से पता चला कि पिता जी गली से आकर भीतर अपने कमरे में आए हैं।

काफी सोच-विचार के बाद चंद्रकांत का मन बनने लगा कि वे पिता जी का दुख और चिंता उन्हें यह खुशखबरी दे कर समाप्त कर दें कि फिलहाल उन्होंने गाँव की जायदाद बेचने का इरादा त्याग दिया है। लेकिन, शीघ्र ही उन्हें यह सोच सताने लगी कि यह खुशखबरी सुनकर पिता जी की चिंता भले ही समाप्त हो जाए, लेकिन ठीक वैसी ही चिंता का बोझ उनके ऊपर, पत्नी और काफी हद तक बच्चों पर भी आ पड़ेगा। आखिर उन्होंने निर्णय ले ही लिया कि वे हरबंस चौधरी को मिले बिना ही शहर लौट जाएँगे.... वे नहीं चाहते थे कि कल संसार त्यागने वाले पिता जी कहीं आज ही न चल दें!

दूसरे कमरे में चंद्रकात ने प्रवेश किया तो पिता जी को गुम-सुम कुर्सी पर बैठे देखा। उन्होंने पिता जी को अपने निर्णय की जानकारी दी तो प्रतिक्रिया में वे कुछ भी नहीं बोले। वैसे, भावुकता में जब उन्होंने चंद्रकांत की पीठ पर प्यार से हाथ फिराया तो चंद्रकांत की आँखें भीग गईं। मन किया पिता जी के कंधे पर अपना सिर रख कर जी भर रो लें.... पिता जी के स्पर्श में कैसी कोज़ि-कोज़ि गरमाहट थी!

फिर जब चंद्रकांत शहर रवाना होने के लिए घर से निकले तो गली खाली थी। आगे बढ़े तो देखा ताया

हरिराम अपने घर से निकले और बस-अड्डे की ओर बढ़ने लगे।

चंद्रकांत जानते थे कि ताया जी उन्हें 'समझाने' के फेर में ही उस ओर जा रहे थे। जल्दी पहुँचने के चक्कर में ताया जी ने असल रास्ता छोड़ दिया और खेतों के बीच में चलने लगे, ताकि शीघ्र बस-अड्डे पहुँच सकें।

बस के लगातार बजने वाले हॉर्न की आवाज़ सुनी तो चंद्रकांत को ख़्याल आया कि उन्हें भी थोड़ा तेज़ क़दमों से चलते हुए इस आखिरी गाड़ी में अवश्य सवार हो जाना चाहिए, तभी तो वे सुबह समय पर अपने कार्यालय में उपस्थित हो सकेंगे।

– 152/119, पक्की ढक्की, जम्मू-180001

❑❑❑

अंधेरा

एम. जी. बाबू

अनुवाद : एम. एस. विश्वंभरन

'पिता जी अभी आएँगे। आप बैठिए। अब तो उनके आने में ज्यादा देर नहीं लगेगी।'

शाम के पहले घर के मालिक को ढूँढ़ते घर आए अपरिचित से घर की मालकिन ने कहा। दर्द भरी आवाज़ में वह बीच-बीच में बड़बड़ाती रही। वह कमरे के अंदर खड़ी थी, तो भी उसकी आँखे रास्ते पर अटकी थीं। आगंतुक बेचैनी से बरामदे में बैठा था। बीच-बीच में वह हाथ की घड़ी की तरफ देख रहा था। कमरे में बस एक छोटी मोमबत्ती जल रही थी। किसी भी पल बत्ती को बुझाने का अंधेरा मौका ढूँढ़ रहा था। घर में बिजली बुझ गई थी। जरूरी मौके पर बिजली की बत्ती बुझने के कारण शरमा रही थी। मिट्टी के तेल की बत्ती उदास चेहरे के साथ फर्श पर पड़ी थी।

पिता जी मिट्टी का तेल खरीदने गए थे। उनके आने का वक्त गुज़र चुका था। पता नहीं क्यों इतनी देर लग रही है। इस तरह बैठने से काम नहीं चलेगा और देरी हुई तो कल के समाचार पत्र में फोटो नहीं आएगी। राजू थोमस सोचने लगा। अब अदालत के सामने की सड़क से कितने लोग जा चुके। बाइपास की सड़क पर कितने लोग मारे गए। पैदल चलने वाला, साइकिल वाला या मोटर गाड़ी चलाने वाला... सड़क से हटकर पड़ी मोटर गाड़ी पर एक बार उनकी नज़र पड़ी। खून का लाल रंग अब भी मन में बह रहा था।

यहाँ एक पुल बांधने की जरूरत के संबंध में गाँव वाले कई सालों से समाचार पत्रों में रपट भी दे चुके थे। पर जब कोई दुर्घटना होती है तब आँसू बहाने पत्रकार आ जाते हैं। यह बात प्रो. जॉन पन्नलाई जर्नलिज़म की क्लास में कहा करते हैं। दौड़-धूप करते हुए घर पहुँचा तो मालूम हुआ कि खबर किसी के कानों तक नहीं पहुँची है। शुरू में शंका के साथ सोचता रहा कि यह खबर और किसी के मुँह से जान लें तो वही भला।

घर की दीवार पर एक मैला कैलेंडर लटका था। उसमें एक फोटो ईसा मसीह की थी। ईसा मसीह घोड़ों पर सवार होकर एक बाघ तथा साँप को मारने की ताक में था। दूसरी फोटो एक छोटे बालक की थी, जेम्स के बचपन की फोटो। औरत ने देखा कि वह फोटो की तरफ आकृष्ट है।

'बेटा कहाँ गया है?'

'वह बाहर गया है।'

'किसी नौकरी की तलाश में होगा। अभी तक नौकरी नहीं मिली। सुबह इंटरव्यू के लिए गया था।' बहुत पढ़ा-लिखा है। बहुत सी परीक्षाएँ भी दी। आजकल उसे सबसे घृणा ही घृणा है। अगर किसी से सिफारिश करें तो नौकरी मिल सकती है। पिता ऊँचे पद पर कार्यरत हैं। उनका शासन के बड़े-बड़े अधिकारियों से निकट का संबंध है। लेकिन किसी से सिफारिश नहीं करेंगे। इस बात को लेकर पिता-बेटे के बीच झगड़ा ही झगड़ा है।

बेटे की नौकरी का मामला है। लोगों के बीच उनका बड़ा सम्मान भी है। वे कहें तो कोई नहीं टालेगा। 'फिर क्यों नहीं कहा?'

'किसने कहा कि नहीं कहा। आखिर स्कूल में किसी नौकरी के लिए कई लोगों से मिले थे। लेकिन उन्होंने बड़ी रकम मांगी। लेकिन देने को पैसा नहीं था। कहाँ से दूँ। ज़मीन बेचकर भी उतना पैसा नहीं दे सकता। लेकिन बेटे से यह बात नहीं कही। पिता ने भी

किसी से यह बात नहीं कही। इस बात पर हमेशा झगड़ा करता।'

घर की जमी़न लगभग वीरान थी। उनका पड़ोसियों से अच्छा रिश्ता नहीं था। राजू सोचता मणि लूकोस ने भी कैसे घर बनाया। सस्ते दाम में ज़मीन मिली होगी। आते समय नीचे के मकान मालिक से इसके बारे में बात की। अगर उनके पास कोई फोटो है तो उनसे लेना बेहतर होगा। पड़ोसी है न, किसी शादी के वक्त फोटो ली हो तो। लेकिन ये नए मकान मालिक हैं। पड़ोस से भी फोटो नहीं मिली तो फंस गया। इधर से ही लेना होगा फोटो। समय गुज़र रहा था तेज़ी से। राजू ने घड़ी की तरफ देखा।

'नहीं, आएँगे। पता नहीं आज इतनी देरी क्यों लगा रहे हैं?'

राजू ने बड़े अफसोस के साथ उस औरत को देखा। मोमबत्ती की रोशनी से उसकी आँखों में रौनक थी। मणि लूकोस अब कहाँ होंगे। पता नहीं? अब सोचना बेकार है।

देख रहा था कि कहीं पूरे परिवार की फोटो है कि नहीं। 'शादी के वक्त कोई फोटो नहीं ली?'

'हमारा प्रेम विवाह था। शादी के वक्त फोटो नहीं ले सके। सब लोग विरोध कर रहे थे। दीवार के कोने में एक फोटो थी। जेम्स बेटा जब गेंद से खेल रहा था तो गेंद फोटो पर जा लगा और शीशा टूट गया। पिता की मार खाने के डर से फोटो को कहीं छुपाकर रख दिया। जब नहीं मिला तो पिता ने फिर उसके बारे में नहीं पूछा?'

दीवार साफ करने का वक्त हुआ तो कहा कि कहीं और रखा है। फिर पिता यह बात भूल गए। उन्हें फोटो खिंचवाने में खास रुचि नहीं थी। अगर कोई फोटो खींचने के लिए बुलाए तो वे खिसक जाते। इसलिए ज्यादा फोटो नहीं होंगी।

यह कैसी आदत है। निराश होकर राजू ने पूछा। कोई एक भी फोटो नहीं होगी तो फोटो नहीं मिलेगी। राजू बहुत परेशान हुआ। समय बहुत गुज़र चुका था। दस मिनट और बीत जाए तो सब कुछ बिगड़ जाएगा। ब्यूरो वाले डाँटने लगेंगे। अगर कल के दूसरे समाचार पत्रों में फोटो देख ली तो बिगड़ जाएँगे। हँसी उड़ाते हुए डाँटने लगेंगे। तुम लोग क्या कर रहे हो, एक फोटो का इंतज़ाम भी नहीं कर सकते?

'आप उनकी फोटो लेने आए हैं? किंतु मुझे लगता है कि वे नहीं मानेंगे। दो साल पहले की बात है एक क्लब की ओर से सम्मानित करने कुछ लोग आए थे। कैमरा वाले को भी साथ लाए थे लेकिन वह नहीं माने। तब थोड़ी शराब पीकर बैठे थे और नाराज़ भी थे। 'जब आदर करना था तब किसी ने आदर नहीं किया। वे गालियाँ भी देने लगे। मरने के वक्त अगर कोई आदर करने आए तो उनके मुँह पर थूकना चाहिए। वह किसी को मानने वाला नहीं था। अब ऊँचे ओहदे पर पहुँचना था। जल्दबाजी का यही नतीजा है। यही आदत बेटे को भी मिली है।

मोबाइल फोन के इस ज़माने में किसी की फोटो का प्रबंध करना उतना मुश्किल नहीं। लेकिन इस घर में मोबाइल फोन.... ऐसा भी कोई घर केरल में है?

'देखो, वे आ रहे हैं। मैंने कहा था न ज्यादा देर नहीं लगाएँगे। औरत ने बरामदे में आकर बाहर की तरफ देखा। खुशी से ऊँची आवाज़ में पुकारा। राजू थोमस ज़रा घबरा गया। यह कौन मणि लूकोस आ रहा है? मन में गढ़ी कहानी बेकार हो जाएगी? बेकार हो जाने पर भी कुछ नहीं, इस घर में रोशनी आ जाएगी। उसने खुद को कोसा। तो अदालत के पास कौन होगा। उसने बाहर की तरफ देखा। अंधेरा है। कुछ भी दिखाई नहीं देता। पर इस औरत ने कैसे देखा। प्यारे लोग अंधेरे में भी देख सकते हैं।

दूर की छाया हिलने लगी। अरे तुम थे? मैंने सोचा कि पिता आ रहे हैं। पिता को तुमने कहीं देखा? जेम्स बेटा, मिट्टी का तेल खरीदने गए थे पिता।

पिता! वे मिट्टी का तेल पीकर रास्ते में वहीं लेटे होंगे। लगा कि पिता के बारे में बेटा अच्छा नहीं सोच रहा था। घर आए मेहमान की भी परवाह किए बिना वह चीखने लगा।

माँ ज़रा चुप रहो। घर आते ही चीखना-चिल्लाना शुरू। वह किसी की ओर ध्यान दिए बिना बगल के दरवाज़े से भीतर के रसोई घर की तरफ गायब हुआ।

ये पिता को ढूँढ़ते आए हैं। माँ सामने के कमरे में आई। माँ से झगड़ा करने की बात राजू को बुरी लगी। रात को आने को सूझा है माँ ने कहा कि ये समाचार पत्र से आए हैं। राजू ज़रा शांत हुआ। पिता के मित्रों के भी विरोधी होंगे निकल जाने की बात सोचा था कि बेटा बरामदे में आया।

'भैया, उनसे मिलने के लिए इधर इंतजार करने से कोई फायदा नहीं। किसी शराबी के घर जाकर ढूँढ लो। गाते-बजाते कहीं पड़ा होगा। मनमाने वक्त चला आएगा। आज फिर न मिलना ही भला होगा। कल आना।

पिता को डाँटने से कोई फायदा नहीं। मोमबत्ती जलकर बुझने लगी तो मिट्टी का तेल खरीदने गए हैं।

क्या कहूँ। इतना ज़िम्मेदार है पिता। बिजली का बिल चुकाने की वजह से फ्यूज़ निकाल लिया और क्या। ऐसा ही होगा। पैसा मिले तो फिर शराब पीने चला जाएगा। मोमबत्ती अभी बुझने वाली है। थोड़ी ही बाकी है।

'इसकी बातचीत का यही तरीका है।' औरत आवाज़ धीमी करके बोली। 'इसका यह मतलब नहीं कि यह पिता से नफरत करता है। एक रात को अगर पिता से नहीं मिला तो बेटे को नींद नहीं आएगी। पिता का भी यही तरीका है?'

'बेटा, तेरे जाने का आखिर क्या नतीजा हुआ। नौकरी की बात। मिलेगी?

'नौकरी कौन देगा'? बेटा बड़बड़ाने लगा। उसके शब्दों में नफरत थी। पैंट और शर्ट उतार के लुंगी और बनियान पहने वह बाहर निकल आया।

'बेटा, तूने इतनी देरी क्यों लगाई?'

'रास्ते में बड़ी भीड़ थी। रुकावट ही रुकावट। अदालत के सामने गाड़ी से टकराकर कोई बेचारा मर गया। अच्छा आपको क्या चाहिए?

एक पत्रकार को ज़िंदगी में दो तरह की कठिन परेशानियाँ होती हैं। क्रूर सत्य सब लोग समझें और सिर्फ एक व्यक्ति समझे बिना रहे। इनमें दूसरे प्रकार के लोग बड़ी संख्या में हैं। दूसरे लोग सच जाने बिना रहें और सिर्फ एक व्यक्ति जाने तो वह बड़ी कठिन हालात होगी। इससे कैसे सामना करेंगे। राजू ने सोचा कि क्या जेम्स बेटे से सीधे इसके बारे में बातें करनी है? नहीं, थोड़ी देर के बाद दूसरों के मुँह से वह बात सुनेगा। वही ठीक रहेगा।'

'ये पिता की फोटो मांगने आए हैं।'

पिता की फोटो इधर कहीं नहीं मिलेगी। सिर्फ मेरे पास मोबाइल फोन नहीं है इस संसार में। कल कैमरा लेकर आना पिता मानेंगे तो फोटो ले लेना।

'कल के लिए इंतजार नहीं कर सकता। पुरानी फोटो ही काफी होगी। प्लीज़ ज़रा देख लो।'

जेम्स कुछ देर तक सोचकर अंदर चला गया। राजू को बड़ा आश्चर्य हुआ। ये पूछते नहीं कि आखिर फोटो की क्या जरूरत है। नामी लोगों को फोटो की कई जरूरतें होंगी।

कुछ देर बाद जेम्स एक पुरानी फोटो लेकर चला आया। उसके चेहरे पर एक बाधा से बचने का भाव था।

लो यह काफी होगा? अगर कुछ उल्टा कहें तो और कोई फोटो भी नहीं। फोटो का शीशा टूट गया है। अब वापस देने की जरूरत नहीं। पति देख लें तो बड़ी समस्या होगी। शीशा तोड़ने के विषय को लेकर यहाँ झगड़ा शुरू होगा। वे बड़े झगड़ालू आदमी हैं। तस्वीर को देखने राजू थोमस झुककर फोटो देख रहा था। इसी बीच मोमबत्ती अचानक बुझ गई। अंधेरे में जेम्स की आवाज सुनाई पड़ी।

'फोटो यही है

अब देर नहीं लगानी चाहिए। यहाँ अंधेरा है। जल्दी जाओ।'

जाने के समय राजू सोचता रहा। बेटे को बुलाकर कुछ कह देना ज़रूरी होगा। अब उसे आत्मसात् करने की ताकत उनमें नहीं होगी। कुछ कहे बिना पीछे की ओर मुड़ा तो उस औरत ने कहा- 'उन्हें रास्ते में कहीं देखो तो जल्दी घर आने को कहें और कह दें कि घर में रोशनी चली गई है।'

राजू थोड़ी देर थका-हारा खड़ा रहा। बाहर निकला तो रास्ते में रोशनी थी। स्कूटर से वह खबरों के संसार की तरफ अंधेरा पार कर उड़ गया।

गाड़ियों के आलोक के बीच दूर एक मरीचिका की तरह एक परछाई हिल रही थी। वह पास चला आ रहा है या दूर की तरफ जा रहा है? अदालत के कोने में पहुँचा तो राजू ने नाक खोली। हवा में मिट्टी के तेल की बू की तरह.....

– प्रोफेसर, हिंदी विभाग (से. नि.), कालिकट विश्वविद्यालय, कालिकट, केरल-673635

❑❑❑

की है भारत

त्रिलोक सिंह आनंद

की पुच्छदे हो की है भारत?
मैं की दस्सां?
मैं तो केवल एह गल्ल जानां
भारत तां इक घर दा नां है
वक्खो वक्खरे कमरे जिसदे
वक्खो वक्खरे सूबे इसदे
लेकिन हर कमरे दा बुहा
दूजे कमरे दे विच खुलदा
आपस विच इंज जुड़े होए ने
इक उते जे वणदी भीड़
दूजे नुं वी हुन्दी पीड़
इक नुं रत्ता जे दुख है
दूजे दी मर जांदी भुक्ख है

भारत तां इक रूक्ख दा नां है
जिसकी संघणी ठंडी छां है
इस दीआं किन्नीआं ने शाखावां
लिपटीआं होइयां कई लतावां
इक्कों रूक्ख दे भिन्न-भिन्न फुल्ल ने
फुल्ल तां इसदे वासी कुल ने
मिलके फुल्ल बनण गुलदस्ता
महकां दा इक बनिआ बस्ता
गुलदस्ते दी गंध निराली
खुशीआं खेडे वंडण वाली
भारत दी देखो खुशहाली
ईद कदे ते कदे दीवाली
कदे बणे त्योहार विसाखी
कदे भरावां दें लई राखी

भारत कत्ले रूख दा नां है
एह तां इक मनुक्ख दा नां है
भारत भरत ते राम है भारत
ब्रह्मा, विष्णु, श्याम है भारत
गीता दा संदेश है भारत
बुद्ध दा वी उपदेश है भारत
दसां गुरुआं दी जोत है भारत
ब्राह्मांड लई जीवन स्रोत है भारत
खुसरो अते फरीद है भारत
बाल्मीक ते कबीर है भारत
राय हकीकत वीर है भारत
भारत तो है राणी झांसी
भगत सिंह भारत दा नां है
भारत गांधी नां दी छां है
भारत नाम सराभे दा है
जां इक गदरी बाने दा है।

पुच्छदे हुण बी की है भारत
भारत नां मुहब्बत दा है
उल्फत, प्यार मुरब्बत दा है
सच पूछों तां तू है भारत
ओह है भारत, हाँ मैं भारत

- 4055, अर्चना भवन, अर्बन एस्टेट, फेस-2, पटियाला, पंजाब-147002

❑❑❑

भाषा ISSN 0523-1418

क्या है भारत?

अनुवाद : योगेश्वर कौर

पूछ रहे हो क्या है भारत?
कहो कहूँ क्या?
मैं तो बस इतना ही जानूँ
भारत तो इक घर का नाम
अलग-अलग कमरे हैं इसके
भिन्न-भिन्न सूबे हैं जिसके
लेकिन हर कमरे का द्वार
दूसरे कक्ष में जा खुलता
आपस में यों जुड़े हुए हैं
यदि एक पर भीड़ पड़े तो
दूजे को भी होती पीड़ा
एक को यदि दुख होता
तो दूजे की मर जाती भूख

भारत तो एक पेड़ का नाम है
जिसकी सघन शीतल छाया है
इसकी कितनी ही शाखाएँ
लिपटी हुई हैं कई लताएँ
एक पेड़ के फूल अलग हैं
फूल नागरिक सदा सजग हैं
मिलें फूल बनता गुलदस्ता
महकों का यह बंधा है बस्ता
पुष्पगुच्छ की गंध निराली
खुश-खुशहाली बांटने वाली
भारत की देखो खुशहाली
ईद मनाएँ, कभी दिवाली
कभी मनाएँ हम बैसाखी
कभी बनें हम अपनी राखी।

भारत कैसे पेड़ का नाम है
यह तो एक मनुष्य का नाम है
भारत भरत और राम है भारत
ब्रह्मा, विष्णु, श्याम है भारत
बुद्ध का भी उपदेश है भारत
दस गुरुओं की ज्योती है भारत
विश्व का जीवन स्रोत है भारत
खुसरो और फरीद है भारत
वाल्मीकि और कबीर है भारत
राय हकीकत वीर है भारत
भारत तो है राणी झांसी
भगत सिंह भारत का नाम
भारत गांधी जी की छांह
भारत नाम सराम का है
या किसी गदकी बाबे का है।

पूछ रहे अब क्या है भारत
भारत नाम मुहब्बत का है
उल्फत, प्यार, मुहब्बत का है
सच पूछो तो तुम हो भारत
वह है भारत, मैं हूँ भारत।

- 239, दशमेश एंक्लेव, ढकौली, जीरकपुर जिला मोहाली, पंजाब-160104

❑❑❑

दर्द मांजता है

डॉ. विदुषी शर्मा

श्री रणविजय द्वारा लिखित तथा साहित्य संचय द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'दर्द मांजता है' एक कहानी संकलन है जिसमें 10 कहानियों का संकलन किया गया है। कहानी विधा अपने आप में एक बहुत ही रुचिकर, सरल, सरस और पूर्ण विधा मानी गई है। जिसमें कुछ शब्दों के द्वारा एक जीवन को, एक युग को जिया जा सकता है। यह लेखक की कार्यशैली और उसकी लेखन क्षमता पर निर्भर करता है कि वह इसे किस तरह प्रस्तुत करता है। श्री रणविजय द्वारा लिखित पुस्तक 'दर्द मांजता है' अपने आप में एक अनूठी पुस्तक है। इसमें क्रमशः 10 कहानियों का संकलन है–

1. वंचित 2. मेरे भगवान 3. काग़जी इंसाफ 4. दर्द मांजता है 5. परिस्थितियाँ 6 ट्रेन, बस और लड़की 7. छद्म 8. राजकाज 9. एक तेरा ही साथ 10. प्रतिशोध।

कुल मिलाकर विभिन्न रंगों और विभिन्न विषयों को आधार बनाकर लेखक ने इन सभी कहानियों की रचना की है। विषय वैभिन्य कहानियों में बहुत ही आवश्यक है क्योंकि यदि हम अलग-अलग पृष्ठभूमि से संबंधित विषय वस्तु प्रस्तुत नहीं करेंगे तो पाठक की रुचि उत्पन्न नहीं होगी। प्रस्तुत पुस्तक की सभी कहानियों का क्रमशः पृथक-पृथक वर्णन किया गया है। उनकी समीक्षा में सभी तत्वों का समावेश किया जाता है क्योंकि "समीक्षा समालोचना पर आधारित होती है।"

इसलिए प्रत्येक कहानी के हर पहलू को छूने की, उसे समाहित करने की भरपूर कोशिश की गई है। जहाँ तक मेरा व्यक्तिगत विचार है तो इस कहानी संकलन का शीर्षक 'एक तेरा ही साथ' होता तो ज़्यादा अच्छा रहता क्योंकि यह कहानी इस कहानी संकलन की जान है। बहुत ही सुंदर और प्रेम त्याग की कहानी है क्योंकि शीर्षक आकर्षण से भरा होना चाहिए। बाकी रणविजय जी अपने लेखन कार्य में पूर्णतया सफल हुए हैं। सभी कहानियाँ अपने आप में बहुत ही अनूठी और प्रासंगिक है। केवल राजकाज तथा प्रतिशोध कहानी का कथानक बहुत अधिक लंबा कर दिया गया है जिसे संक्षिप्त किया जा सकता था और उसमें रोचकता की भी कमी नज़र आई। बहुत सी कहानियों में अंग्रेजी के बहुत से शब्दों का भी प्रयोग किया गया है जहाँ मुझे लगता है कि उनके हिंदी रूपांतरण का प्रयोग किया जा सकता था। परंतु समग्रता से देखा जाए तो यह पुस्तक बहुत ही सुंदर और उम्दा तथा पठनीय है। समाज के विभिन्न दृष्टिकोण इस पुस्तक में प्रदान किए गए हैं तथा बहुत से अदृश्य संदेश प्रदान किए गए हैं। मैं श्री रणविजय को बहुत अधिक शुभकामनाएँ देती हूँ तथा ईश्वर से उनके उज्ज्वल भविष्य की कामना करती हूँ। इसी प्रकार अपने लेखन में सक्रिय रहें तथा नित नई पृष्ठभूमि और नए विचारों का सृजन करते रहें। इन्हीं शुभकमानाओं के साथ कहानियों की क्रमशः समीक्षा प्रस्तुत है....

दर्द मांजता है/ कहानी संग्रह/ लेखक : रणविजय/ प्रकाशक : साहित्य संचय/ बी-1050, गली नंबर-14, पहला पुस्ता, सोनिया विहार, दिल्ली-110090/ प्रकाशन वर्ष : 2018/ कुल पृष्ठ : 120/ मूल्य ₹.150/-

पहली कहानी 'वंचित' है जिसमें कामकाजी महिलाओं और पुरुषों के जीवन को बहुत ही वास्तविकता के साथ उकेरा गया है। कामकाजी जीवन व्यतीत करते हुए हम कहीं ना कहीं अपने घर-परिवार से दूर हो जाते हैं और अपने ऑफिस के किसी भी साथी की तरफ आकर्षित होते हैं। विपरीत लिंग के प्रति अत्यधिक आकर्षण हो जाता है और कभी-कभी सभी सीमाओं को कब पार कर देते हैं पता ही नहीं चलता। इसमें कहीं न कहीं अपनी नौकरी को परमानेंट करने या उसमें तरक्की पाने की लालसा भी छुपी होती है जो इस कहानी में मानसी ने किया। वह भी इसी तरह का कार्य था। वह इस अवसर को खोना नहीं चाहती थी और दूसरी ओर नायक विनीत को भी नहीं जो अपने घर परिवार से दूर है। लेकिन वह अंतर्मुखी होने के कारण बहुत कम बातें करता है। इसलिए उसकी पत्नी साधना जो कि बहुत ही चंचल, जिंदगी से लबालब भरी हुई और आत्मविश्वास से भरपूर है। परंतु पति के इस रवैए को देखकर वो भी अपने आप को प्रस्तुत वातावरण में अपनी किस्मत मानकर ढल जाती है और केवल एक मशीन की तरह अपनी सभी जिम्मेदारियों को पूरा करते हुए अपना जीवन व्यतीत करती है।

दांपत्य जीवन का आधार प्रेम, स्पर्श, आलिंगन और सानिध्य है। यदि इन सब में से किसी का भी अभाव हो जाता है तो दांपत्य जीवन पूर्णतया सुखी नहीं रह पाता। हम केवल अपना फर्ज निभाने वाली एक कठपुतली की तरह ही अपना जीवन व्यतीत करने लग जाते हैं। अपने लिए कोई भी भावना, कोई भी इच्छा, कोई भी उत्साह शेष नहीं रह जाता चाहे वह त्यौहार हो या कुछ और वास्तव में इस सुख से दोनों ही 'वंचित' हैं चाहे वह नायक हो या नायिका। इस कहानी का शीर्षक 'वंचित' कहानी के विषय में पूर्णतया न्याय करता है

दूसरी कहानी 'मेरे भगवान' नामक शीर्षक से है। इसमें गाँव के परिवेश को दिखाया गया है शब्दों और भावों से ऐसा रेखाचित्र खींचा गया है कि हमारे सामने गाँव का पूरा वातावण ही दिखाई दे जाता है, कि किस प्रकार कितने अभावों में किसान तथा मजदूर लोग अपना जीवन यापन करते हैं। यह इस कहानी का मर्म है। कितनी मेहनत करने के बाद भी उन लोगों को भरपेट खाना नहीं मिल पाता। उनके पशुओं को वह सब नहीं मिल पाता जिनके लिए उन्हें पाला जाता है और कई बार तो पशु मर भी जाते हैं। इस कहानी में सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि इसमें चारित्रिक, नैतिक और मानवीय गुणों को उजागर किया गया है कि विपरीत परिस्थिति में रहते हुए भी मनुष्य को अपने गुणों के साथ, अपने स्वभाव के साथ, समझौता नहीं करना चाहिए। एक तरह से यह अदृश्य संदेश भी है अदृश्य रूप से यह कहानी एक बहुत अच्छे प्रबंधन तथा एक हितैषी की कहानी है कि जो मनुष्य हमें सही समय पर सही मार्गदर्शन प्रदान करता है और सहयोग करता है। यदि उसके बताए हुए रास्ते पर हम चलते हैं तो निश्चय ही हमें जीवन में सफलता मिलती है और हम उस व्यक्ति को भगवान का दर्जा देते हैं यही इस कहानी का मर्म है।

तीसरी कहानी 'कागजी इंसाफ' जिसमें रामनरेश नामक कर्मचारी की दर्द भरी दास्तान सुनाई गई है। यह रेलवे का कर्मचारी था उसकी परिस्थितियाँ कुछ इस प्रकार की हो जाती हैं कि वह बहाली के बाद अपनी नौकरी को ज्वाइन ही नहीं कर पाता और इसी तरह चक्कर लगाते-लगाते उसकी मृत्यु हो जाती है। जिसके लिए उसका परिवार बहुत ज्यादा मुसीबतों से घिर जाता है क्योंकि उसने नौकरी ज्वाइन नहीं की थी। इसलिए ना तो उसके परिवार को पेंशन मिलेगी और ना ही किसी आश्रित को नौकरी। इस कहानी के माध्यम से लेखक ने सरकारी अफसरों की कार्यपद्धति और कर्मचारियों की नीति तथा उनकी एक सोच को उजागर किया है कि वे बिना प्रमाण-पत्र के कोई भी कार्य नहीं करते। वे सरकारी कामकाज की जो एक कार्य पद्धति है केवल उसी को ही निभाते चले आ रहे हैं। कानूनी प्रक्रिया और उसकी शिथिलता को इस कहानी में बहुत बारीकी से उजागर किया गया है कि इंसाफ मिलने की उम्मीद तो है परंतु उसे मिलने में बहुत अधिक समय लग जाता है। रामनरेश के परिवार वालों को ना तो ईश्वर द्वारा ही न्याय प्राप्त होता है और ना ही संविधान के द्वारा। उन्हें 'कागजी इंसाफ' भी प्राप्त नहीं होता, यही इस कहानी का मर्म है।

चौथी कहानी 'दर्द मांजता है' जो इस पुस्तक का शीर्षक भी है। यह एक ऐसी प्रेम कहानी है जो कि दर्द

पर आधारित है। दर्द के रिश्तों की कहानी है। यह कहानी 1993 में आए लातूर के भूकंप पर आधारित कहानी है। इस कहानी में भूकंप के दृश्य का बहुत ही सुंदर शब्द चित्र द्वारा वर्णित किया गया है। ऐसे लगता है मानो भूकंप द्वारा की गई विध्वंस लीला हमारे सामने ही प्रकट हो गई हो और किसी भी प्राकृतिक आपदा से जिस प्रकार विनाश होता है, जिस प्रकार घर – बाहर और हमारे अपने हमसे छूट जाते हैं उस दर्द को लेखक ने बहुत ही सुंदर ढंग से हमारे सामने प्रस्तुत किया है। किस प्रकार हम अपनों को खो देते हैं उस दर्द को व्यक्त किया गया है। जब तक हम इन सब को अपनी नजरों से नहीं देख लेते तब तक यह हमारे लिए सिर्फ एक खबर होती है। यदि हम प्राकृतिक आपदा से लड़ने का मन बना लेते हैं, मदद करने का मन बना लेते हैं तो फिर हमें कोई नहीं रोक सकता। युवा शक्ति को इस अदृश्य संदेश के द्वारा लेखक ने संगठित होकर कार्य करने की प्रेरणा प्रदान की है।

पाँचवी कहानी 'परिस्थितियाँ' है। इसमें हरी बाबू जो सिंचाई विभाग में कार्यरत है। वे बहुत ही सीधे सरल इंसान हैं। उनके माध्यम से जीवन के कटु सत्य से सामना करवाया गया है। दैनिक जीवन में भाग-दौड़ और कार्यालय का कार्य करते-करते जीवन में नीरसता आ जाती है। फिर भी घर गृहस्थी का बोझ तो उठाना ही पड़ता है। चाहे यह पुरुष हो या स्त्री सबको अपने हिस्से का कार्य तो करना पड़ता है। इसका जीता जागता प्रमाण हैं हरी बाबू। एक तरफ ऑफिस में अपने अधिकारियों की बातों को झेलना पड़ता है। दूसरी तरफ घर में पत्नी की बातें भी सुननी पड़ती है। दोनों ही अपनी जगह सही हैं। लेकिन यह मनुष्य का स्वभाव है कि उसे बदला नहीं जा सकता। हरी बाबू सीधे सरल व्यक्ति हैं। इसलिए लोग उनका फायदा भी उठाते हैं इधर पत्नी अपने लिए कुछ अधिक की मांग करती है जो उसका हक भी कहा जा सकता है तो ऑफिस में उन्हें अतिरिक्त काम के बोझ़ के तले दबा दिया जाता है क्योंकि उन्हें प्रतिवाद करना नहीं आता। इसी कशमकश में जिंदगी चल रही है।

इस कहानी के माध्यम से लेखक यही समझाना चाहता है कि चाहे कुछ भी हो जाए अपने शरीर और भूख से बढ़कर कुछ भी नज़र नहीं आता। सब रिश्ते, जिम्मेदारियाँ एक तरफ है और भूख एक तरफ है। भूख बहुत बड़ी चीज है। यह कुछ नहीं समझती, कुछ नहीं जानती।

"मृत्यु जीवन का शाश्वत और अंतिम सत्य है तो भूख, जीवन और जीवंतता की पहचान है।"

इस कहानी में जीवन की सच्चाई दिखाई गई है कि हम समाज में रहते हैं लेकिन सामाजिक बंधुओं के साथ हमें दैनिक दिनचर्या और अनेक कार्य भी करने ही पड़ते हैं, चाहे वह थोड़े से विलंब के साथ ही क्यों ना हों। एक सामाजिक बंधन है जो निभाना पड़ता है। यह सत्य है कि जिसका जितना रिश्ता होता है उसे उतना ही दुख होता है। बाकी लोक सिर्फ सांत्वना के लिए ही आते हैं। परंतु रिश्ते के हिसाब से जो कष्ट दूसरे व्यक्ति को झेलना पड़ता है वह बहुत कठिन है। कुल मिलाकर यह बहुत ही प्रायोगिक और प्रासंगिक कहानी है।

इस पुस्तक की छठी कहानी है 'ट्रेन, बस और लड़की'। जैसा कि शीर्षक से ही स्पष्ट है कि इसमें अविवाहित युवकों की कहानी है जो इस आकर्षण को यानी लड़की से प्रेम को ट्रेन और बस की तरह मानते हैं कि जिस तरह ट्रेन और बस एक जाती है तो दूसरी आ जाती है, वैसे ही युवावस्था में जो भी लड़की सामने आती है उसी से ही प्रेम होने लग जाता है। फिर उसके जाने के बाद या उसकी शादी होने के बाद या कोई परिस्थिति ऐसी हो जाती है जब वह हमारे साथ नहीं होती तो कुछ समय उदासी होती है। ऐसे लगता है कि जीवन थम गया है, खत्म हो गया है, कोई उमंग ही नहीं बची है परंतु समय हर चीज की दवा है और कुछ समय बाद जिंदगी फिर पटरी पर आ जाती है और किसी नई लड़की के मिलते ही फिर वही सब कुछ शुरू हो जाता है। ऐसी ही कुछ कहानी है ये।

इससे अगली कहानी सातवीं कहानी का शीर्षक 'छद्म' है। छद्म यानी धोखा, फरेब।

एक इंटरव्यू के माध्यम से इस कहानी का आरंभ होता है जिसमें इंटरव्यू लेने वाले टीम के एक सदस्य विजय राजन को इंटरव्यू देने वाले एक प्रार्थी रंजीत दत्त के प्रमाण-पत्रों में तथा उसमें व्याप्त अंतराल को देखकर

कुछ शक होता है तथा उसे इस बात की भी हैरानी होती है कि यह बंगाल के कोलकाता से संबंधित है। इसके माता-पिता बंगाली है तथा इसकी प्राथमिक शिक्षा वहीं पर हुई है तो भी इसके लहज़े में कहीं भी बंगाली का पुट नहीं आ रहा है यह हमारी भारतीय संस्कृति है कि जहाँ भी, जिस भी प्रांत या क्षेत्र का हम प्रतिनिधित्व करते हैं वहाँ की मिट्टी की खुशबू हमारे व्यक्तित्व में अवश्य ही झलकती है। इन्हीं विशेषताओं के चलते उन्हें शक होता है कि कहीं कुछ न कुछ गड़बड़ है। लेकिन इंटरव्यू उसने बहुत अच्छा दिया है। अंतिम निर्णय लेने के समय पर शेष दो अन्य सदस्य जब उनसे पूछते हैं कि आप इन्हें सेलेक्ट क्यों नहीं कर रहे हैं क्योंकि हमारा काम है जो भी पेपर, जो सर्टिफिकेट वेरीफाइड किए जा चुके हैं हमें उन पर काम नहीं करना है। हमें केवल इंटरव्यू लेना है लेकिन उन दोनों की बातों को भी रखते हुए वे इस कैंडिडेट को सेलेक्ट करते हुए भी यह लिख देते हैं कि इनके प्रमाण-पत्रों की दोबारा से जाँच की जाए। हैरानी की बात तब सामने आती है कि जब उनके प्रमाण-पत्रों की जाँच की जाती है तब बहुत बड़ी साजिश का पर्दाफाश होता है कि किस तरह उन्होंने अपने फर्जी सर्टिफिकेट बनवाए तथा अपनी अय्याशी का जीवन जिया और एक विदेशी लड़की के बलात्कार के केस में भी वह फंस चुके थे। जाकर अपना नया झूठा प्रमाण-पत्र, आधार कार्ड बनवाया और किस तरह उन्होंने अलग-अलग तरह की परीक्षाएँ पास की। यह बहुत बड़ी साजिश निकली। रंजीत दत्त का असली नाम अभिषेक जोशी निकलता है। इस प्रकार एक अनुभवी अधिकारी के अनुभव के द्वारा एक मुजरिम का कच्चा चिट्ठा सभी के सामने आता है। इस तरह की कहानियाँ समाज में जागरूकता पैदा करती हैं तथा आँख बंद करके किसी के भी चरित्र पर विश्वास करने के लिए हमें सावधान करती हैं। एक अनुभवी अफसर की जागरूकता और सतर्कता के द्वारा एक मुजरिम को सजा हो जाती है और समाज इस तरह की घटनाओं से सीख लेता है यही इस कहानी का मर्म है।

पुस्तक में आठवीं कहानी 'राजकमल' नामक शीर्षक से है जिसमें रेलवे के कर्मचारी तथा उसकी प्रमुख घटनाओं और रेलवे में आवागमन में हुई देरी के कारण हुई परेशानियाँ हैं। यह कहानी विषय को लेकर बहुत ही बड़ी कर दी गई है जिसमें आनंद, तारतम्यता और घटनाओं का अन्योन्याश्रित संबंध नदारद है। इस कहानी का विषय बहुत ही बड़ा रखा गया है जिसमें पाठक को शायद ही कोई आनंद महसूस हो क्योंकि इस तरह की घटनाएँ और इस तरह की बातचीत नीरसता प्रदान करती है। ना तो विषय कुछ अधिक रोचक है और ना ही इस तरह की बातचीत। रेलवे से संबंधित घटनाओं को बहुत अधिक विस्तृत रूप प्रदान किया गया है जिसकी आवश्यकता शायद नहीं थी। कथानक को सरस और सुबोध बनाने के लिए उसमें बहुत सी चीज़ों का समावेशन करना होता है जैसा कि लेखक ने अन्य कई कहानियों में किया है। कुल मिलाकर यह कहानी नौकरशाही तथा उसके संबंध तथा कार्य प्रणाली पर आधारित है जो आम पाठक वर्ग की रुचि से परे का कथानक है।

नौवीं कहानी का नाम है 'एक तेरा ही साथ' जिसमें ताड़क देव जोशी तथा नायिका सारिका शहाणे हैं। ताड़क एक बहुत ही प्रतिभाशाली मेहनती युवक है जो गाँव की पृष्ठभूमि से शहर में आता है तथा जी तोड़ मेहनत करता है ईमानदारी से शहर में रहता है। नया-नया जब शहर आता है तो उसे बहुत कुछ लुभावना लगता है और वह इसे बहुत मन से देखता है। धीरे-धीरे शहर में रहते हुए वह महाराष्ट्र बैंक में एडिटर की नौकरी प्राप्त कर लेता है तथा अपनी ईमानदारी और मेहनत से सभी का चहेता बन जाता है। फिर उसकी शादी सारिका नामक युवती से होती है। उनका दांपत्य जीवन बहुत ही सुखद और समर्पण से भरपूर है। ताड़क देव अपनी पत्नी को बहुत अधिक प्यार करता है तथा उसे किसी भी तरह का कोई भी कष्ट नहीं होने देता। इस तरह की सुख सुविधाओं का ध्यान रखता है। उसे हर प्रकार से संतुष्ट रखता है चाहे वह भावनात्मक हो या किसी अन्य प्रकार से। वह अपनी पत्नी को बहुत अधिक प्रेम करता है। इसी प्रकार सारिका भी अपने पति का बहुत ध्यान रखती है। एक दूसरे पर दोनों ही जान छिड़कते हैं। इसी तरह गृहस्थ जीवन चल रहा है। यह एक बहुत ही संवेदनशील कहानी है। जिसमें पति-पत्नी के अटूट बंधन, प्रेम को दर्शाया गया है कि हम अपने जीवन-साथी को उसकी कमियों के साथ स्वीकार करते हैं। हम उसे संपूर्ण नहीं मानते। जिस तरह हमारे में कमियाँ है तो

दूसरे में भी कमियाँ हो सकती हैं। यह सत्य है कि कुछ अपराध अक्षम्य होते हैं। परंतु एक स्त्री पर किसी भी तरह की पहरेदारी काम नहीं करती है। जब तक वह स्वयं ना चाहे उसके साथ कोई भी जबरदस्ती नहीं कर सकता। (बलात्कार की घटनाएँ अपवाद हैं) इस कहानी में इस मर्म को दर्शाया गया है कि विश्वास जबरदस्ती न तो किया जाता है, नहीं करवाया जाता है यह एक अदृश्य प्रेम पर आधारित एक रेशम की डोर के समान है जिसे थोड़ा-सा ही खींचने पर टूट जाती है। बहुत ही सुंदर कहानी और बहुत ही सुंदर वर्णन किया है लेखक ने। 'एक तेरा ही साथ' शीर्षक को पूरी तरह चरितार्थ करती हुई कहानी।

पुस्तक की 10वीं और आखिरी कहानी 'प्रतिशोध' है। प्रतिशोध यानी कि बदला। हमारे दिल में कहीं ना कहीं ऐसी आग, ऐसी चिंगारी जलती रहती है और उसे हम लगातार हवा देते रहते हैं कि हमें एक दिन अपना प्रतिशोध लेना ही है अमुक इंसान से। यही इस कहानी की पृष्ठभूमि है।

कुल मिलाकर इस कहानी के कथानक को अत्यधिक बढ़ाया गया है। एक तरफ तो लेखक बिल्कुल वर्तमान समय के वातावरण की कहानियों को प्रस्तुत करता है और दूसरी तरफ यह बहुत पुराना कथानक। वर्तमान समय में इस तरह का कथानक कहीं देखने को नहीं मिलता है। आजकल हर जगह डिजिटलाइजेशन का जमाना है और गाँव भी तरक्की कर रहे हैं तो इस कहानी का कथानक बहुत सदियों पुराना है। प्रतिशोध अपने आप में कुछ हासिल नहीं कर सकता। प्रतिशोध लेना अच्छा नहीं है बल्कि माफ कर देना ज्यादा अच्छा होता है, यह मेरे व्यक्तिगत विचार है।

हमें कहानियों का सृजन इस तरह से करना चाहिए जो समाज को कुछ संदेश देकर जाएँ। कहानियों को सुखांत होना चाहिए। परंतु यह भी विडंबना है कि समाज में सब कुछ व्याप्त है उस सच्चाई को भी हमें पाठकों के सामने रखना है।

कुल मिलाकर रणविजय जी की यह पुस्तक अपने आप में बहुत ही सुंदर बन पड़ी है जो पठनीय है। मैं उन्हें हार्दिक बधाई देती हूँ तथा उनके उज्ज्वल भविष्य की कामना करती हूँ।

– एल-108, ऋषि नगर, रानी बाग, नई दिल्ली-110034

❑❑❑

जीवन की विसंगतियों का प्रामाणिक दस्तावेज है 'अर्थागमन'

डॉ. रमेश तिवारी

बलदेव त्रिपाठी का नाम बेशक व्यंग्य के क्षेत्र में नया है किंतु इनके आगाज को देखकर यह समझना मुश्किल नहीं है कि इनकी तैयारी जबरदस्त है। व्यंग्य के क्षेत्र में इनकी पहली रचनात्मक उपस्थिति है- अर्थागमन। यह व्यंग्य उपन्यास है। अर्थागमन यानी अर्थ का आगमन। अर्थ का (धन का) आगमन कैसे हो सकता है इसी की जुगाड़बाजी में यह उपन्यास रचा गया है। फुल्लन मिश्रा नामक चरित्र के चित्रण के बहाने लेखक ने हमारे सामने भारतीय गाँव के शिक्षित नौजवानों ही दशा-दिशा की ऐसी मजेदार (शानदार) प्रस्तुति की है जिसे पढ़ते हुए पाठक कहीं अटकता या ऊबता नहीं है। ऊपर से देखने में आकार-प्रकार के हिसाब से यह उपन्यास 430 पृ. में फैला हुआ है हालाँकि एक त्वरित संपादन के उपरांत नये पुनर्मुद्रित संस्करण में उपन्यास की पृष्ठ सं. 356 तक कर दी गई है। फिर भी आज के एस एम एस और इमोजी वाले दौर में 356 पृष्ठों का भारी-भरकम उपन्यास देखकर सामान्यतया किसी भी पाठक का धैर्य जवाब दे सकता है किंतु यह इस कृति का एक पक्ष है। दूसरा पक्ष जानना भी अत्यंत महत्वर्पूण है। दूसरा पक्ष यह है कि एक बार यदि किसी गंभीर पाठक ने उपन्यास पढ़ना शुरू कर दिया तो वह स्वत: इस उपन्यास की कथा और भाषा की सौंदर्य-सरिता में पैठते हुए आनंदित होगा और निरंतर पढ़ता जाएगा। किसी रचनाकार की पहली ही कृति में भाषा का यह सधा हुआ अंदाज और मिजाज लेखकीय परिपक्वता को प्रमाणित करता है। बलदेव त्रिपाठी का यह उपन्यास उनके लेखकीय कौशल को दर्शाने में समर्थ है।

व्यंग्य का प्रमुख औजार उसकी भाषा को ही माना जाता है। व्यंग्य में से यदि भाषा के बाँकपन (वक्रता) को हटा दिया जाए तो व्यंग्य स्वत: अनुपस्थित हो जाएगा, निष्प्राण हो जाएगा। इस उपन्यास को पढ़ते हुए पाठक कदम-कदम पर भाषा की उस बाँकी अदाकारी का साक्षात दर्शन कर सकता है जिसकी वजह से कोई रचना व्यंग्य का रूप धारण करती है। उपन्यास की कथाभूमि गाँव, कस्बा और कदाचित प्रसंगवश दिल्ली आदि महानगरों तक व्याप्त है। जब हम इस उपन्यास को पढ़ना शुरू करते हैं तो सबसे पहले 'आभार' शीर्षक से उपन्यास की भूमिका पढ़ने को मिलती है। आरंभिक वाक्य से ही लेखक स्वंय को पाठकों के समक्ष खोलना (अनावृत) शुरू कर देता है। "मेरे लिए लेखन सदैव लंबित सूची का विषय बना रहा।.... मेरी नौकरी की व्यस्तता में मेरा लेखन मस्तिष्क में ही घुमड़ता रहा, आकार नहीं ले सका। लिहाजा मेरे अंदर का लेखक बहुत लंबी अवधि तक सुषुप्तावस्था में पड़ा रहा।" यानी लेखक को अपने भीतर के लेखक की पहचान आरंभ से ही है, यह बहुत अच्छी बात है। जीवन संघर्षों से जूझते हुए उसके भीतर का लेखक व्यस्ततावश लंबी अवधि तक सुषुप्तावस्था में रहा, ये और बात है। इस प्रसंग के उल्लेख का उद्देश्य पाठकों को मात्र यह बताना है कि लेखक किसी भी तरह की जल्दबाजी में

अर्थागमन/ व्यंग्य उपन्यास/ उपन्यासकार : बलदेव त्रिपाठी/ प्रकाशक : लेखन प्रकाशन, आलमबाग, लखनऊ, उत्तर प्रदेश/ प्रकाशन वर्ष : 2017/ कुल पृष्ठ : 356/ मूल्य ₹.250/-

नहीं है। जीवन की व्यस्तताओं के कारण नौकरी की भाग-दौड़ और मेरे आलस्य के झंझावातों में कथा यात्रा डायरी के कुछ पन्नों तक ही सीमित हो के रह गयी।" अच्छा यह रहा कि लेखक की लेखन के प्रति रूचि लगातार बनी रही और अंततः लिखने का दौर भी शुरू हुआ, परिणाम स्वरूप 'अर्थागमन' के रूप में पहला व्यंग्य उपन्यास हमारे सामने हैं।

यह उपन्यास मूलतः बलदेव त्रिपाठी के आत्ममंथन का परिणाम है। समाज को, समाज की विसंगतियों को लेखक ने जिस रूप में देखा है, वह देखना हमारे-आपके देखने जैसा नहीं है। बल्कि उससे अलग और विशिष्ट है। यानी देखने के क्रम में ही विसंगतियों की पहचान और रचना की जमीन की तलाश दोनों ही कार्य लेखक साथ-साथ संपन्न करता है। ग्रामीण समाज, ग्रामीण समस्याएँ, ग्रामीण समाज की संरचना तो लेखकीय दृष्टि की रेंज में शामिल है ही, इन सबसे ऊपर और प्रमुख है ग्रामीण समाज में रहने वाले व्यक्तियों की दिनचर्या और मिजाज को पढ़ना और पढ़कर उसे अपनी कृति के चरित्र में अभिव्यक्त करना। यह अभिव्यक्त करना कोई साधारण अभिव्यक्ति नहीं है, बल्कि कुछ इस तरह से अभिव्यक्त करना है कि पाठक के दिलो दिमाग पर भी उसका असर हो। पाठक रुचिपूर्वक पढ़े, समझे और आत्मसात करे। असल लक्ष्य यह है। बदलेव त्रिपाठी 'आभार' शीर्षक से ही आगे लिखते हैं: "मुझे समाज में प्रतिदिन घटित होने वाली वह घटनाएँ दिखाई देने लगी, जिनसे कभी-न-कभी हम सभी का सामना होता है। उन्हीं घटनाओं को मैंने कल्पना की उड़ान के साथ समेटने का प्रयास किया है।"

आज के लेखकों में अधिसंख्य की हालत यह है कि 400-500 शब्द लिखते हुए वे हाँफने लगते हैं। अखबारी स्तंभ लिखने वाले चार लेख छाप-छाप कर 'व्यंग्य के स्वयंभू' बनने की जुगाड़बाजी में लगे हैं। इसी दौर में एक ऐसा लेखक जिसका शब्द भंडार असीम है। 356 पृ. के उपन्यास में भी वह अपनी कथा को विराम देने से बेहतर स्वतंत्र रूप से पाठकों की सुविधा के लिए उपन्यास का अगला भाग लिखने की घोषण पहले ही भाग की भूमिका में कर देता है। प्रमाणस्वरूप इन पंक्तियों को पढ़ा जाना चाहिए- "पूरी कथा को दो भाग में समेटने का प्रयास किया गया है। प्रथम भाग अर्थागमन के रूप में आपकी भावनाओं को गुदगुदाने के लिए प्रस्तुत है। इस कथानक का दूसरा भाग शीघ्र ही प्रकाशित होकर आपके बहुमूल्य सुझाव के लिए उपयुक्त होगा।" अब तो अर्थागमन का अगला भाग 'विक्रय मूल्य' भी प्रकाशित हो चुका है। 700-800 पृष्ठों के दो व्यंग्य उपन्यासों के लेखन का तात्पर्य यह भी है कि लेखक का अनुभव फलक अत्यंत व्यापक रहा है। अनुभव के मामले में लेखक इतना समृद्ध है कि बरसों से समाज में व्याप्त विसंगतियों को मन मस्तिष्क में सँजोता चलता है। तमाम अनुभव अनुकूल और सरस भाषा के साथ इन दोनों ही उपन्यासों के पन्नों पर अलग-अलग पृष्ठों पर प्रसंगों, घटनाओं के रूप में मौजूद हैं।

बलदेव त्रिपाठी के 'अर्थागमन' उपन्यास की पृष्ठभूमि ग्रामीण है। गाँवों में पढ़-लिखकर नौकरी आदि से वंचित रह गए युवक अर्थोपार्जन के लिए कुछ-न-कुछ करने को मजबूर हैं। फुल्लन मिश्रा भी ऐसे ही ग्रामीण के रूप में चित्रित किए गए हैं। जहाँ तक उपन्यास की विषय वस्तु का प्रश्न है तो सामाजिक परिवेश में जितनी भी हमारे दैनंदिन जीवन व्यवहार की संस्थाएँ हैं और जो आस-पड़ोस के अल्पशिक्षित, अशिक्षित जन हैं उनकी मदद करते और उनके काम कराने का ठेका ऐसे चरित्र लिया करते हैं। काम कराने की एवज में लोगों से तयशुदा रकम मिलती है जिससे फुल्लन मिश्रा जैसे लोगों का पारिवारिक व निजी खर्च चलता है। 'अर्थागमन' उपन्यास में ऐसे अनेक प्रसंग आप देख सकते है।

रचनाकार की विशेषता यह है कि उसने भाषा की गति को इधर-उधर होने नहीं दिया है। भाषा की बदौलत ही पाठक इस उपन्यास को एक बार बिना समाप्त किए रख नहीं पाता। इस उपन्यास की भाषा पर चिंतन-मनन करते हुए मैं आरंभ का ही एक अंश प्रस्तुत करता हूँ- "भारतीय ट्रेनें विलंब से आ सकती हैं नेता जी पब्लिक मीटिंग में आने के निर्धारित समय से घंटों बाद आ सकते हैं, किंतु फुल्लन मिश्रा अपने गाँव शंकरपुर के चौराहा पर पहुँचने में कभी विलंब नहीं करते हैं।" (पृ.1) इस प्रकार के वर्णन को कथावाचक अथवा प्रवाचक की शैली में लेखक उपन्यास में प्रस्तुत करता नजर आता है। ऐसी रोचक प्रस्तुतियों से पाठक आरंभ में ही रचना के साथ तादात्म्य स्थापित करने में सफल हो जाता है। इस दृष्टि से लेखक की लेखनी का कमाल पाठकों के सिर चढ़कर बोलता है और इतना बृहदाकार उपन्यास भी पाठकों द्वारा पूरा पढ़ लिया जाता है।

लेखन की सार्थकता उसे पढ़ने में ही है। वरना 'जंगल में मोर नाचा किसने देखा'?

व्यंग्य-उपन्यास में कथावस्तु के विस्तार की चुनौती यह होती है आप हर पंक्ति में व्यंग्य नहीं लिख सकते। इसलिए कहीं-कहीं कथा सपाटबयानी के साथ भी आगे बढ़ती देखी जा सकती है। विशेषकर फुल्लन मिश्रा की दादी का निधन और उसके थोड़ा पहले तथा बाद के प्रसगों में कथा में प्रवाह तो है किंतु व्यंग्य का समावेश न के बराबर है। बावजूद इसके कथा-विन्यास और प्रवाह में प्रसंगानुकूल उपयुक्त भाषा का प्रयोग लेखक ने किया है। कई प्रसंगों से करुणा की धारा फूटती देखी जा सकती है। कई प्रसंगों में हास्य-व्यंग्य का समावेश भी है। मसलन अनुरागी जी की धर्मपत्नी के प्रभाव में फुल्लन मिश्रा का दिल्ली प्रवास समाप्त हो जाता है और वे अचानक स्लीपर क्लास में रिजर्वेशन कराकर गाँव को लौट पड़ते हैं। स्लीपर क्लास की आरक्षित बोगी में मौजूद अनारक्षित भीड़ से होनेवाली असुविधा भारतीय (विशेषकर उत्तर भारत) रेल का का स्थायी चरित्र बन गया है। एक दृश्य देखें: "ट्रेन में बहुत भीड़ थी। इलाहाबाद के कुंभ मेले में नागाओं के बीच से निकलकर, संगम पर स्नान कर लेने में जितनी कला-कौशल की आवश्यकता होती है, उसी कला कौशल से फुल्लन मिश्रा अपनी बर्थ तक पहुँच पाए थे। ... लार्ड डलहौजी ने कभी कल्पना भी नहीं की होगी कि उसके द्वारा चलाई गई भारतीय रेल में लोग इतनी सुविधाजनक यात्रा भी कर सकते हैं।" (पृ. 72) इस प्रकार के वातावरण में सफर करना अत्यंत दुखदायी होता है। इतनी सहनशीलता भी सबके वश की बात नहीं है। हालाँकि कुछ लोग इसके अभ्यस्त होते हैं। लेखक का पात्र फुल्लन मिश्रा भी आखिरकार किसी तरह अपना सामान लेकर स्लीपर क्लास के डिब्बे से निकलकर थर्ड एसी की बोगी में शरण लेते हैं। यही नहीं बड़े-बड़े रेलवे स्टेशनों के पूर्व आउटर पर रेलगाड़ियों के रुक जाने की घटनाएँ भी इतनी आम हैं कि वह भी लेखक के व्यंग्य प्रहार का विषय बनता है। "भारतीय रेलवे के कंट्रोल रूम का कंट्रोलर या तो ड्यूटी पर सोता है या ड्यूटी से उठकर चाय-पान के लिए बार-बार बाहर जाता रहता है। इसीलिए मुख्य रेलवे स्टेशनों पर सभी ट्रेने सिग्नल न मिल पाने से पहले आउटर पर रुकती हैं, फिर आगे बढ़ती हैं। यदि भूल से कहीं ग्रीन सिग्नल देकर कंट्रोलर महोदय चाय पीने चले गए तो ट्रेन का लड़ना निश्चित है। सतर्कता के लिए कंट्रोलर महोदय हमेशा लाल सिग्नल दिए रहते हैं। जब नींद से उठते हैं या चाय पीकर आ जाते हैं, तभी ग्रीन सिग्नल देते हैं।.... रेलवे के विशेषज्ञ अधिकारी भी इनकी योग्यता का ख्याल रखते हुए, एक घंटे में निर्धारित दूरी तय करने वाली ट्रेनों के लिए डेढ़ घंटे में पहुँचने का टाइम टेबल बनाते हैं।" (पृ. 73) इस प्रकार के वर्णनात्मक प्रसंगों को पढ़कर यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि उपन्यासकार ने अपने समाज की बड़ी-छोटी तमाम गतिविधियों का बड़ी ही सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन किया है। इस उपन्यास के द्वारा उपन्यासकर हमें हमारे ही समाज की विभिन्न तस्वीरों को दिखाते हुए उसमें व्याप्त विसंगतियों को उभारता और उन पर व्यंग्य प्रहार करता चलता है। जितना भी चित्रण लेखक ने उपन्यास में किया है, सब उसकी आँखों देखी-भोगी जीवनानुभूतियाँ हैं जिन्हें लेखक ने बरसों तक अपने स्मृतिकोश में सँजोए रखा है और इस उपन्यस में शब्दों के सहारे अपने जीवन के देखे-भोगे यथार्थ को काल्पनिकता के समावेश से रोचकता के साथ प्रस्तुत किया है। अपनी पहली ही कृति द्वारा लेखक ने अपने लेखन कौशल की जो धमाकेदार उपस्थिति हिंदी व्यंग्य जगत में दर्ज कराई है, वह काबिलेतारीफ है। उम्मीद है व्यंग्य प्रेमियों को यह उपन्यास बेहद पसंद आएगा बलदेव त्रिपाठी जी को उनके पहले उपन्यास के प्रकाशन के लिए बहुत-बहुत साधुवाद।

– 64-बी, फेस-II, डी डी ए फ्लैट, कटवारिया सराय, नई दिल्ली-110016

❑❑❑

भावों की सशक्त अभिव्यक्ति; भाषा का सरल प्रवाह

डॉ. सीमा शर्मा

'खिड़कियों में झाँकती आँखें' सुधा ओम ढींगरा का सातवाँ कहानी संग्रह है। इन सभी कहानी संग्रहों को पढ़ने के बाद स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि आपकी कहानियाँ भारत और अमरीका के बीच एक ऐसे पुल का निर्माण करती हैं, जिस पर चलकर आप इन दोनों देशों के सामाजिक और सांस्कृतिक ताने-बाने बहुत बारीकी से समझ सकते हैं। आप चीज़ों को व्यापक परिदृश्य में देखते हैं और इस प्रक्रिया में आपके कई पूर्वाग्रह ध्वस्त हो जाते हैं। यह प्रक्रिया किसी एक कहानी में नहीं बल्कि कहानी-दर कहानी चलती रहती है। समीक्ष्य संग्रह की पहली कहानी 'खिड़कियों से झाँकती आँखें' से लेकर कहानी 'एक नई दिशा' तक आते-आते आपकी धारणा और अधिक पक्की होती जाती है।

संग्रह की प्रतिनिधि और प्रथम कहानी 'खिड़कियों से झाँकती आँखें' अत्यंत संवेदनशील है। इस कहानी में 'आँखें' प्रतीक हैं। उन वृद्धों की, जिनकी संतानें सफलता की राह पर आगे बढ़ गईं और ये बहुत पीछे छूट गए। अब ये 'आँखें' स्नेह एवं प्रेम की एक किरण जहाँ दिखाई दे उसी से चिपक जाना चाहती हैं, लेकिन यही 'आँखें' कथा नायक डॉ. मलिक को असहज कर देती हैं क्योंकि वह इनकी सच्चाई नहीं जानता। डॉ. खान उसे इनकी सच्चाई बताते हुए कहते हैं- "यंग मैन, इन आँखों से डरने की ज़रूरत नहीं, इनको दोस्ती का चश्मा चाहिए, पहना दो, चिपकना बंद कर देंगी।" (पृ. -16) डॉ. मलिक को बहुत जल्दी ये बात समझ आ जाती है और वह कहता है- "मैं जान गया कि सहारे को तलाशती ये आँखें किसी भी अजनबी में अपनापन ढूँढ़ने लगती हैं।" (पृ.-17)

इस कहानी में कई आयाम हैं। एक ओर अपनी जड़ों से कटकर स्वयं को कहीं और स्थापित करना। अपनी जड़ें जमाने और वहीं रच-बस जाने के बाद आप ही की तरह आपकी अगली पीढ़ी कहीं किसी देश में अपनी दुनिया बसा लेती है। अब आप नितांत अकेले हो जाते हैं, इसलिए एक बार पुनः अपने देश लौटने की चाह उत्पन्न होना स्वाभाविक है लेकिन तब वहाँ आपके पास कोई स्थान शेष नहीं रह जाता। यह ऐसा ही है जैसे किसी पौधे को निकाल कर कहीं और रोप दिया जाए तो कुछ समय के बाद वहाँ उस पौधे के लिए कोई स्थान शेष नहीं रह जाता। ऐसा भी हो सकता है कि उस पौधे के स्थान पर कोई और पौधा उगे एवं वृक्ष बन जाए। डॉ. मलिक "देश की धरती में लगे पौधे को उखाड़कर हमने विदेश की धरती में बो दिया। पहले पहल उसे बहुत मुश्किलों का सामना करना पड़ा, फिर धरती और पौधे दोनों ने एक दूसरे को स्वीकार कर लिया" (पृ.-21) "जब पौधा वृक्ष बन गया तो हम उसे उखाड़कर फिर पुरानी धरती में लगाने ले गए। जिन रिश्तों के लिए पौधा विदेश में वृक्ष बना, उन्हीं रिश्तों ने

खिड़कियों से झांकती आँखे (कहानी संग्रह) / लेखिका : सुधा ओम ढींगरा/ प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, पी. सी. लैब, सम्राट कांप्लेक्स बेसमेंट, सीहोर, मध्य प्रदेश-466001/ प्रकाशन वर्ष : 2020/ कुल पृष्ठ : 132/ मूल्य ₹150/-

स्वार्थ की ऐसी आँधी चलाई की वृक्ष के सारे पत्ते झड़ गए, टुंड-मुंड हो गया वह। पुरानी धरती और टुंड-मुंड हुए वृक्ष, दोनों ने एक दूसरे को स्वीकार नहीं किया और रोप दिया हमने विदेश की धरती पर वह वृक्ष एक बार फिर। इस धरती ने उसे पहचान लिया और सीने से लगा लिया।"(पृ.-21)

सुधा ओम ढींगरा की कहानियों में यह बात बार-बार उभर कर सामने आती है कि स्वदेश में रहने से सब बहुत अच्छे और विदेश में रहने से बुरे नहीं बन जाते। न ही उन संस्कारों को भूलते हैं जो उन्हें परिवार और समाज से मिले और जो भूल जाते हैं या स्वार्थी बन जाते हैं ऐसे अपवाद कहीं भी हो सकते हैं। किसी के व्यक्तित्व निर्माण में देश-विशेष का प्रभाव तो अवश्यंभावी है, लेकिन और भी अनेक कारक हो सकते हैं। समीक्ष्य संग्रह की दूसरी कहानी 'वसूली' में ऐसे ही एक विषय को उठाया गया है। 'वसूली' कहानी सत्तर के दशक से नब्बे के दशक तक जाती है, इसमें लेखिका ने हरि और सुलभा के माध्यम से दिखाने का प्रयास किया है कि प्रवासी भारतीय; अपनी भारतीयता, देश और परिवार से कितना लगाव रखते हैं, जबकि भारत में रहने वाले कितने भारतीय ऐसे हैं जिनके लिए उनका स्वार्थ सर्वोपरि है। शंकर और उमा को उस मनोवृत्ति के प्रतीक के रूप में देखा जा सकता है। हरि मोहन अमरीका में रहकर भी अपने परिवार को सुखी और प्रसन्न देखना चाहता है। विदेश जाकर बसने के पीछे भी यही कारण था लेकिन हरि के लिए जो सच्चाई थी, शंकर के लिए वह निरी भावुकता। शंकर के शब्दों में "हरि, तुम शुरू से ही भावुक थे, विदेश जाकर तो भावनात्मक बेवकूफ बन गए हो।" हरि के लिए शंकर का यह व्यवहार आश्चर्यजनक था, तभी तो वह कहता है- "कहाँ गई आपकी मर्यादा। कहाँ गया आपका संस्कार। विदेश में तो मैं रहता हूँ और समुद्र का खारापन आपकी आँखों पर छा गया है।" (पृ.-26)

हरि भारत में जन्मा, छह भाई-बहनों के बीच अत्यंत गरीबी में पला-बढ़ा। बहुत मेहनत करके पढ़ाई की। संभवत: इसलिए उसका व्यक्तित्व एक भावुक और उदार व्यक्ति के रूप में निर्मित हुआ जबकि उन्हीं परिस्थितियों के बीच पले-बढ़े उसके बड़े भाई शंकर का व्यक्तित्व ठीक उलट दिखाई देता है। जबकि बचपन में वह भी हरि की ही तरह अत्यंत संवेदनशील था। ऐसे में क्या इसे मात्र व्यक्तिगत भिन्नता के रूप में देखा जा सकता है या संगत भी एक कारक रूप में रही होगी। लेखिका ने इस ओर संकेत किया है। शंकर के व्यवहार का उसके परिवार पर जो असर है, वह उसके समूचे परिवार पर स्पष्ट रूप में दिखाई देता है। एक माँ का अपने ही बेटे से डरना और अपनी व्यथा को इस तरह व्यक्त करना "उमा उसे भड़काती रहती है, अब बार-बार एक ही बात कहता है, मैं, मेरी पत्नी, मेरा परिवार है और बाकी सब यानी बहन-भाई गृहस्थी हैं।" (पृ.-27) वह समझ नहीं पाती उससे क्या गलती हो गई, वह बेटा जो सारे विश्व को अपना परिवार समझता था, अब सबको अलग कैसे समझने लगा।

यह कहानी वैसे तो संपत्ति के लालच में एक परिवार के बिखराव की कहानी है लेकिन इसके छोटे से कथ्य में व्यापक गहराई है। लेखिका ने एक परिवार की समस्या के माध्यम से मानवीय व्यवहार का सूक्ष्म विश्लेषण किया है। इसका विस्तार दिल्ली से लेकर अमरीका तक है। समीक्ष्य कहानी इस भ्रम को भी तोड़ती है कि सुसंस्कार और उदार व्यक्तित्व स्वदेश में रहकर ही हो सकते हैं, उदाहरण के रूप में सुलभा एवं हरि जैसे पात्रों को देखा जा सकता है, विशेष रूप से सुलभा के चरित्र को, यदि सुलभा का चरित्र उमा जैसा होता तो हरि का व्यक्तित्व निश्चित ही कुछ और होता। बहुत संभावना इस बात की थी कि वह भी शंकर के जैसा स्वार्थी होता। सुलभा का जन्म अमरीका में होने के बाद भी वह भारतीयों से अधिक भारतीय है, जबकि उमा सत्तर के दशक में जो मान-मर्यादा, सामाजिक पाबंदियाँ और परिस्थितियाँ थीं उनके ठीक विपरीत बर्ताव करती है। उमा और शंकर भौतिकता के आकर्षण में एक अंधी दौड़ का हिस्सा बन जाते हैं।

समीक्ष्य संग्रह की तीसरी कहानी 'एक ग़लत कदम' वृद्धाश्रम और परिचायाग्रह के एक दृश्य के साथ शुरू होती है जहाँ दयानंद शुक्ला एवं शकुंतला शुक्ला को उनके दो पुत्र और पुत्र वधुओं ने यहाँ तक पहुँचाया है। यह 'एडल्ट लिविंग एंड नर्सिंग होम' लिखित रूप में तो सबके लिए है लेकिन अघोषित रूप

से यह केवल भारतीयों के लिए और इसमें सूक्ष्म भारत की झलक मिलती है। "सारे डॉक्टर, नर्स, सेवक-सेविकाएँ और कर्मचारी भारतीय हैं। हर गृह में एक मंदिर भी होता है। हर प्रदेश का भारतीय भोजन यहाँ दिया जाता है और भारतीय माहौल उत्पन्न किया जाता है।" अप्रवासी भारतीयों के अंदर जो भारत बसता है, वृद्धाश्रम उसी का प्रतिबिंब है। यह उन लोगों का आश्रय स्थल बन जाता है जो किन्हीं कारणों से भारत नहीं जा पाते और अपने परिवार के साथ भी नहीं रह पाते। सभी सुख-सुविधाओं से संपन्न यह वृद्ध आश्रम भारतीय बुजुर्गों में बहुत लोकप्रिय है। यह एक ऐसा स्थल है जहाँ उन्हें अहसास हो कि वे भारत में ही रह रहे हैं। इस अहसास से उन्हें सुख की अनुभूति होती है। "चारों ओर भारतीय! शोर-शराबा, संयुक्त परिवार-सा खान-पान, सुबह-शाम घंटियों की आवाज, शंख का नाद, भारतीय संगीत, धूमधाम से मनाए जाते भारतीय उत्सव। ढलती उम्र में जन्मभूमि बहुत याद आती है, बस ऐसे गृहों में उसे ही मुहैया करवाने की कोशिश की जाती है।" (पृ.-45) विशेष बात यह है कि इसका निर्माण भी एक भारतीय 'डॉ. सुमंत हीरादास पटेल' ने कराया था।

इस कहानी का बहुत बड़ा भाग पूर्वदीप्ति शैली (फ़्लैश बैक) में आगे बढ़ता है। यह कहानी एक ओर सजातीय और विजातीय होने के भ्रम को तोड़ती है और इस तथ्य को स्थापित करती है कि अच्छे-बुरे लोग देश-विदेश सब जगह होते हैं और अपवाद कहीं भी हो सकते हैं। डॉ. शरद शुक्ला और डॉ. जैनेट शुक्ला जैसे पात्रों के माध्यम से लेखिका ने कई पूर्वाग्रहों को तोड़ने का कार्य किया है। इस कहानी में उन्होंने इस धारणा को भी ध्वस्त किया है कि यूरोपीय देश में संयुक्त परिवार नहीं होते या उनके बीच वैसी परवाह, स्नेह और सामंजस्य नहीं होता जैसा कि भारत में।

सुधा ओम ढींगरा ने 'ऐसा भी होता है' कहानी में एक ऐसे विषय को उठाया है जिस पर हम या तो ध्यान नहीं देते या देना नहीं चाहते। समाज में दहेज़ की समस्या पर खूब बात होती है लेकिन लेखिका ने समीक्ष्य कहानी में इसके ठीक विपरीत एक विषय को उठाया है। कहानी पत्रात्मक शैली में लिखी गई है। इसकी मुख्य पात्र दलजीत कौर के माध्यम से लेखिका ने उन सभी स्त्रियों की पीड़ा को शब्द दिए हैं, जो अपना 'मायका' (एक ऐसा घर जो सामान्यतया उनका होता ही नहीं) बचाने के लिए अपनी सामर्थ्य से अधिक प्रयास करती हैं लेकिन अंततः उन्हें निराशा ही हाथ लगती है। कहानी भले विदेश में बसी बेटी को लेकर बुनी गई है। लेकिन यह समस्या सार्वदेशिक कही जा सकती है कहानी में उस मानसिकता पर प्रहार है, जहाँ सारा प्यार-दुलार तो बेटों के हिस्से आता है लेकिन सारी अपेक्षाएँ बेटियों से। कथा नायिका 'दलजीत कौर' के माध्यम से लेखिका ने प्रश्न किया है- "आप सबके दिल में मेरा सिर्फ इतना ही स्थान है कि मैं आपकी अपेक्षाएँ पूरी करने के लिए बनी हूँ। आप लोगों के जीवन और दिलों में मेरा और कोई महत्व नहीं।" (पृ.-62) कहानी में एक सहज प्रश्न है कि बच्चों के जन्म की एक जैसी प्रक्रिया के बाद; धरती पर आते ही भेदभाव कैसे शुरू हो सकता है? उससे भी बड़ा प्रश्न कि एक माँ कैसे भेदभाव कर सकती है? "बीजी, जैसे आप वीरों को सीने से लगाती हैं, कभी आपने अपनी धीयों (बेटियों) को भी सीने से लगाया। क्यों नहीं लगाया? हम तो आपकी ही हैं, आपकी जात की। बाऊजी और चाचाजी ऐसा करें तो मैं मान सकती हूँ, वे पुरुष हैं, वीर उनकी जात के हैं, पुरुष प्रवृत्ति ऐसी ही होती है। अफसोस तो इसी बात का है, स्त्री ही अपनी जात के साथ गद्दारी करती है।" (पृ.-63) "दलजीत अक्सर महसूस करती थी, हमारे घर में कुड़ियाँ आँगन के फूल नहीं बस ऐंवई पैदा हुई खरपतवार हैं। सारा प्यारा, दुलार और सारी सुख - सुविधाएँ तो वड्डे वीर जी और छोटे वीरे के लिए हैं।" (पृ.-63)

मायके की निरंतर मदद करने वाली 'दलजीत' का एक बार उनकी मदद न कर पाना वह भी जानबूझकर नहीं, वरन् उसे घर से आए एक पत्र के न मिल पाने के कारण लेकिन यही कारण उसके मोहभंग का भी है। 'दलजीत' की वेदना को इन पंक्तियों में स्पष्ट रूप से अनुभव किया जा सकता है- "पिछले ग्यारह महीने की चिट्ठियों ने तो मेरे अहसासों को और पुख्ता कर दिया। आपके दिल में कुड़ियों का कोई महत्व है ही नहीं। आपके लिए वे कठपुतलियाँ हैं जैसे चाहे नचा लो.... मुझे दोनों वीरों से कोई ईर्ष्या नहीं बस बीजी के भेदभाव

से एतराज है और निराशा भी है; जिन्होंने हर बच्चे को नौ महीने पेट में पालकर, एक जैसा कष्ट सहा। पर बाहर आते ही शिशु लड़का-लड़की बन गया और भेदभाव का सिलसिला उसी क्षण से शुरू हो गया, जब बच्चे की आँख ही खुली।"(पृ.-63)

लेखिका ने 'दलजीत' के पिता के रूप में एक ऐसे पात्र को गढ़ा है जिनके लिए बेटियाँ उनके सपनों को पूरा करने का माध्यम मात्र हैं। 'दलजीत' की पीड़ा के माध्यम से लेखिका ने उस समूचे वर्ग पर व्यंग्य किया है, जो अपनी बेटियों को परदेश में केवल इसलिए ब्याहते हैं कि उनके सपने पूरे हो सकें। इन सपनों के बीच उपेक्षित हुई लड़कियों की मनोदशा को लेखिका ने बहुत मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त किया है- "बाऊजी जिसने यह रिश्ता करवाया, उसने आपके साथ धोखा किया हैं। यहाँ डॉलर उगते नहीं, कमाने पड़ते हैं, कड़ी मेहनत से....इस परिवार ने मुझे अहसास दिलवाया कि मैं सिर्फ एक स्त्री नहीं, इंसान भी हूँ और मुझे भी सोचने और कहने का हक है; जो आपके घर में मुझे कभी नहीं मिला" (पृ.-65)

'कॉस्मिक की कस्टडी' कहानी की कथावस्तु की बात की जाए तो दो पंक्तियों में आ सकती है। माँ (मिसेज रॉबर्ट) और बेटे (ग्रेग) कॉस्मिक की कस्टडी के लिए केस लड़ते हैं। जैसा कि हम जानते है कि "हर केस में कुछ टूटता है या छूटता है।' लेकिन यहाँ इसके ठीक विपरीत स्थिति है। यह केस न केवल एक माँ-बेटे के रिश्ते में निकटता लाता है वरन् भावनात्मक रूप से भी उसे सुदृढ़ बनाता है। यह इस कहानी की खूबी है। यहाँ कहानी की कथावस्तु का संकेत नहीं किया जा रहा है क्योंकि इस कहानी को पढ़ने का जो आनंद है वो कम हो सकता है।

संग्रह की छठी कहानी 'यह पत्र उस तक पहुँचा देना' को सतही ढंग से देखने पर तो 'जैनेट' और 'विजय' की प्रेम कहानी है किंतु लेखिका ने इस कहानी के द्वारा दो देशों की राजनैतिक व्यवस्था, सामाजिक ढांचा एवं इन व्यवस्थाओं में विभिन्न विभेद; जिनके कारण कई तरह की जटिलताएँ उत्पन्न होती हैं। घटिया राजनीति, नस्लवाद और रंगभेद के कारण दो भोले-भाले लोगों का जीवन समाप्त होना; इससे दुखद क्या हो सकता है? राजनीति एवं राजनेताओं की स्थिति लगभग सभी जगह एक जैसी है।

'अँधेरा-उजाला' समीक्ष्य-संग्रह की एक अनूठी कहानी है। जब आप इसे पढ़ते हैं तो अनायास ही आपको चंद्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी 'उसने कहा था' याद आने लगती है। मोटे तौर पर दोनों कहानियों में कोई साम्य नहीं है। कथावस्तु, पात्र, देशकाल और परिस्थितियाँ सब कुछ अलग है। लेकिन इन दोनों कहानियों में कुछ तो ऐसा है जो भावनात्मक स्तर पर एक समता इनमें दिखने लगती है। 'उसने कहा था' का लहना सिंह और 'अँधेरा-उजाला' कहानी का मनोज दोनों ही पात्र एक ही धरातल पर खड़े दिखाई देते हैं। लहना सिंह अपनी प्रेयसी के लिए मृत्यु का वरण करता है तो मनोज अपनी फैन इला से किए वादे को जीवनपर्यंत निभाता है क्योंकि किसी फैन ने उससे वादा लिया था "इसलिए वह निरंतर रियाज़ करता है और गाता है कि वह दुनिया के किसी भी कोने में रहे उसकी गायकी सुनती रहे।" इसके अतिरिक्त इस कहानी में और भी कई आयाम हैं। कहानी की कथावस्तु कई दशक पहले के परिवेश से शुरू होती है उस समय जाति और वर्ग- भेद की खाई अब से कहीं अधिक गहरी थी। कथा नायिका का बाल मन इस अमानुषिक भेदभाव से खिन्न हो जाता है। इला देखती है कि उसकी दादी ने 'सोमा' को आँगन की दहलीज़ कभी पार करने नहीं दी। इला की माँ को यह सब पसंद नहीं था लेकिन वह कभी कह नहीं सकी चूँकि उसकी खुद की दशा दोयम दर्जे की थी। इला की माँ का जो मूक विरोध था, वह इला में मुखरित होता है। वह तो 'सोमा' के बेटे मनोज से स्नेह करने का दुस्साहस कर बैठती है। ये अलग बात है कि उसे सफलता नहीं मिलती किंतु उसका विद्रोह जारी रहता है 'अँधेरा-उजाला' कहानी बाल मनोविज्ञान को भी दर्शाती है लेखिका ने समीक्ष्य कहानी के माध्यम से अभिभावकों की उस मनोवृत्ति की ओर संकेत किया है, जब वे अपनी अतृप्त इच्छाओं को बच्चों से पूरा करना चाहते हैं- "उससे बच्चे किस मानसिक तनाव से गुजरते हैं माँ-बाप कभी महसूस ही नहीं कर पाते। कई बार बच्चे अवसाद में चले जाते हैं। ऐसे में बच्चों के व्यक्तित्व का सही विकास नहीं हो पाता।" (पृ.-100)

संग्रह की अंतिम कहानी 'एक नई दिशा' भारतीय मूल के परेश और मौली जैसे पात्रों के माध्यम से कही गई एक सकारात्मक कहानी है। पूर्वदीप्ति शैली में लिखी इस कहानी में रीटा भास्कर और उसके पति के रूप में बबली (ठग) जैसे पात्र हैं, जिनके माध्यम से कहानी आगे बढ़ती है। परेश व मौली एक सजग दंपत्ति हैं जो कठिनाइयों से जूझना जानते हैं। एक दूसरे का साथ देते हैं। जीवन में आई किसी जटिलता या नकारात्मकता को भी एक नई और सार्थक दिशा देते हैं। यही इस कहानी का उद्देश्य भी है।

सुधा ओम ढींगरा कहानियाँ लिखती नहीं वे उन कहानियों में स्वयं रच-बस जाती हैं। आपके पास व्यापक अनुभव है इसलिए हर कहानी कथावस्तु की दृष्टि से, एक दूसरे से नितांत भिन्न होती है लेकिन एक ऐसा तंतु इन कहानियों में छुपा रहता है जिससे ये लेखक का परिचय स्वयं दे देती हैं। भावों की सशक्त अभिव्यक्ति, भाषा का सरल प्रवाह और बीच-बीच में पंजाबी भाषा का प्रयोग जैसे बघार का काम करता है और कहानियाँ एक सौंधी सी महक से भर जाती हैं। 'वसूली' हो या 'एक गलत कदम' या 'खिड़कियों से झाँकती आँखें' भारतीयता और भारत से प्रेम इन कहानियों में स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है।

– शास्त्री नगर, मेरठ, उत्तर प्रदेश-250004

❑❑❑

संपर्क सूत्र

1. डॉ. मानसी रस्तोगी, बी-3/188, पश्चिम विहार, दिल्ली-110063
2. डॉ. बद्रीप्रसाद पंचोली, बी-6 दातानगर, रेंबल रोड अजमेर, राजस्थान-305001
3. श्री रमेश चंद्र, 46/22, गांधी नगर, पिक इंडिया के पीछे, पटौदी रोड, गुडगाँव, हरियाणा-122001
4. डॉ. दादूराम शर्मा, महाराज बाग, भैरवगंज, सिवनी, मध्य प्रदेश-480661
5. डॉ. दयानंद भूयाँ, मकान नं.-44, वाणीपथ, भेटापारा, बेलतला, गुवाहाटी- 781028
6. डॉ. मथुरेश नंदन कुलश्रेष्ठ, आनंद निकेतन, 75/70, टैगोर पथ, मानसरोवर, जयपुर-302020
7. प्रो. प्रदीप के. शर्मा, उच्च शिक्षा और शोध संस्थान, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, चेन्नई-17
8. श्री हरिराम, शोधार्थी ओपीजेएस विश्वविद्यालय चूरु राजस्थान, राजकीय सर्वोदय बाल विद्यालय पूठकलां, दिल्ली-110086
9. डॉ. बीरेंद्र सिंह, सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, स्कॉटिश चर्च कॉलेज, कोलकाता
10. डॉ. श्यामबाबू शर्मा, 85/1 अंजलि कॉम्प्लेक्स, शिलांग-793001
11. डॉ. ज्ञानेंद्र कुमार, असिस्टेंट प्रोफ़ेसर, शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
12. डॉ. कृष्णा शर्मा, एफ-2201, सनशाइन हेलियोस सोसाइटी, सेक्टर-78, नोएडा, उत्तर प्रदेश
13. डॉ. रामभवन सिंह ठाकुर, विद्यावाचस्पति 'रामाश्रम', महाराज बाग, भैरोगंज, सिवनी, मध्य प्रदेश-480661
14. डॉ. विमलेश कांति वर्मा, 73 वैशाली, पीतमपुरा, दिल्ली-110034
15. श्री राम कुमार कृषक, सी-3/59, नागार्जुन नगर, सादतपुर विस्तार, दिल्ली-110090
16. डॉ. पवन कुमार खरे, 196, शिवाजी पार्क कॉलोनी, उज्जैन
17. श्री सुशील सरित, 36, अयोध्या कुंज ए, आगरा-282001
18. डॉ. नरेश कुमार, जे 235, पटेल नगर-I, गाजियाबाद
19. श्री सत्यनारायण भटनागर, 68, कालिंदी कुंज, पिपल्याहाना, इंदौर, मध्य प्रदेश-452001
20. श्री देवेंद्र कुमार मिश्रा, पाटनी कॉलोनी, भरत नगर, चंदनगाँव, छिंदवाड़ा, मध्य प्रदेश-480001
21. श्री सुशांत सुप्रिय, ए-5001, गौड़ ग्रीन सिटी, वैभव खंड, इंदिरापुरम्, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश-201014
22. श्री कृष्ण शर्मा, 152/119, पक्की ढक्की, जम्मू-180001
23. श्री एम. जी. बाबू, प्रोफेसर, हिंदी विभाग (से. नि.), कालिकट विश्वविद्यालय, कालिकट, केरल-673635

24. डॉ. एम.एस. विश्वंभरन, प्रोफेसर, हिंदी विभाग (से. नि.), कालिकट विश्वविद्यालय, कालिकट, केरल-673635

25. श्री त्रिलोक सिंह आनंद, 4055, अर्चना भवन, अर्बन एस्टेट, फेस-2, पटियाला, पंजाब-147002

26. प्रो. योगेश्वर कौर, 239, दशमेश एंक्लेव, ढकौली, जीरकपुर जिला मोहाली, पंजाब-160104

27. डॉ. विदुषी शर्मा, एल-108, ऋषि नगर, रानी बाग, नई दिल्ली-110034

28. डॉ रमेश तिवारी, 64-बी, फेस-II, डी डी ए फ्लैट, कटवारिया सराय, नई दिल्ली-110016

29. डॉ. सीमा शर्मा, शास्त्री नगर, मेरठ, उत्तर प्रदेश-250004

❑❑❑

केंद्रीय हिंदी निदेशालय

भाषा पत्रिका की सदस्यता हेतु आवेदन पत्र

सेवा में,

निदेशक

केंद्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग,

शिक्षा मंत्रालय, पश्चिमी खंड–7, आर. के. पुरम्, नई दिल्ली – 110066

ई.मेल – chdsalesunit@gmail.com

फोन नं. – 011–26105211 एक्सटेंशन नं. 201, 244

महोदय/महोदया,

कृपया मुझे भाषा (द्वैमासिक पत्रिका) का एक वर्ष के लिए / पाँच वर्ष के लिए/ दस वर्ष के लिए/ बीस वर्ष के लिए दिनांक ..... से सदस्य बनाने की कृपा करें। मैं पत्रिका का वार्षिक/ पंचवर्षीय/ दसवर्षीय/ बीसवर्षीय सदस्यता शुल्क ..... रुपए, निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली के पक्ष में नई दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय डिमांड ड्राफ्ट सं. ..... दिनांक ..... द्वारा भेज रहा/रही हूँ। कृपया पावती भिजवाएँ।

नाम : .....

पूरा पता : .....

.....

.....

मोबाइल/दूरभाष : .....

ई–मेल : .....

संबद्धता/व्यवसाय : .....

आयु : .....

पूरा पता जिस पर पत्रिका प्रेषित की जाए : .....

सदस्यता	शुल्क डाक खर्च सहित
वार्षिक सदस्यता	रु. 125.00
पंचवर्षीय सदस्यता	रु. 625.00
दसवर्षीय सदस्यता	रु. 1250.00
बीसवर्षीय सदस्यता	रु. 2500.00

डिमांड ड्राफ्ट निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय के पक्ष में नई दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय होना चाहिए। कृपया ड्राफ्ट के पीछे अपना नाम एवं पूरा पता भी लिखें।

नाम एवं हस्ताक्षर

नोट : कृपया पते में परिवर्तन होने की दशा में कम से कम दो माह पूर्व सूचित करने का कष्ट करें।

पंजी संख्या. 10646/61
ISSN 0523-1418

भाषा (द्वैमासिक)
BHASHA-BIMONTHLY
पी. ई. डी. 305-5-2020
700

केंद्रीय हिंदी निदेशालय
उच्चतर शिक्षा विभाग
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार
पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110066
www.chdpublication.mhrd.gov.in
प्रबंधक, भारत सरकार मुद्रणालय, रिंग रोड, मायापुरी, नई दिल्ली – 110064 द्वारा मुद्रित